सन्मति साहित्य रत्नमाला का १   वां रत्न

धर्म और दर्शन

लेखक
परम श्रद्धेय पंडित प्रवर श्री पुष्करमुनि जी महाराज
के सुशिष्य
देवेन्द्रमुनि शास्त्री साहित्यरत्न

पुस्तक प्रकाशन मे अर्थ सहयोग

१—डालचन्द बच्छराज एण्ड कम्पनी पालघर (महाराष्ट्र)

२—घीसुलाल जी खेमराज जी चगेरिया परेल मुंईवाडी म्युनिसिपालचाल न ४/६ १ बम्बई १२

३—शाह रिखबचन्द जुगराज ठि रीड रोड ५ कुआ अहमदाबाद न २

४—चादमल हरखचन्द कोठारी क्रोसलाइन अहमदाबाद न २

पुस्तक
धर्म और दर्शन

लेखक
देवेन्द्र मुनि शास्त्री

विषय
निबन्ध सग्रह

०

पुस्तक पृष्ठ २४८

प्रथम प्रकाशन
अगस्त १९६७

प्रकाशक
सन्मति ज्ञान पीठ
लोहामडी आगरा २

मुद्रक
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस
राजा की मडी आगरा—२

मूल्य
चार रुपए

समर्पण

निस्सीम श्रद्धा और भक्ति के साथ

परम श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव

श्री पुष्कर मुनि जी महाराज

को



प्राथमिकी



भारतीय चिन्तन का निचोड़ है आत्मा और उसके स्वरूप का प्रतिपादन। आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को जिस व्यग्रता तथा समग्रता के साथ भारतीय धर्म एवं दर्शनों ने समझने का प्रयास किया है उतना प्रयास न यूनान के चिन्तकों ने किया है और न यूरोप के विचारकों ने ही। भारतीय धर्म और दर्शन में जड़ प्रकृति का वर्णन व विवेचन भी है किन्तु वह विवेचन मुख्यतः चैतन्य के स्वरूप को समझने के लिए है उसकी मीमांसा करने के लिए है। जब कि पाश्चात्य दर्शनों में आत्मा का जो वर्णन किया गया है वह मुख्यतः जड़ प्रकृति को समझने के लिए है। जड़ प्रकृति की समीक्षा करने के लिए ही उन्होंने आत्मा का निरूपण किया है। यह प्रत्यक्ष सचाई है कि भारतीय दर्शन आत्मा की खोज का दर्शन है और पाश्चात्य दर्शन जड़ प्रकृति की खोज का। भारतीय दर्शन अध्यात्म प्रधान है और पाश्चात्य दर्शन भौतिकता प्रधान।

भारतीय चिन्तन की अन्तिम परिणति मोक्ष है। मोक्ष साध्य है धर्म और दर्शन उसकी साधना है। पाश्चात्य दर्शन की तरह भारतीय दर्शन ने धर्म और दर्शन को एक-दूसरे का विरोधी नहीं माना किन्तु एक दूसरे का सहचर और सहगामी माना है। दर्शन सत्य की मीमांसा तर्क के द्वारा करता है तो धर्म श्रद्धा के द्वारा। दर्शन विचार को प्रधानता देता है तो धर्म आचार को। दर्शन का अर्थ है सत्य का साक्षात्कार करना और धर्म का अर्थ है उस सत्य को जीवन में उतारना। दर्शन हमें राह दिखाता है तो धर्म हमें उस राह पर चलने को प्रेरित करता है। अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो धर्म दर्शन की प्रयोगशाला है।

धर्म और दर्शन के मूलभूत तत्वों के सम्बन्ध में प्रस्तुत पुस्तक में कुछ लिखा गया है। सूर्य के प्रकाश की तरह सत्य है कि पुस्तक लिखने की कल्पना प्रारम्भ में मेरे मन में नहीं थी और ये निबन्ध इस दृष्टि से लिखे भी नहीं गये थे समय-समय पर जो मैंने निबन्ध लिखे उन निबन्धों में से धर्म और दर्शन

सम्बन्धी कुछ निबन्ध इस सग्रह मे जा रहे हैं। धम और दर्शन का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत पुस्तक से पाठको को हो सकेगा—यह मैं मानता हूँ।

इन निबन्धो को लिखने की मूल प्रेरणा परम श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव श्री पुष्कर मुनि जी महाराज की रही है। उनकी अपारकृपा मार्ग-दर्शन और प्रोत्साहन के कारण ही मैं कुछ लिख सका हूँ। मेरे शब्द-कोष मे उनके प्रति आभार प्रदर्शित करने के लिए उपयुक्त शब्द नही है।

परम श्रद्धेय कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्द्र जी महाराज का असीम अनुग्रह भी मै विस्मृत नही कर सकता जो मुझे सदा अध्ययन एव लेखन की उत्साह भरी प्रेरणाए देते रहे हैं। साथ ही उन्ही के प्रधान शिष्य कलम कलाधर श्री विजय मुनि जी शास्त्री साहित्यरत्न ने मननीय प्रस्तावना लिख कर मुझ अनुगृहीत किया।

जैन जगत के यशस्वी लेखक और तेजस्वी सम्पादक पण्डित श्री शोभा चन्द्र जी भारिल्ल का हार्दिक स्नेह भी भुलाया नही जा सकता जिन्होने निबन्धो को पढकर मुझ उत्साह वर्द्धक प्रेरणा ही नही दी किन्तु मेरा स्वास्थ्य ठीक न होने से एक दो निबन्धो का सम्पादन भी किया।

सिद्धान्त प्रभाकर श्री हीरामुनि जी साहित्यरत्न शास्त्री गणेश मुनि जी जिनेन्द्रमुनि रमेशमुनि राजेन्द्र मनि और पुनी मुनि प्रभति मुनि मण्डल का प्रेमपूर्ण सेवा व्यवहार भी लेखन मे सहायक रहा है। उन सभी के प्रति मै हृदय से आभारी हू जिनका मुझ लेखन और प्रकाशन मे सहयोग मिला है। तथा भविष्य मे भी अधिकाधिक मिलता रहे इसी आशा और विश्वास के साथ विरमामि।

हरखचन्द्र कोठारी हाल
राजहंस
बालकेश्वर बम्बई ६
१५ अगस्त १९६७

—देवेन्द्रमुनि

धम और दशन एक मूल्याकन



धर्म और दशन पर क्या लिखू ? लिखने को बहुत कुछ है और लिखने को कुछ भी नही है। लिखने के प्रश्न को टालने का प्रयत्न किया। परन्तु प्रेम के आग्रह को टाला भी ता कसे जाए ? मेरे सामने प्रश्न का प्रश्न यही था और उलझन की उलझन भी तो यही थी न ? जीवन के प्रागण मे किसी भी उलझन का आना मैं उसे अभिशाप के रूप मे नही—एक सुन्दर वरदान के रूप मे ही स्वीकार करता हू।

जीवन उलझनदार है—आज स ही नही एक सीमा हीन युग से। उलझ कर फिर उलझने को तो निश्चय ही मैं जीवन नही कहता। मेरे विचार म उलझना बुरा नही पर उलझकर सुलझने का प्रय न ही न करना—निश्चय ही बुरा है। धर्म और दशन का ज म इसी उलझन के सुलझाव से हुआ है। मेरे अपने विचार म मनुष्य इसीलिए मनु य है कि वह उलझ कर भी सुलझने की शक्ति रखता है।

प्रश्न था और प्रश्न है और प्रश्न भविष्य मे भी रहेगा धम क्या है ? दशन क्या है ? उन दोनो का परस्पर मे सम्बन्ध क्या है ? Wh t Ph lo-sophy of rel g n nd what al g on f Philosophy ? ये दोनो प्रश्न एक दूसरे के पूरक है। धम को दशन की और दर्शन को धम की सदा से ही आवश्यकत रही है—दोना सापक्ष है निरपेक्ष नही। मानव जीवन की सरिता इन दोनो तटो क म य म से ही प्रवाहित होती है। उसके प्रवाह के लिए दोनों तट आवश्यक है।

एक बार ग्रीक दाशनिक सुकरात से पूछा गया था—What peace and wh e it ? शान्ति क्या है और वह है कहां ? कुछ गम्भीर होकर और फिर कुछ मन्दमुस्कान के साथ म सुकरात ने कहा था—मेरे लिए शान्ति मेरा धम है और मेरे लिए शान्ति मेरा दशन है। और वे कही बाहर नही स्वय मेरे अन्दर ही है। सुकरात धम को विचार से भिन्न नही मानता। और जो कुछ विचार है वही आचार भी।

मैं देखता हू कि सुकरात के बाद मे ग्रीक दार्शनिको मे और यूरोपीय दार्शनिको मे धम और दशन को लेकर पर्याप्त मत भेद खडे हो गए हैं। किन्तु सुकरात ने विचार को ही धम एव आचार कह कर जनपरम्परा का ही अनुगमन किया था। हमारे यहाँ पाँच आचारो मे एक ज्ञानाचार भी है जिसका अर्थ है—ज्ञान ही स्वय आचार बनता है। जो कुछ विचार है वही आचार है और जो कुछ आचार है वही तो विचार है। श्रमणो की परम्परा मे विचार और आचार—दोनों को सहगामी माना है। इस अथ में विचार ही दशन है और आचार ही धम है—दोनो सम्बद्ध एव पूरक है।

भले ही आज हम पाश्चात्यो का अ ध अनुकरण करके धम के लिए relg n और दशन के लिए Ph lo phy शब्द का प्रयोग और उपयोग कर परन्तु जो गम्भीरता और व्यापकता धम और दशन मे है वह l g n और Philo ophy मे नही है। क्योकि ये दोनो एकागी हैं दोनो एक दूसरे से निरपेक्ष ह सापेक्ष नही।

भारत के दार्शनिको ने कभी धर्म और दशन को अलग स्वीकार ही नही किया। यहाँ तो जो धम है वही दशन है और जो कुछ दशन है वही धम भी है। इतना अन्तर तो अवश्य है कि दशन मे तक की प्रधानता है तो धम मे श्रद्धा की मुख्यता है। परन्तु तक धम मे बाधक नही तो श्रद्धा भी दशन मे बाधक नही।

म देखता हू कि वेदान्त मे जो पूव मीमासा है वही धम है। जो उत्तर मीमासा है वही दशन है। योग आचार है तो साख्य विचार है। बौद्ध परम्परा मे दो पक्ष हैं—एक हीनयान और दूसरा महायान। महायान दशन बन गया तो हीनयान धम बन गया। जन परम्परा मे भी मुख्यरूप से दो ही तत्त्व हैं—अहिसा और अनेकान्त अहिसा धम बन गया और अनेकान्त दशन बन गया। भारत मे धम और दशन एक दूसरे को छोडकर नही रह सकते है। मानव जीवन की साधना की धरती पर दशन को धम होना ही पडेगा और धम को भी दशन बनना ही पड़ेगा। यहाँ विचार को आचार होना होता है, और आचार को भी विचार होना होता है।

इसके विपरीत यूरोप और ग्रीस मे धम और दशन दोनो एक-दूसरे से अलग होकर जीवित रहने का प्रयत्न करते रहे हैं। और इस प्रयत्न मे वे दोनो एक दूसरे से अलग ही नही हुए ब कि एक दूसरे के विरोध में भी खडे

हो गए। आवश्यकता है आज फिर इन दोनो के सहयोग और समन्वय की। तभी धम और दशन मानवी जीवन को सुन्दर बना सकेंगे।

भारतीय विचारक दशन और धम के सम्बन्ध में क्या सोचते रहे हैं? इस सम्ब ध मे लेखक ने अपनी पुस्तक मे बहुत उद्धरण दिए हैं जिससे विषय स्पष्ट हो जाता है। परन्तु थोडा परिश्रम करके पाश्चात्य विचारकों का भी मत यदि दे दिया होता तो सोने में सुग ध हो जाती। शायद इधर लेखक का ध्यान गया ही नही।

पाश्चात्य लोग धम मे तीन त वो को स्वीकार करके चलते हैं—Know g Fe l ng nd Do g Will g बुद्धि भावना और क्रिया—तीनो के समवेत रूप को ही धम कहा गया है। बुद्धि का अथ है—ज्ञान भावना का अथ है—श्रद्धा और क्रिया का अथ है—आचार। जन परम्परा के अनुसार भी श्रद्धान ज्ञान और आचरण—तीनो धम ही हैं और ये तीनो ही मोक्ष के साधन भी हैं।

हीगल ने धम की जो परिभाषा की है उसमे एकमात्र ज्ञाना मक पहलू पर जोर दिया गया है। शेष दो अशो की उसम उपेक्षा की गई है। मक्स मूलर ने भी हीगल का ही अनुसरण किया है। का ट ने धम की जो परिभाषा दी है उस मे उसने ज्ञाना मक के साथ मे क्रिया मक पहल पर भी ध्यान दिया है परन्तु भावनात्मक पहल की उपेक्षा कर दी है। लेकिन मार्टिन्यू ने धर्म की जो परिभाषा की है उसमे विश्वास विचार और आचार—तीनो का समावेश कर लिया गया है। अत धम की यह अपने आप मे पूर्ण परिभाषा है। एक प्रकार से इसमे धम और दशन के साथ मे भक्ति को भी समेट लिया गया है। इसका अथ यह है कि धम के क्षत्र मे भक्ति ज्ञान और कर्म—तीनों का समन्वय है।

आज के नवयुग के चिन्तन मे से एक नया प्रश्न खडा हो रहा है कि धर्म और विज्ञान का क्या सम्ब ध है? धम R l g on और विज्ञान Sc ence मे क्या कुछ भेद है और यदि है तो वह क्या है? इस विषय पर विस्तार के साथ मे विचार करने का न समय है और न प्रसग ही। फिर भी दोनो का स्वरूप ज्ञान तो आवश्यक ही है। विज्ञान का उद्द श्य कार्य-कारण सिद्धान्त के द्वारा वस्तुओ के बीच स्थिरता कायम करना है। परन्तु विज्ञान से जब पूछा जाता है कि काय-कारण की श्रृ खला—एक व्यवस्था का निर्माण किस प्रकार

करती है तो विज्ञान मौन हो जाता है। विज्ञान का सम्बन्ध जीवन से कम है—प्रकृति से अधिक। धम का सम्ब ध आन्तरिक जीवन से ही है। धम और विज्ञान मे मूल भेद यह है कि धम का प्रधान उद्द श्य मुक्ति की साधना है जबकि विज्ञान का प्रधान उद्द श्य केवल प्रकृति का अनुस धान है। विज्ञान मे स य Truth तो है पर शिव G d n और सु दर Beauty नही है जब कि धम मे तीना है—स य भी शिव भी और स दर भी।

धम और द न मे क्या भेद है ? इस सम्ब ध मे मैं प्रारम्भ मे ही लिख चका हू। परन्तु पाश्चात्य विद्वान् इस विषय मे क्या और कसा सोचते हैं ?

पाश्चा य विचारको की यह मा यता है कि धम आर दशन दोनो का विषय सम्पूरा विश्व है। द न मनुष्य की अनुभूतियो की युक्तिपूरा व्याख्या करके सम्पूरा विश्व के आधारभूत सिद्धान्तो की खोज करता है। धम भी आध्या मिक मूल्या के द्वारा सम्पूर्ण विश्व की याख्या क ने का प्रयास करता है। धम और द न म दूसरी समता य है कि दोना म नवोय ान को यो यता मे विश्वास करते है। धम और दशन—दोनो मानवीय ज्ञान की यथाथता मे पूरा विश्वास करके चलते हैं। धम और दशन म मूल साम्य य है कि दोनो चरमत व म (आ मा मे) विश्वास करने हैं। द न यदि बौद्धिक भूख को शान्त करता है तो धम आध्या मिक भूख को शान्त करता है। द न सिद्धान्त की ओर जाता है तो धम यवहार की ओर जाता है। धम का आधार श्रद्धा है तो दशन का आधार तक है।

आज के युग मे एक प्रश्न और पूछा जाता है—धम और दशन का ज म कब स हुआ ? इस प्रश्न के सम्ब ध म य ा पर स ाप म त ा हा लिखना पर्याप्त होगा कि मनष्य के मन और मस्ति क के साथ ही धम और दशन का ज म होता है। कभी हो इतना सत्य है कि दोना एक-दूसरे को छोड कर कभी नही रह सकते ? धम के अभाव म दशन अधूरा है और दशन शू य धम भी अधूरा ही रहेगा। मानव जीवन का सु दर और मधुर बनाने के लिए दोनो की समान भाव से आवश्यकता है।

प्रस्तुत पुस्तक धम और द न मे मानव जीवन की मुख्य य समस्याओ पर विस्तार के साथ मे विचार किया गया है। भाषा स दर है भाव गम्भीर है और शली आकषक है। प्र येक विषय को प्राचीन ग्र थो के उद्धरणो से परिपुष्ट किया गया है। विचारशील पाठको के लिए यह ग्र थ बहत ही उप

योगी और प्रयोगी सिद्ध होगा। धर्म और दर्शन जैसे गम्भीर विषय को इतनी सुन्दर भाषा में और इतनी सरल एवं सरस शैली में अभी तक नहीं रखा गया था। आभ्यन्तर सुन्दरता के साथ में पुस्तक की बाह्य सुन्दरता भी प्रशंसनीय है। मणि-काञ्चन का यह संयोग अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगा।

धर्म और दर्शन के लेखक हैं—पण्डित रत्न प्रखर प्रवक्ता श्रद्धेय पुष्कर मुनिजी महाराज के अन्तेवासी शिष्य—श्री देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री साहित्यरत्न। गुरु से प्राप्त ज्ञान शिष्य में कितना उज्ज्वलतर हो गया है? यह पुस्तक लिख कर मुनिजी ने जहाँ गुरु से प्राप्त ज्ञान को सफल किया है वहाँ अपने अथक परिश्रम से उसे समाज की चेतना के समक्ष बहुत ही व्यवस्था और सजावट के साथ रखने में पूर्णतः सफल हुए हैं। उनकी लेखनी के चमत्कार से सभी परिचित हैं। मुझे आशा से भी बढ़कर विश्वास है कि भविष्य में वे इससे भी अधिक शानदार कृति भारती के भण्डार में समर्पित करने में सफल रहेंगे।

कांदावाडी जैन स्थानक
बम्बई
१२-८-३७

—विजयमुनि

प्र का श की य



धम और दर्शन का महत्वपूर्ण प्रकाशन प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता है।

इस पुस्तक मे श्री देवेन्द्र मुनि जी ने धर्म और दर्शन के सम्बन्ध मे बहु प्रचलित भ्रान्तियाँ और अज्ञानमूलक धारणाओ के परिष्कार के साथ ही धर्म और दशन की मौलिक स्थापनाओ का उसकी विविध प्रक्रियाओ का सदसभ जो शास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत किया है वह नई पीढी के नये विचार शील युवको के लिए पठनीय एव मननीय है।

श्री देवे द्र मुनि जी शास्त्री स्थानकवासी समाज के उदीयमान साहित्य कार है। सतत अध्ययन और नवलेखन उनकी रुचि H by है।

सन्मति ज्ञान पीठ अपनी विशुद्ध सास्कृतिक परम्परा के अनुरूप मौलिक और मह वपूर्ण प्रकाशनो को प्रस्तुत करती रही है। इससे पूव मुनि श्री की एक खोजपूर्ण कृति ऋषभदेव एक परिशीलन भी प्रकाशित हो चुकी है। आशा है उस पुस्तक की तरह प्रस्तुत पुस्तक का भी सवत्र उत्साह के साथ स्वागत किया जायेगा।

पयु षण के अवसर पर पुस्तक सम्पन्न करने का हमारा सकल्प था। समय अत्यन्त कम था किन्तु फिर भी कार्य यथासमय सम्पन्न हो सका इसकी हमे अ यन्त प्रसन्नता है।

पुस्तक के प्र फ सशोधन मे ज्ञानपीठ के कायकर्त्ता श्री श्रीचन्दजी सुराना सरस तथा मुद्रण मे श्री विष्णु प्रेस के मालिक श्री रामनारायण जी मेडतवाल का सहयोग सदा स्मरणीय रहेगा।

म त्री

सन्मति ज्ञान पीठ आगरा २

अनुक्रम

धर्म और दर्शन	३
अध्यात्मवाद एक अध्ययन	१७
कर्मवाद पर्यवेक्षण	३८
स्याद्वाद	१ ४
धर्म का मूल सम्यग् दर्शन	१२९
साधना का मूलाधार	१३६
श्रमण संस्कृति में तप	१४५
अहिंसा और सर्वोदय	१६६
सेवा एक विश्लेषण	१७६
धर्म का प्रवेशद्वार दान	१९७
महावीर के सिद्धान्त	२२

धर्म और दर्शन

एक | धर्म और दर्शन

मानवमस्तिष्क जिज्ञासाओ का महासागर है। उसमे विविध प्रकार के चिंतन की ऊर्मियां उठती ही रहती हैं। अन्तजगत् और बहिर्जगत् के विषय मे अनेक विध प्रश्न उद्भूत होते रहते है। मैं क्या हूँ ? कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मेरा पुनर्जन्म होगा या नही ? होगा तो कहाँ किस रूप मे होगा ?[1] ये कतिपय प्रश्न उन प्रश्नो मे से है जो अपने अन्तजगत् के विषय मे उत्पन्न होते है और कभी-कभी मनुष्य को बेहद परेशान कर देते है।

इसी प्रकार बहिर्जगत् के सम्बन्ध मे भी सैकडो जिज्ञासाए उत्पन्न होती रहती है। हमारे चारो ओर फैला हुआ यह विशाल विश्व जिसका कही ओर छोर नजर नही आता क्या है ? यह प्राणिसृष्टि और जड सृष्टि क्या है ? विश्व की आदि है या नही ? है तो कब इसकी रचना हुई ? विश्व का अन्त होगा या यह शाश्वत है ? अन्त होगा तो कब होगा ?

१ पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि दाहिणाओ वा पच्चत्थिमाओ वा उत्तराओ वा उड्ढाओ वा अहोदिसाओ वा आगओ अहमसि ? एवमेगसिं णो णाय भवइ—अत्थि मे आया उववाइए णत्थि मे आया उववाइए ? के अहमसि ? के वा इओ चुओ इह पेच्चा भविस्सामि ?

—आचारांग १-१

(ख) कोऽहं कीदृक कुत आयात ?

—चर्पट पञ्जरिका, आचार्य शंकर

इन प्रश्नो के समाधान के दो उपाय हैं—निष्ठा और तक। निष्ठा से धर्म का ज म होता है और तक से दर्शन का। किन्तु धम और दशन दोनो विषय अत्यन्त गम्भीर हैं और उनमे व्यापक भाव निहित है। अतएव उचित होगा कि उनके सम्ब ध मे यहा सक्षप मे विचार कर लिया जाए।

धम क्या है ?

धम एक बहुप्रचलित श द है। इस देश मे अधिक स अधिक प्रचलित और प्रयुक्त होने वाल शब्दो मे धर्म श द को गणना की जा सकती है। पठित और अपठित सभी वर्गों के लोग दनिक व्यवहार मे सहस्रो बार इस शब्द का प्रयोग करते है। फिर भी निस्सकोच कहा जा सकता है कि धम के मम को पहचानने वाले बहुत कम लाग हैं। अधिकाश लोग जाति एव समाज मे पुरातन काल से चली आती परम्पराओ रूढियो या धारणाओ मे धम की कल्पना कर लेते है और उ ही के पालन को धम का पालन मान लेते हैं। उ ही का पालन करके व स तुष्ट हो जाते है और अ तिम समय तक धोखे मे रहने है।

समाज मे एक वग ऐसा है जा धन के विषय मे प्रमाणभूत समझा जाता है। कि तु दुर्भाग्य स उसम भी अधिकाश यक्ति ऐसे होते है जो धर्म की वास्तविकता से अनभिज्ञ होते है। अ ध के नेतृत्व म चलने वाले अ धो की जो गात होती है वही जनसाधारण की भी गति होती है।

धम का सम्ब ध कई लोग लौकिक कर्त्तव्यो या वर्त्तमान जीवन के साथ ही जोडते हैं तो कई लोग सिफ आत्मा के शाश्वत कल्याण के साथ। कि तु सूक्ष्म और गभीर विचार करने पर विदित हागा कि धम वास्तव मे एकागी नही है। उसम मनुष्य के लौकिक और आध्यात्मिक सभो कत्त यो का समावेश होता है। मनुष्य को अपनी आत्मशुद्धि के लिए या अपने शुद्ध स्वरूप की उपल धि के लिए जिन नियमो या विधि निषेधो का अनुसरण करना चाहिए उनका समावेश तो धर्म मे होता ही है मगर उसके समस्त लौकिक कत्त व्य भी धर्म के अन्त गत ही हैं। मनुष्य का अन्य प्राणियो के प्रति क्या कत्त व्य है ? अगर

वह ग्रामवासी है तो ग्राम के प्रति नगर निवासी है तो नगर के प्रति और जिस राष्ट्र का नागरिक है उस राष्ट्र के प्रति उसका किस प्रकार का सम्बन्ध होना चाहिए ? अन्तत समग्र विश्व के प्रति उसका क्या कर्त्तव्य है ? इन सब कर्त्तव्यो का समावेश धर्म मे होता है। यही कारण है कि हमारे दीर्घदृष्टि शास्त्रकारो ने जहाँ आत्मधर्म का निरूपण किया है वही ग्रामधर्म नगरधर्म और राष्ट्रधर्म आदि का प्रतिपादन भी किया है[२] और समग्र विश्व के कल्याण की कामना करने की भी प्रेरणा की है। और यह तो सहज ही समझा जा सकता है कि विश्वकल्याण की कामना कोरी कामना ही नही है वरन् उसके लिए यथाशक्ति प्रयास करना भी उसमे गर्भित है। विश्व के हित की कामना की जाय किन्तु तदनुकूल प्रयत्न न किया जाय तो वह कामना आत्मवञ्चना से अधिक और क्या होगी ?

तथ्य यह है कि लोककल्याण और आत्मकल्याण दो पृथक-पृथक कर्त्तव्य नही है। ये दोनो सम्मिलित होकर ही धर्म का रूप ग्रहण करते है। सच्चा धर्मनिष्ठ पुरुष लोककल्याण को आत्मकल्याण से भिन्न और आत्मकल्याण को लोककल्याण से भिन्न नही मानता। वह लोककल्याण को आत्मकल्याण के रूप मे ही देखता है और आत्मकल्याण का ही एक आवश्यक अग मानता है। अतएव परोपकार वस्तुत आत्मोपकार ही है। नन्दीसूत्र की टीका इस सम्बन्ध मे अवलोकनीय है।

ऐसी स्थिति मे निश्चयनय के नाम पर या आत्मा के नाम पर धर्म को अत्यन्त सकीर्ण दायरे म बन्द करने के जो प्रयास किए जा रहे है

---

२ दसविध धम्म पण्णत्ते त गामधम्मे नगरधम्मे रट्ठधम्मे पासडधम्मे कुलधम्मे गणधम्मे सघधम्मे सुयधम्मे चरित्तधम्मे अत्थिकायधम्मे।

—स्थानांग १ –१

३ सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत्॥

(ख) क्षेम सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपाल।
काल काल च सम्यग वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्॥
दुर्भिक्ष चौरमारी क्षणमपि जगता मास्म भूज्जीवलोके
जनेन्द्र धर्मचक्रं प्रभवतु सतत सर्वसौख्यप्रदायि॥

वे किसी भी प्रकार से उचित नही है। यही नही किन्तु इन प्रयासों ने धम को खतरा उत्पन्न कर दिया है। जब समग्र विश्व वेग के साथ समाजवाद की ओर अग्रसर हो रहा है तब धम को एकान्त वयक्तिक रूप प्रदान करने का प्रयत्न देश और काल से भी विपरीत है। वास्तविकता तो उसमे है ही नही। यह सत्य है कि लौकिक कर्त्तव्य के नाम पर आत्मा के शाश्वत कल्याण की उपेक्षा नही करनी चाहिए किन्तु यह भी सत्य है कि आत्मकल्याण के नाम पर लौकिक कर्त्तव्यो को दृष्टि से ओझल नही कर देना चाहिए।

जिसने धर्म के मम को पहचान लिया है वह आत्मकल्याण और लोककल्याण का सु दर सम वय करके चलता है और उनम किसी भी प्रकार विरोध नही उत्प न होने देता। यही धम की उदारता और व्यापकता है। जब तक धम मे यह उदारता और यापकता बनी रहेगी वह किसी भी देश और काल म अनुपादेय नही समझा जा सकेगा। अगर हम चाहते है कि मनुष्य का प्रत्येक कदम और प्रत्येक उच्छ वास धम से अनुप्राणित हो तो हमे धम के उदार स्वरूप की रक्षा करनी ही होगी। इस प्रकार धम हमारे वयक्तिक सामाजिक ऐहिक और पारलौकिक कर्त्तव्यो का नियामक और सचालक है। धम से हमारा जीवन सगीतमय बनता है और साथ ही शिवमय भी। मनुष्य ने अनेक कलाओ का आविष्कार किया है कि तु धम कला उन सब मे उत्तम है जो जीवन को स्थायी सत्य शिव और सौ दय से आपूरित कर देती है।

आचाय हरिभद्र ने धम की प्रशस्ति करत हुए लिखा है— धम से उत्तम कुल मे ज म लेने की प्राप्ति होती है धम से ही दिव्य रूप की धन समद्धि की और सुविस्तृत कीर्त्ति की प्राप्ति होती है। धर्म अनुपम मगल है समस्त दु खो की अनुपम औषध है धम विपुल बल है धर्म ही प्राणियो के लिए त्राण और शरण है।

अधिक क्या कहा जाय समस्त जीवलोक मे इद्रियो और

---

४ सव्वा कला धम्मकला जिणेइ।

—गौतमकुलक

मन को जो भी अभिराम प्रतीत होता है वह सब धर्म का ही फल है[५]।

इस कथन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म का सम्बन्ध न केवल आध्यात्मिक श्रेयस से है अपितु हमारे वर्तमान जीवन के साथ भी है।

धर्मव्याख्या

धर्म शब्द का व्याकरण शास्त्र के अनुसार अर्थ है—धारण करना। जो धारण करता है वह धर्म है।[६] धृञ् धातु मे 'मत' या 'म' प्रत्यय जोडने पर धर्म शब्द निष्पन्न होता है। जो दुर्गतिपात से प्राणियो को बचाता है वह धर्म है। कणाद के कथनानुसार जिससे अभ्युदय

५ धम्मेण कुलप्पसूई धम्मेण य दिव्वरूवसपत्ती।
धम्मेण धणसमिद्धी धम्मेण सुवित्थडा कित्ती॥
धम्मो मगलमउल ओसहमउल च सव्वदुक्खाण।
धम्मो बलमवि विउल धम्मो ताण व सरण च॥
कि जपियेण बहुणा ज ज दीसइ सव्वत्थ जियलोए।
इन्दिय मणाभिराम त त धम्मफल सव्व॥

—समराइच्चकहा

६ धारणाद् धर्ममित्याहु।

—मनु

(ख) धारणाद् धर्म उच्यते।

—महाभारत कर्ण पर्व

७ धृञ् धारणे अस्य धातोर्मत प्रत्ययान्तस्येद रूपम् धर्म इति।

—दशवै जिन चूर्णि पृ १४

८ धृञ् धारणे इत्यस्य धातोर्मप्रत्ययान्तस्येद रूपम् धर्म इति।

—दशवै हारि टीका पत्र २

९ यस्माज्जीव नरकतिर्यग्योनिकुमानुषदेवत्वेषु प्रपतन्त धारयतीति धर्म उक्तञ्च—

दुर्गतिप्रसृतान् जीवान् यस्माद् धारयते तत।
धत्ते चैतान् शुभस्थाने तस्माद् धर्म इति स्थित॥

—दशवै जिन चूर्णि पृ १५

अर्थात् स्वर्ग की और निःश्रेयस् अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है वह धर्म है[१] ।

धर्म' शब्द की उल्लिखित व्युत्पत्तियाँ श-' और अर्थ की दृष्टि से मिलती-जुलती हैं । किन्तु आध्यात्मिक परम्परा के मूर्धन्य सन्त आचार्य कुन्दकुन्द ने धर्म की जो परिभाषा की है उसमे जैन दृष्टि की विशिष्टता स्पष्ट प्रतिभासित होती है । उन्होने वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा है । वस्तु का स्वभाव धर्म किस प्रकार है इसका स्पष्टीकरण ध्यानयोगी आचार्य रामसेन ने किया है जो इस प्रकार है—समस्त विश्व पर्यायो की दृष्टि से क्षण क्षण मे विनष्ट हो रहा है । सचेतन हो या अचेतन सभी पदार्थ प्रतिक्षण नाश को प्राप्त हो रहे हैं । निरन्तर प्रवर्त्तमान इस विनाशलीला मे भी वस्तु का मूल स्वभाव वस्तु को धारण किये रखता है कायम रखता है । प्रत्येक वस्तु अपने स्वभाव से धृत है अवस्थित है अतएव वस्तु का स्वभाव धर्म है । उदाहरणार्थ—जीव पर्याय की दृष्टि मे विनाशशील होने पर भी अपने चैतन्यस्वभाव से सदा धृत अर्थात् ध्रुव रहता है इस कारण चैतन्य जीव का धर्म है । प्रतिक्षण विनष्ट होते हुए पुद्गल को उसका मूर्त्तिकत्व स्वभाव धारण किए रहता है अर्थात अस्तित्व मे रखता है अतएव मूर्तिकता पुद्गल का धर्म है ।

आचार शास्त्र की दृष्टि से अहिंसा संयम और तप धर्म है । धर्म उत्कृष्ट मंगल है ।

इन सभी व्याख्याओं का समन्वय करते हुए कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा मे कहा है—वस्तु का स्वभाव धर्म है क्षमा आदि दश प्रकार का भाव

---

१ यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।

— वैशेषिक दर्शन

११ वत्थुसहावो धम्मो ।

१२ शून्यीभवदिदं विश्वं स्वरूपेण धृतं यतः ।
तस्माद्वस्तुस्वरूपं हि प्राहुर्धर्मं महर्षयः ॥

—तत्त्वानुशासन ५३

१३ धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।

—दशवै० अ० १ गा० १

धर्म है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म है और जीवो की रक्षण करना धर्म है[14]।

आचार्य समन्तभद्र के कथनानुसार धर्म वह है जो प्राणियों को सासारिक दु खो से बचाता है और उत्तम सुख मे धारण करता है[15]।

धर्म की इन अनेक व्याख्याओ के उल्लेख का प्रयोजन यह है कि पाठक धर्म के व्यापक स्वरूप को हृदयङ्गम कर सकें। उल्लिखित व्याख्याए स्पष्ट प्रकट करती हैं कि जीवन को उच्च पवित्र और दिव्य बनाने वाले जो भी विधिविधान या क्रियाकलाप है वे सभी धर्म के अन्तर्गत है।

सक्षेप मे दशवैकालिक सूत्र म प्रदर्शित धर्म के स्वरूप के प्रकाश म कहा जा सकता है कि जो उत्कृष्ट मगल है वही धर्म है। मगल शब्द का अर्थ है—पाप या बुराइयो का नाश और सुख या कल्याण की प्राप्ति। तात्पर्य यह हुआ कि जो आचारप्रणालिका हमारे जीवन को पाप की कालिमा से बचाती है जीवनगत बुराइयो को दूर करती है और जिससे कल्याण का पथ प्रशस्त होता है वही धर्म है। इस व्यापक परिभाषा से जैनागमप्रतिपादित धर्म सार्वभौम धर्म का दर्जा प्राप्त कर लेता है। जिससे आत्मा का मगल हो वह आत्म धर्म है जिसस राष्ट्र का मगल हो वह राष्ट्रधर्म है और जिस आचारप्रणाली से विश्व का मङ्गल हो वह विश्वधर्म है। इसी प्रकार यह परिभाषा सभी समाजो वर्गों और वर्णों पर लागू होती है।

चोदनालक्षणो धर्म अर्थात् वेद से मिलने वाली प्रेरणा धर्म है यह परिभाषा जैसे एक ग्रन्थविशेष पर आधारित होने के कारण सकीर्ण है उस प्रकार जैनपरिभाषा मे लेशमात्र भी सकीर्णता नही है।

---

१४ धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाण रक्खणं धम्मो॥
—कार्तिकेयानुप्रेक्षा ४७८

१५ संसारदु खत सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।
—रत्नकरण्डक श्रावकाचार

भारत और धर्म

भारतवष धर्मप्रधान देश के नाम से विख्यात हैं। भारत की यह ख्याति आधुनिक भारतीय जीवन के कारण नही वरन् इस कारण है कि इतिहासातीत काल से भारत को प्रजा का जीवन धर्म से अनुप्राणित रहा है। जब से मानव समाज का निर्माण हुआ सभ्यता और सस्कृति का नवोन्मेष हुआ तभी से प्रजा के एक विशिष्ट वग ने धर्मसम्बन्धी चिन्तन और उसके प्रचार प्रसार के लिए अपना जीवन समर्पित किया और उस वग की परम्परा आज भी अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है। उस वग को भारतीय प्रजा ने अपनी श्रद्धा भक्ति अर्पित की और अपना उद्धारक माना है। भारत कभी ऐश्वय या वभव का उपासक नही रहा उसने सदा धर्म की आराधना की है। चक्रवर्ती सम्राट भी धर्मप्राण सन्तो के चरणो मे विनम्रभाव से नतमस्तक होते आए है। धर्म की रक्षा मे ही हमारी रक्षा है [६] यह भारत के मनीषियो का उद्घोष रहा है। भारतीय साहित्य मे धर्म की रक्षा के लिए प्राणो का बलिदान करने वाल वीर पुरुषो और नारियो के सहस्रो उदाहरण विद्यमान हैं जो आज भी प्रेरणा के स्रोत हैं। इस प्रकार भारत को धर्म प्रधान देश कहने मे तनिक भी अत्युक्ति नही है। भले आज आचरण मे धर्म की न्यूनता दृष्टिगोचर होती हो परन्तु भारतीय जनमानस धर्म के प्रति आज भी सर्वाधिक आस्थावान् है।

धमसम्बन्धी भ्रम

विज्ञानप्रदत्त सुविधाओ के कारण आज समग्र विश्व जसे एकाकार हो गया है। प्रत्येक देश का दूसरे समस्त देशो के साथ निकटतम सम्पक स्थापित हो गया है। ऐसी स्थिति म वाञ्छनीय तो यह था कि भारतीय धर्म एव सस्कृति का सदेश समग्र विश्व मे फलता किन्तु ऐसा हो नही रहा है। जो देश वज्ञानिक दृष्टि से उन्नत और इसी कारण सबल है उनका प्रभाव हमारे देश पर बडी तेजी से पड रहा है। उनकी विचारधारा भी भारतीयो को प्रभावित कर रही है। उसके फलस्वरूप धर्म के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार के भ्रमो की सृष्टि

---

१६ धर्मो रक्षति रक्षित ।

हुई है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि धर्म जीवन को रूखा बनाता है। कइयों की धारणा है कि आत्महित को प्रधानता देकर धर्म मनुष्य को स्वाथपरायण बना देता है। किसी किसी का आक्षेप है कि धर्म त्याग सन्यास या निवत्ति का विधान करके और उस पर अत्यधिक बल देकर मनुष्य को जीवनसघष से दूर भागने की प्रेरणा करता है तो कई लोग धर्म को कलह का मूल कहते हैं।

ये सभी भ्रम धर्म के वास्तविक स्वरूप के नही अपितु अज्ञान के फल हैं। धर्म की जो प्रमाणोपेत व्याख्या हमने प्रस्तुत की है उसी से इन सब भ्रमो का निवारण हो जाता है। धम से जीवन नीरस नही मर्यादित बनता है। सरसता का अथ यदि मर्यादाहीन उछ खल विहार समझा जाय तो बात दूसरी है अन्यथा धम का ऐसा कोई भी विधान नही है जो जीवन मे नीरसता उत्प न करता हो। व्यक्ति को स्वाथ परायण बना देने का आक्षप तो एकदम ही निराधार है क्योकि धम प्राणिमात्र को आत्मवत् समझने की प्रेरणा करता है और परोपकार को आत्मोपकार ही मानने की शिक्षा देता है। जनशास्त्र का विधान है कि मुमुक्ष को स्व-पर के प्रति समभावी होना चाहिए और अपनी विशिष्ट अ त शुद्धि के लिए विशेष रूप से परोपकार करने का यत्न करना चाहिए।[१]

जो त्यागवृत्ति अगीकार करता है प्रव्रज्या ग्रहण करता है या स यास धारण करता है क्या वह जीवनसघष से दूर भागता है? नही गृहस्थी की सुख-सुविधाओ का परित्याग करके जो व्यक्ति त्याग के पथ को अगीकार करता है वह बडी से बडी कठिनाइयो को कष्टो को और अभावो को समभाव से सहन करता है। वह उन सबसे जूझने के लिए कृतसकल्प होता है। महावीर और बुद्ध दोनो राज कुमार थे। ससार के उत्तम से उत्तम सुखसाधन उ हे अनायास उपलब्ध

---

१७ नि श्र यसपदमभिरोढकामेन तदवाप्तये स्वपरसममानसीभूय स्वपरोपकाराय यतितव्यम्। तत्रापि महत्यामाशयविशुद्धौ परोपकृति कत्त शक्यते इत्याशयविशुद्धिप्रकषसम्पादनाय विशेषत परोपकारे यत्न आस्थेय।

—नन्दीसूत्र टीका मलयगिरि

थे। राजमहलों मे उन्हे किसी प्रकार का कष्ट नही था दु ख नही था। फिर किस लिए उन्होंने राजकीय वभव को तृण की तरह त्यागकर तपश्चर्या का पथ अगीकार किया ? खासतौर से भगवान् महावीर का जीवन तो निराला ही है। वे आए हुए सकटो का ही अविचल भाव से सहन नही करते थ किन्तु सकटो को आमन्त्रित भी करते थ और उनको पराजित करने मे आत्मिक वीर्य का सदुपयोग करते थे।

'धम कलह का कारण है'—इस कथन मे भी कोई सचाई नही है। धम कलह को पाप और आत्मपतन मानता है। वह विश्वमैत्री पर बल देता है। अनेकान्त दशन ने समस्त दशनो के मतभेदो का निवारण करने का माग सुझाया है। दक्षिण भारत मे शवो द्वारा जनो के प्रति किए गए प्राणहारी अत्याचार ईसाइयो मे रोमन कैथोलिको और प्रोटेस्टटो के बीच हुए सघष और भारत के हिन्दू मुस्लिम दगे आदि मे क्या वास्तव मे धम का हाथ है ? ससार का कोई भी धम अन्य धर्मावलम्बियो का गला काटने का उपदेश नही देता। यह करतूत तो उन अधार्मिक लोगो की हैं जो अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए धम के पवित्र नाम का दुरुपयोग करते है। धम के वास्तविक स्वरूप को न समझना भी इसका कारण हो सकता है। धमसम्बन्धी अज्ञान धर्मोन्माद को जन्म देता है और लोग धम और धर्मोन्माद मे भेद न करके धम पर लाञ्छन लगाते है। वस्तुत धम का उससे कोई सरोकार नही होता।

धम और पन्थ

ऐसे लोगो की सख्या भी कम नही है जो विविध पन्थो को ही धम मानते हैं। किन्तु धम और पन्थ मे बहुत अन्तर है। धम एक है पन्थो की गणना करना भी सम्भव नही है। धम शाश्वत है पन्थ सामयिक होते है। धम को यदि सरोवर मान लिया जाय तो पन्थ उसमे उठने वाली एक लहर है। युग की समाप्ति के साथ पन्थ समाप्त हो जाते है जब कि धर्म त्रिकाल-अबाधित है। धर्म के अभाव मे सृष्टि के अस्तित्व की कल्पना ही नही की जा सकती।

भारतीय साहित्य मे धर्म की विस्तृत और सूक्ष्मतम विवेचना की

गई है। विभिन्न वर्गों के लिए धर्म की विविध श्रेणियाँ प्रदर्शित की गई है पर विस्तार भय से यहाँ उनका उल्लेख नही किया जा सकता।

धर्म और दशन

धर्म और दशन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह कहना भी अत्युक्ति न होगा कि धर्म और दशन एक सिक्के के दो बाजू हैं। मानव जीवन के साथ जैसे धम का सम्बन्ध है वैसे ही दशन का भी। धर्म आचारपक्ष है दशन विचारपक्ष है।

दशन क्या है ?

दर्शन का सामान्य अथ दृष्टि है[१८]। प्रस्तुत दृष्टि को अंगरेजी भाषा मे विजन (V sio) कहते है। साधारणत प्रत्येक व्यक्ति जिसे नेत्र प्राप्त है देखता ही ह मगर यहाँ पर वह साधारण दृष्टि विवक्षित नही ह। दशन का सही अथ दिव्य दृष्टि ह जिसके द्वारा तत्त्व का साक्षात्कार होता ह।

दशन मानव मस्तिष्क की बौद्धिक उपज कहा जाता है। इस कथन मे आंशिक सत्य है किन्तु पूर्ण सत्य नही। जगत् में अनेक दर्शन ऐसे भी है जो मानव-मस्तिष्क के चिन्तन-व्यायाम से उद्भूत हैं किन्तु अल्पज्ञ का मस्तिष्क चाहे जितना भी उवर क्यो न हो तत्त्व के सम्पूर्ण स्वरूप का स्पश नही कर सकता। मस्तिष्क की दौड की एक सीमा है। उसमें सीमित सत्य ही समा सकता है किन्तु जब मनुष्य अति विश्वास का शिकार होता है और अपनी अक्षमता को स्वीकार न करके अपने आपको सवसमथ समझ बठता है तो वह अपने द्वारा दष्ट अपूर्ण सत्य को पूर्ण समझ लेता है। उसे यह मालूम नही होता कि मैंने जो कुछ देखा जाना या समझा है। उससे आगे भी बहुत कुछ है। वह उन अन्धो की टोली का ही एक सदस्य बन जाता है जो हाथी के एक एक अग को ही परिपूर्ण हाथी समझ कर आपस मे झगडने लगत हैं।

---

१८ दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम्।

—सर्वदशन सग्रह टीका

सत्य एक है किन्तु उसका निरूपण करने वाले दर्शन अनेक हैं और उनका निरूपण परस्पर विरोधी है। आत्मभिन्न पदार्थों की बात छोडिए और आत्मा को ही लीजिए। उसके विषय मे जितने मु ह उतनी बात हैं। एक दशन का निरूपण दूसरे दशन से मेल नही खाता। एक दशन आत्मा के अस्तित्व का एकान्त निषध करता है और दूसरा एकान्त विधान करता है। आत्मासम्बन्धी ये दोनो दृष्टियाँ क्या सत्य हैं ? सत्य कोई बहुरूपिया नही है, जो एक को अपना एक रूप और दूसरे को दूसरा रूप प्रदर्शित करे। इसके अतिरिक्त बहुरूपिया का भी असली रूप तो एक ही होता है। उसके अनेक रूप अवास्तविक हैं। तात्पय यह है कि मानवमस्तिष्क से उपजने वाले दशनो मे पूणता सम्भव नही है।

पूण सत्य की उपलब्धि करने वाला दशन वही हो सकता है जो दिव्यदृष्टि से उद्भूत होता है। दिव्यदृष्टि का अथ है—अतीन्द्रिय ज्ञान। तीव्र तपश्चर्या और गम्भीरतम आत्मानुभूति जब चरम सीमा को प्राप्त होती है तब साधनानिरत पुरुष की आत्मा समस्त आवरणो को छिन्न भिन्न करके अनन्त ज्ञान की लोकोत्तर ज्योति से जगमगाने लगती है। वह ज्योति इतनी निमल होती है कि उसमे प्रत्येक वस्तु अपने वास्तविक स्वरूप मे प्रतिभासित होती है। वह ज्योति इतनी पूण होती ह कि जगत् की सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु भी उससे अप्रकाशित नही रहती। वह ज्योति ऐसी अप्रतिहत होती है कि देश और काल की दीवार उसकी गति को नही रोक सकती। वह ज्योति इतनी प्रखर होती ह कि उसे प्राप्त करने वाला सवज्ञ सर्वदर्शी बन जाता ह।

दिव्यदृष्टि से उद्भूत दशन ही वास्तविक दशन ह। वही वस्तुस्वरूप की यथार्थता का निदशक होता ह। वह तक और युक्ति का सबल लकर वस्तु के प्रत्येक पहलु पर चिन्तन करता है।

उद्देश्य

जैसा कि प्रारम्भ मे कहा जा चुका ह भारत मे धम और दर्शन का घनिष्ठ सम्बन्ध है और वे एक दूसरे के पूरक हैं। दोनो का

उद्देश्य एक ही है—अपवर्ग निश्रेयस् विदेह दशा निर्वाण आत्यन्तिक दुखनिवृत्ति या ब्रह्म की प्राप्ति।

मत्रेयी याज्ञवल्क्य से कहती ह—जिससे मैं अमृत नही बनती उसे लेकर क्या करू ? जो अमृतत्त्व का साधन हो वही मुझे बताओ।[1]

इषुकार नरेश से रानी कमलावती कहती है—राजन् धर्म के अतिरिक्त कोई भी वस्तु त्राणप्रदाता नही है।[2]

इस प्रकार मैत्रयी अपने पति से मोक्ष के साधनभूत दर्शन की माँग करती है और महारानी कमलावती अपने पति को मोक्ष के साधनभूत धम को ही त्राणप्रद बतलाती है। इन सम्वादो से स्पष्ट हो जाता है कि धम और दशन दोनो का स्वर एक है।

पाश्चात्य विद्वान धम और दर्शन को पृथक-पृथक मानते हैं। उन्होने दशन के लिए फिलासफी (Philo ophy) शब्द का प्रयोग किया है जिसका अथ है—बुद्धि का प्रेम (Love of wisdom)। दशन केवल बुद्धि का चमत्कार है। इस प्रकार पाश्चात्य विचार के अनुसार दार्शनिक वह है जो जीव जगत् परमात्मा और परलोक का निरपेक्ष विद्यानुरागी हो। वहाँ दशन केवल दशन के लिए ह अर्थात् कोरा बुद्धिविलास है।

किन्तु भारतीय दशन का लक्ष्य बहुत ऊँचा ह। उसका केन्द्रबिन्दु आत्मा ह अर्थात् अपने आपको सही रूप मे पहचानना ह। साथ ही वह विश्व के समस्त पदार्थो की वास्तविकता को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता ह। यहाँ दशन केवल कल्पनाकुशल कोविदो के मनो विनोद का साधन नही मगर तत्त्व को जानकर हितप्रवत्ति का

---

१ येनाह नामृता स्यां कि तेन कुर्याम् ? यदेव भवान् वद तदेव मे ब्रूहि।

—बृहदारण्यकोपनिषद्

२ एगो हु धम्मो नरदेव ! ताणं
न विज्जए अन्नमिहेह किंचि।

—उत्तराध्य १४, ४

साधन है। आत्मोत्कर्ष के लिए व्यर्थ के काल्पनिक आदर्शों के गगन मे उड़ान भरने की अपेक्षा उन आदर्शों को जीवन मे उतारना अधिक उत्तम है।

आत्मोत्थान मे धम आचार के रूप मे साधन ह तो दशन विचार के रूप मे। आचार और विचार के सम-वय से ही अभीष्ट की सिद्धि होती ह। यही कारण ह कि वदिक दर्शन ने ज्ञानयोग और कर्मयोग के रूप मे[२] बौद्ध दशन ने विद्या और चारित्र के रूप म[२] तथा जैनदर्शन ने सम्यग दशन सम्यग् ज्ञान और सम्यक चारित्र के रूप[२] मे आचार और विचार का सम-वय किया है।

आचारहीन विचार निष्फल ह और विचारहीन आचार अ-धकार मे ठोकर खाने के समान केवल आयासजनक ही होता ह। दशन जीवन का प्रकाश ह तो धम गति है। दशन जीवन की शक्ति ह और धम जीवन की अभिव्यक्ति ह। दशन से विचार की शुद्धि होती ह और धम से आचार की विशुद्धि होती ह।

सस्कृत साहित्य मे अ-ध पगु न्याय प्रसिद्ध ह। अ-धा चल सकता ह देख नही सकता। उसे उ-माग और स-माग का विवेक नही होता। अतएव वह उ-माग या विपरीत माग पर चल कर अपने लक्ष्य से और अधिक दूर हो सकता ह। पगु देख सकता ह पर चल नहीं सकता। उसका देखना किसी काम नही आता। अतएव दोनों में समन्वय आवश्यक है। इसी प्रकार यह अनिवाय ह कि अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य आचार और विचार का सम-वय करे और शुद्ध विचार की रोशनी मे चले। यही धम और दशन का समन्वय है।



---

२१ देखिए भगवद्गीता।

२२ अगुत्तरनिकाय ११-११

२३ आहसु विज्जा चरण पमोक्खं।

—सूत्रकृतांग १।१२।११

(ख) स्थानांग २-६३

(ग) तत्त्वाथसूत्र १-१

(घ) आवश्यकनियुक्ति गा ९४ और ९६

दो | अध्यात्मवाद एक अध्ययन

भारतवष सदव अध्यात्म विद्या की लीलाभूमि रहा है। प्रतापपूर्ण प्रतिभासम्पन्न विज्ञो ने अध्यात्म क्षत्र मे जिस चिरन्तन सत्य का साक्षात्कार किया उसकी प्रभास्वर रश्मिमाला से विश्व का प्रत्येक भूभाग आलोकित है। भारतीय इतिहास व साहित्य प्रस्तुत कथन का ज्वलन्त प्रमाण है कि आध्यात्मिक गवेषणा अन्वेषणा और उसका सम्यक आचरण ही भारत के सत्य-शोधी साधको के जीवन का एकमात्र अभिलषित लक्ष्य रहा है। आध्यात्मिक उत्क्रान्ति के द्वारा ही भारत ने विश्व का नेतृत्व किया और विश्वगुरु के महत्त्वपूर्ण पद से अपने को समलकृत किया।

भारतीय सस्कृति की समुज्ज्वल विचारधाराए विवध रूपो व रगो मे व्यक्त हुई हैं जिनकी गणना करना असम्भव न सही कठिन अवश्य है। तथापि यह निर्विवाद है कि जन बौद्ध और वदिक ये तीनो धाराए ही उनमे प्रमुख हैं। इन त्रिविध धाराओ मे ही प्राय अन्य सभी धाराए अन्तर्हित हो जाती हैं। उनमे अध्यात्म विद्या की गरिमा का जो मधुर गान गाया गया है वह भौतिक भक्ति के युग मे पले पुसे इन्सान को भी विस्मय से विमुग्ध कर देता है। विमुग्ध ही नही जो मानव भौतिकता की चकाचौंध म प्रतिपल प्रतिक्षण बहिद्रष्टा बनते जा रहे हैं जिन्हे अन्तदर्शन का अवकाश नही है आत्ममार्जन की चिन्ता नही है अन्तरतम की परिशुद्धि और परिष्कृति का उद्दश्य जिनके सामने नही है केवल बहिर्दशन ही जिनके जीवन का परम और चरम ध्येय है उन्हें भी प्रस्तुत संगीत एक बार तो आत्मदशन की पवित्र प्रेरणा प्रदान करता ही है।

मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ?[1] यहाँ से कहाँ जाऊ गा ? क्या मेरा पुनर्ज न्म होगा ? मेरा स्वरूप क्या है ? क्या मैं देह हूँ ? इन्द्रिय हूँ ? मन हूँ ? या इन सबसे भिन्न कुछ हूँ ? इन सभी प्रश्नों का सही समाधान भारत के मनीषी मूधन्य-मुनियो ने प्रदान किये है। भाषा परिभाषा प्रतिपादनपद्धति और परिष्कार मे अन्तर होने पर भी सूक्ष्म व समन्वय दृष्टि से अवलोकन करने पर सूर्य के प्रकाश की भांति यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे सभी एक ही राह के राही है।

जन दृष्टि

भारतीय सस्कृति मे जैन सस्कृति का स्वत न्त्र स्थान है स्वत न्त्र विचारधारा है और स्वत त्र निरूपण पद्धति है। जैन दशन को जिन दर्शन या आत्म-दशन भी कह सकते है। जैनदशन मे आत्मा के लक्षण और स्वरूप के सम्ब न्ध मे अत्यन्त सूक्ष्म गम्भीर और व्यापक विचार किया गया है। जन-दशन के अनुसार आत्मा चत न्य स्वरूप है षट् द्रव्यो मे स्वत न्त्र द्रव्य है।[3] नव पदार्थों मे प्रथम पदाथ है। सप्त तत्त्व मे प्रथम तत्त्व है। पचास्तिकाय मे चतुथ अस्ति काय है।[6]

---

१ आचाराग प्रथम अध्ययन।

२ जीवे ण भते ! जीवे जीवे जीवे ? गोयमा ! जीवे ताव नियमा जोवे जीवे वि नियमा जीव।

—भगवती ६।१

३ धम्मो अधम्मो आगासो कालो पु गल जतवो।
एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहि वरदसिहि॥

—उत्तराध्ययन २८

४ नव स भावपयत्था प त जीवा अजीवा पुण्ण पावो आसवो सवरो णि जरा बधो मोक्खो।

—ठाणाङ्ग ६।८६७

५ जीवाजीवास्रवब धसवरनिर्जरामोक्षास्त त्वम्।

—तत्त्वाथ १।४

६ पच अत्थिकाया प त धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए।
आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए।

—ठाणाङ्ग ५।२।५३

(ख) भगवती २।१ । पृ ५२३

उपयोग ही उसका मुख्य लक्षण है। उपयोग शब्द ज्ञान और दर्शन का संग्राहक है। चेतना के बोधरूप व्यापार को उपयोग कहते हैं। वह दो प्रकार का है—(१) साकार उपयोग (२) और अनाकार उपयोग। साकार उपयोग ज्ञान है और अनाकार उपयोग दर्शन है। जो उपयोग पदार्थों के विशेष धर्म का (जाति गुण क्रिया आदि का) बोध कराता है वह साकार उपयोग है और जो सामान्य सत्ता का बोध कराता है वह अनाकार उपयोग है। यो आत्मा में अनन्त गुण पर्याय हैं किन्तु उन सभी में उपयोग ही प्रमुख और असाधारण है। वह स्व पर प्रकाशक होने से अपना तथा दूसरे द्रव्य गुण पर्यायो का ज्ञान करा सकता है। सुख-दु ख का अनुभव करना अस्ति-नास्ति को जानना यह सब उपयोग का ही काय है। उपयोग जड पदार्थों मे नही होता क्योकि उनमें चेतना शक्ति का अभाव है।

आत्मा को ज्ञानस्वरूप कहा है। इसका अथ यह नही कि वह ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ नही है इसमे दशन भी है आनन्द भी है

---

७ उवओगलक्खणेण जीवे।

—भगवती १३।४।४८

(ख) गुणओ उवओगगुणो।

—ठाणाङ्ग ५।३।५३

(ग) जीवो उवओगलक्खणो।

—उत्तराध्ययन २८।१

(घ) उवओगलक्खणे जीवे।

—भगवती २।१

(ङ) उपयोगो लक्षणम्।

—तत्त्वार्थ सूत्र २।८

(च) जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता ससारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई॥

—द्रव्य सग्रह नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती

८ आया भते! नाणे अन्नाणे? गोयमा आया सिय नाणे सिय अन्नाणे णाणे पुण नियमं आया।

—भगवती १६।३

अनन्तवीर्य भी है अ य धर्म भी हैं। वस्तुत ज्ञान और आत्मा मे गुण-गुणी का तादात्म्य सम्ब ध है। ज्ञान गुण है आत्मा गुणी (द्रव्य) है। इसो भाव को व्यक्त करने के लिए भगवती सूत्र मे कहा है—आत्मा ज्ञान भी है और ज्ञान के अतिरिक्त भी है किन्तु ज्ञान नियम से आत्मा ही है। आत्मा साक्षात ज्ञान है और ज्ञान ही साक्षात आत्मा है।[९] जो आत्मा है वही विज्ञाता है जो विज्ञाता है वही आत्मा है। जो इस तत्त्व को स्वीकार करता है वह आत्मवादी है। ज्ञान और आत्मा के द्वै त को जन दशन स्वीकार नही करता है। आत्मा और ज्ञान मे तादात्म्य है वे अलग अलग तत्त्व नही है जसा कि कणाद आदि स्वीकार करते है।

विस्तार की दृष्टि से आत्मा का लक्षण बतलाते हुए भगवान् महावीर ने कहा—ज्ञान दशन चारित्र तप वीय उपयोग ये जीव के लक्षण है।[११] अर्थात आत्मा ज्ञान दशन चारित्र तप वीय (शक्ति) और उपयोगमय है।

आत्मा अरूपी है।[१२] श ब्द रूप ग ध रस और स्पश से रहित है।[१३] वह न लम्बा है न छोटा है न टेढा है न गोल न चौरस है न मण्डलाकार है अर्थात् उस की अपनी कोई आकृति नही है। न

---

९ आ मा ज्ञान स्वय ज्ञान ज्ञानादन्यत् करोति किम् ?

—आचाय अमृतचन्द्र

१ जे आया से विण्णाया जे विण्णाया से आया।
जेण विजाणाति से आया त पडुच्च पडिसखाए से आयावादी।

—आचारांग १

११ नाण च दसण चेव चरित्त च तवो तहा।
वीरिय उवओगो य एव जीवस्स लक्खण॥

—उत्तराध्ययन २८।११

१२ अरूवी सत्ता ।

—आचारांग ६।१।३३३

(ख) चत्तारि अत्थिकाया अरूविकाया प त जीवत्थिकाए ।

—स्थानाङ्ग ४।१।३१४

१३ से ण सद्दे ण रूवे ण गधे ण रसे ण फासे

—आचारांग ६।१।३३३

हल्का है न भारी है। क्योंकि लघुता-गुरुता जड के धर्म हैं ! वह न स्त्री है न पुरुष है[14] क्योंकि ये शरीराश्रित उपाधियां हैं। वह अनादि है अनिधन है अविनाशी है अक्षय है ध्रुव और नित्य है।[15] वह पहले भी था अब भी है और भविष्य मे भी रहेगा[16] तीनों कालो मे भी वह जीव रूप मे ही विद्यमान रहता है। जीव कभी अजीव नही होता[17] लोक मे जीव और अजीव शाश्वत है।[18] आत्मा

(ख) जीवत्थिकाए ण अवन्ने अगधे अरसे अफासे अरूवी भावतो अवन्ने अगन्ध अरसे अफासे अरूवी

—स्थानाङ्ग ५।३।५३

(ग) जीवत्यिकाए ण भते ! कतिवन्ने कतिगध कतिरसे कतिफासे ? गोयमा ! अवण्ण जाव अरूवी।

—भगवती २।१

१४ से ण दीहे ण हस्से ण वट्ट ण तसे ण चउरसे ण परिमडले ण किण्हे ण णील ण लोहिए ण हालिद्द ण सुक्किल्ले ण सुरहिग धे ण दुरहिगन्ध ण तित्त ण कडुए ण कसाए ण अबिले ण महुरे ण कक्खडे ण मउए ण गरुए ण लहुए ण सीए ण उण्हे ण णिद्ध ण लुक्खे ण काऊ ण रूहे ण सगे ण इत्थी ण पुरिसे ण अन्नहा परिण्णे सण्णे।

—आचाराग ३।१।३३१

१५ जीवो अणाइअनिधनो अविणासी अक्खओ धुवो णिच्च।

—भगवती

१६ कालओ ण कयाइ णासी न कयाइ न भवइ न कयाइ न भविस्सइत्ति भुवि भवइ य भविस्सइ य धुव णितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे।

ठाणाङ्ग ५।३।५३

(ख) भगवती १।४।४१

१७ ण एवं भूय वा भव्व वा भविस्सइ वा ज जीवा अजीवा भविस्सन्ति अजीवा वा जीवा भविस्सन्ति।

—ठाणाङ्ग १०।१।६३१

१८ के सासया लोए ? जीवच्चेव अजीवच्चेव।

—ठाणाङ्ग २।४।१५१

ज्ञान मय असख्य प्रदेशों का पिण्ड है। वह अरूप है एतदर्थ नेत्रों से देखा नही जाता, किन्तु चेतना गुणो से उसका अस्तित्व जाना जा सकता है। वह वाणी द्वारा प्रतिपाद्य[१] और तर्क द्वारा गम्य नहीं है।[२]

गणधर गौतम के प्रश्न के उत्तर मे भगवान् महावीर ने अनेकान्त की भाषा मे आत्मा को जहाँ नित्य बताया है वहाँ अनित्य भी बताया है।

एक समय की बात है। भगवान् महावीर के चरणारविन्दो मे गौतम स्वामी आए। वन्दना करके विनम्र भाव से बोले—भगवन्! जीव नित्य है या अनित्य है?

भगवान् बोले—गौतम! जीव नित्य भी है और अनित्य भी।

गौतम—भगवन्! यह किस हेतु से कहा गया कि जीव नित्य भी है और अनित्य भी!

भगवान्—गौतम! द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है।[२१]

अभिप्राय यह है कि जीवत्व की दृष्टि से जीव शाश्वत है। अपने मूल द्रव्य के रूप मे उसकी सत्ता त्रकालिक है। अतीतकाल मे जीव था वतमान में है और भविष्य मे भी रहेगा क्योकि सत् पदाथ कभी असत् नही होता। इस प्रकार द्रव्यत नित्य होने पर भी जीव पर्यायत अनित्य है क्योकि पर्याय की दृष्टि से वह सदा परिवतनशील है। जीव विविध गतियो में विभिन्न अवस्थाओ मे परिणत होता रहता है।

जसे सोने के कुण्डल मुकुट हार आदि अनेक आभूषण बनने पर भी नाम और रूप मे अन्तर पड जाने पर भी सोना सोना ही रहता

---

१९ अपयस्स पय णत्थि।

—आचारांग ६।१।३३२

२ सव्वे सरा णियट्टन्ति तक्का जत्थ ण विज्जइ। मई तत्थ ण गाहिता।

—आचारांग ६।१।३३

२१ भगवती शतक ७ उद्द २

है वैसे ही विविध योनियो मे भ्रमण करते हुए जीव के पर्याय बदलते हैं—रूप और नाम बदलते हैं—मगर जीव द्रव्य वही रहता है।

जीवन मे सुख और दुःख किस कारण से पैदा होते हैं ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान् महावीर ने कहा—आत्मा ही अपने सुख और दुःख का कर्ता है और भोक्ता है।[२२] आत्मा ही अपने कृत कर्मों के अनुसार विविध गतियो मे परिभ्रमण करता है[२३] और अपने ही पुरुषार्थ से कर्मपरम्परा का उच्छेद कर सिद्ध बुद्ध और मुक्त बनता है।[२४]

जसा कि पहले कहा जा चुका ह आत्मा का कोई आकार नही है किन्तु सकमक आत्मा किसी न किसी शरीर के साथ ही रहती है अतएव प्राप्त शरीर का आकार ही उसका आकार हो जाता ह। इस कारण जन दशन में आत्मा को कायपरिमित माना गया ह। आत्मा स्वभावत असख्यात प्रदेशी ह और उसके प्रदेश सकोच विकास शील होते हैं। अतएव वह कर्मोदय के अनुसार जो शरीर उसे प्राप्त होता ह उसी मे उसके समस्त प्रदेशो का समावेश हो जाता ह। इस प्रकार न आत्मा शरीर के एक भाग मे रहती ह न शरीर के बाहर होती है और न सवव्यापी ह। अलबत्ता केवलीसमुद्घात के समय उसके प्रदेश समस्त लोक मे व्याप्त हो जाते हैं इस अपेक्षा से उसे लोकव्यापक कहा जा सकता ह।[२] मगर एकसमयभावी उस अवस्था की विवक्षा नही करके आत्मा शरीरप्रमाण ही मानी जाती ह।

---

२२ उत्तरा २।३७

२३ जमिणं जगई पुढो जगा कम्मेहिं लुप्पन्ति पाणिणो।
सयमेव कडेहिं गाहइ नो तस्स मुच्चेज्जऽपुट्ठय॥

—सूत्रकृताङ्ग १।२।१।४

२४ जह य परिहीण-कम्मा सिद्धा सिद्धालयमुवेंति।

—औपपातिक

२५ द्रव्यसंग्रह, ब्रह्मदेवकृत टीका १०

जैसे दीपक को एक घडे के नीचे रख दिया जाय तो उसका प्रकाश घडे में समा जाता ह। उसी दीपक को यदि किसी विशाल कमरे मे रख दें तो वही प्रकाश फलकर उस कमरे को व्याप्त कर लेता है और यदि खुले आकाश मे रख दें तो और भी अधिक क्षेत्र को अवगाहन कर लेता ह उसी तरह आत्मप्रदेशो का सकोच और विस्तार होता है। यह अनुभवसिद्ध ह कि शरीर मे जहाँ कही चोट लगती ह वहाँ सवत्र दु ख अनुभव होता है। शरीर से बाहर किसी भी वस्तु को काटने पर दु ख अनुभव नही होता। यदि शरीर से बाहर आत्मा होता तो अवश्य ही दु ख होता अत आत्मा सवव्यापी न होकर देहप्रमाण ही ह।[२६]

गौतम ने जिज्ञासा व्यक्त की—भगवन्। जीव सख्यात है असख्यात है या अनन्त ह? भगवान् ने समाधान किया—गौतम? जीव अनन्त हैं।[२]

जीवो की सख्या कभी न्यूनाधिक होती ह या अवस्थित रहती ह? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान महावीर ने कहा—गौतम! जीव कभी कम और कभी अधिक नही होत किन्तु अवस्थित रहत हैं।[२] अर्थात् जीव सख्या की दृष्टि से सदा अन त रहत हैं। अन त होने

---

२६ सदेहपरिणामो।

—द्रव्यस ग्रह

२७ जीवदव्वा ण भ ते! कि सखे जा असखे जा अणता? गोयमा! नो सखे जा नो असखे जा अणता।

—भगवती २५।२।७१६

(ख) के अणता लोए? जीवच्चेव अजीवच्चेव।

—ठाणाङ्ग २।४।१५१

२८ भन्ते त्ति भगव गोयमे जाव एवं वयासी—जीवाण भन्ते! कि वड्ढन्ति हायन्ति अवट्ठिया? गोयमा! जीवा णो वड्ढति नो हायन्ति अवट्ठिया। जीवाण भन्ते केवइय काल अवट्ठिया (वि)? सव्वद्ध।

—भगवती ५।८।२२१

२९ दव्वओ ण जीवत्थिकाए अणताइ जीवदव्वाइ।

—भगवती २।१ ।११७

पर भी सभी आत्माएँ चेतन और असंख्यात प्रदेशी हैं अत एक हैं ।[30] क्षेत्र की दृष्टि से जीव लोकपरिमित ह । जहाँ लोक है वहाँ जीव ह । जहां तक जीव ह वहाँ तक लोक ह ।[31]

आत्मा अच्छेद्य ह अभेद्य ह उसे अग्नि जला नही सकती शस्त्र काट नही सकता ।[2] जीव कदापि विलय को प्राप्त नही होता । यह एक परखा हुआ सिद्धान्त है कि अस्तित्व अस्तित्व मे परिणमन करता है और नास्तित्व नास्तित्व मे परिणमन करता है ।[3] द्रव्य से अस्तित्ववान जीव भविष्य मे नास्तित्व में परिणमन नही कर सकता ।

(ख) दव्वओ ण जीवत्थिकाए अणताइ दव्वाइ ।

—ठाणाङ्ग ५ ३।५३

३ एगे आया ।

—ठाणाङ्ग १।१

३१ जाव ताव लोग ताव ताव जीवा जाव ताव जीवा ताव ताव लोए ।

—ठाणाङ्ग १ ।६३१

३२ से न छिज्जइ न भिज्जइ न डज्झइ न हम्मइ कचण सव्वलोए ।

—आचारांग १।३।३

(ख) अह भते ! कुम्मे कु भावलिया गाहे गोहावलिया गाण गोणावलिया मणुस्से मणुस्सावलिया महिसे महिसा वलिया एएसि ण दुहा वा तिहा वा सखे जहा वा छिन्नाण जे अन्तरा तेवि ण तेहि जीवपएसेहिं फुडा ? हन्ता फुडा । पुरिसे ण भते ! (ज अतर) ते अन्तरे हत्थेण वा पाएण वा अगुलिया वा सलागाए वा कट्ठ ण वा कलिचेण वा आमुसमाणे वा समु समाण वा आलिहमाणे वा विलिहमाणे वा अन्नयरेण वा तिक्खेण सत्थजाएण आच्छिन्दमाणे वा विच्छिन्दमाणे वा अगणिकाएण वा समोडहमाण तेसि जीवपएसाण किंचि आबाह वा बिबाह वा उप्पायइ छविच्छेद वा करेइ ? णो तिणट्ठ समट्ठ नो खलु तत्थ सत्थं सकमइ ।

—भगवती ८।३।३२४

३३ से णूण भन्ते ! अत्थित्त अत्थित्त परिणमइ नत्थित्त नत्थित्त परिणमइ ? हन्ता गोयमा ! जाव परिणमइ ।

—भगवती १।३।३२

जैसे दूध और पानी बहिर्दृष्टि से एक प्रतीत होते हैं वैसे ही संसारी दशा में जीव और शरीर एक लगते हैं पर वे पृथक् पृथक हैं।

वादिदेव सूरि ने सक्षप मे सांसारिक आत्मा का स्वरूप इस प्रकार बताया है। आत्मा प्रत्यक्षादि प्रमाणो से सिद्ध है। वह चैतन्यस्वरूप है परिणामी है कर्मों का कर्त्ता है। सुख दुःख का साक्षात भोक्ता है स्वदेहपरिमाण है प्रत्येक शरीर मे भिन्न है पौद्गलिक कर्मों से युक्त है।[34] प्रस्तुत परिभाषा मे जैन दर्शन सम्मत आत्मा का पूर्णरूप आ गया है।

आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व की सिद्धि के लिए श्री जिनभद्र गणी ने विशेषावश्यक भाष्य मे विस्तार से अन्य दार्शनिको के तर्कों का खण्डन कर आत्मा की ससिद्धि की है। विस्तार भय से वह सारी चर्चा यहाँ नही की जा रही है। पाठको को मूल ग्रन्थ देखना चाहिए।[35]

जैन आगम साहित्य मे भी यथाप्रसग नास्तिक दर्शन का उल्लेख कर उसका निराकरण किया गया है। सूत्रकृताङ्ग मे अन्य मतो का निर्देश करते हुए नास्तिको के सम्बन्ध मे कहा है— कुछ लोग कहते है—पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश—ये पाँच महाभूत है। इन पाँच महाभूतो के योग से आत्मा उत्पन्न होता है और इनके विनाश व वियोग से आत्मा भी नष्ट हो जाता है।

---

३४ प्रमाता प्रत्यक्षादिप्रसिद्ध आत्मा। चैतन्यस्वरूप परिणामी कर्ता साक्षाद् भोक्ता स्वदेहपरिमाण प्रतिक्षेत्र भिन्न पौद्गलिकादृष्टवांश्चायम्।

—प्रमाणनयतत्त्वालोक ७।५५–५६

३५ विशेषावश्यकभाष्य।

३६ सन्ति पच महब्भूया इहमेगेसिमाहिया।
पुढवी आउ तेउ वा वाउ आगास पचमा॥
एए पच महब्भूया तेब्भो एगोत्ति आहिया।
अह तेसि विणासेण विणासो होइ देहिणो॥

—सूत्रकृताङ्ग अ १। गाथा ७–८

आचार्य शीलाङ्क ने प्रस्तुत गाथाओं की वृत्ति में लिखा है—भूतसमुदाय काठिन्य आदि धर्मों वाले हैं। उनका गुण चैतन्य नहीं है। पृथक्-पृथक गुण वाले पदार्थों के समुदाय से किसी अपूर्व गुण वाले पदार्थ की निष्पत्ति नहीं होती। जसे रूक्ष बालुकणों के समुदाय से स्निग्ध तल की उत्पत्ति नहीं होती वैसे ही चतन्य गुण वाली आत्मा की जडत्व धम वाले भूतों से उत्पत्ति होना सम्भव नहीं।[३७] भिन्न गुण वाले पाँच भूतों के सयोग से चेतनागुण की निष्पत्ति नही होती। यह प्रत्यक्ष ह कि पाँचो इन्द्रियाँ अपने अपने विषय का ही परिज्ञान करती है। एक इन्द्रिय द्वारा जाने हुए विषय को दूसरी इन्द्रिय नही जानती किन्तु पाँचो इन्द्रियो के जाने हुए विषय को समष्टि रूप से अनुभूति कराने वाला द्रव्य कोई भिन्न ही होना चाहिए और उसे ही आत्मा कहते हैं।

इस प्रकार आत्मा के सम्बन्ध में जैन दशन के मौलिक और स्पष्ट विचार है।

बौद्ध दृष्टि

महात्मा बुद्ध ने सासारिक विषयासक्ति से दूर रहकर आत्म गवेषणा और आत्म शान्ति का उपदेश दिया ह। उन्होने कहा—आत्मदीप होकर विहार करो आत्मशरण अनन्यशरण ही रहो—अत्तदीपा विहरथ अत्तसरणा अनञ्ञसरणा। उनकी दृष्टि से जो

---

३७ भूतसमुदाय स्वातन्त्र्ये सति धर्मित्वेनोपादीयते न तस्य चेतनाख्यो गुणोऽस्तीति साध्यो धर्मः पृथिव्यादीनामन्यगुणत्वात्। यो योऽन्यगुणाना समुदायस्तत्राऽपूर्वगुणोत्पत्तिन भवतीति। यथा सिकतासमुदाये स्निग्ध गुणस्य तलस्य नोत्पत्तिरिति घटपटसमुदाये वा न स्तम्भादयो विभावा इति दृश्यते च कार्यंचतन्य तदात्मगुणो भविष्यति न भूतानामिति।

—सूत्रकृताङ्ग वृत्ति

३८ पचण्ह सजोगे अण्णगुणाण न चेयणाई गुणो होइ।
पचिन्दिय ठाणाण सा अण्णमुणिय मुणई अण्णो॥

—सूत्रकृताङ्ग-शीलांकवृत्ति

३९ दीघनिकाय ३।३।१

निर्मोही है वही अक्षय आध्यात्मिक आनन्द का अधिकारी है। और वह सुख बिना काम-सुख त्यागे प्राप्त नही हो सकता।[४०]

कामसुख हीन और अनाय है जब तक उसका परित्याग नही किया जाता उस पर विजय प्राप्त नही की जाती तब तक आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव नही होता।

आध्यात्मिक सुखानुभूति होने के पश्चात् पुन प्राणी किसी सासारिक सुखतृष्णा म नही पड सकता। यह आध्यामिक सुख सम्राटो के और देवताओ के सुख से बढकर ह।

आत्मशरण की प्रबल प्रेरणा देने पर भी बौद्ध दशन आत्मा के सम्बन्ध मे एक निराली दृष्टि रखता है। वह किसी दष्टि से आत्मवादी ह और किसी दृष्टि से अनात्मवादी भी ह। एक ओर पुण्य पाप पुनजन्म कम स्वग नरक मोक्ष को स्वीकारने के कारण आत्मवादी ह तो दूसरी ओर आत्मा के अस्तित्व को सत्य नही किन्तु काल्पनिक सज्ञा मानने के कारण अनात्मवादी ह।

महात्मा बुद्ध ने अनात्मवाद का उपदेश दिया ह। इसका अथ आत्मा जसे पदार्थ का सवथा निषध नही ह किन्तु उपनिषदो म जो

---

४० तो क्या मानते हो मागन्दिय! क्या तुमने कभी देखा या सुना है किसी को विषय भोगो से लिप्त विषया को बिना छोडे काम दाह बिना त्यागे काम तृष्णा बिना छोडे पिपासारहित होकर अपने अन्दर शान्ति अनुभव करते हुए? नही भो गौतम! साधु मागन्दिय! मैंने भी नही देखा न सुना।

—मज्झिम नि (मागन्दिय सुत्तन्त) २।३।५

४१ मज्झिम निकाय १।४।८ (महात हासखय-सुत्तन्त)।

४२ यथा हि राजा रज्जसुख देवता दिब्ब सुख अनुभवन्ति एव अरिया अरिय लोकुत्तर सुख अनुभविस्सामीति इच्छितिक्ख तक्खणे फल समापत्ति समापज्जन्ति।

—विसुद्धिमग्ग ३।८

शाश्वत अद्वैत आत्मा का निरूपण किया गया है और उसे संसार का एक मात्र मौलिक तत्त्व माना है उसका खण्डन है। यद्यपि चार्वाक की तरह बुद्ध भी अनात्मवादी हैं किन्तु बुद्ध पुद्गल आत्मा जीव चित्त आदि को एक स्वतन्त्र वस्तु मानते हैं जबकि चार्वाकदर्शन चार या पाँच भूतो से समुत्पन्न होने वाली परतन्त्र वस्तु मानते हैं। महात्मा बुद्ध भी जीव पुद्गल अथवा चित्त को अनेक कारणो से समुत्पन्न मानते हैं और इस दृष्टि से वह परतन्त्र भी है किन्तु इस उत्पत्ति में जो मूल कारण हैं उनमें विज्ञान और विज्ञानेतर दोनो प्रकार के कारण रहते हैं जबकि—चार्वाक दर्शन में चैतन्य की उत्पत्ति में चैतन्य से अतिरिक्त भूत ही कारण है चैतन्य नहीं। सारांश यह है कि भूतो के सदृश विज्ञान भी एक मूल तत्त्व है जो बुद्ध की दृष्टि से जन्य और अनित्य है किन्तु चार्वाक भूतो के अतिरिक्त विज्ञान को मूल तत्त्व नहीं मानते। चैतन्य विज्ञान की संतति धारा को बुद्ध अनादि मानते है किन्तु चार्वाक नहीं।[43]

महात्मा बुद्ध का मन्तव्य था कि जन्म जरा मरण आदि किसी स्थायी ध्रुव जीव के नहीं होते किन्तु वे सभी विशिष्ट कारणो से समुत्पन्न होते हैं। अर्थात् जन्म जरा मरण इन सबका अस्तित्व तो है किन्तु उसका स्थायी आधार वे स्वीकार नहीं करते।[44] जहाँ उन्हे चार्वाक का देहात्मवाद स्वीकार नहीं है वहाँ उपनिषद् का शाश्वत आत्म स्वरूप भी अमान्य है। उनके मन्तव्यानुसार आत्मा शरीर से अत्यन्त भिन्न भी नहीं है और न शरीर से अभिन्न ही है। चार्वाक दर्शन एकान्त भौतिकवादी है उपनिषदो की विचार धारा एकान्त कूटस्थ आत्मवादी है किन्तु बुद्ध का मार्ग मध्यम मार्ग है। जिसे बौद्ध दर्शन में प्रतीत्यसमुत्पाद—अमुक वस्तु की अपेक्षा से अमुक वस्तु उत्पन्न हुई—कहा है।

---

४३ आत्म मीमांसा— प दलसुख मालवणिया पृ २८ का सारांश।

४४ संयुत्त निकाय १२–२६।

(ख) अंगुत्तर निकाय ३

(ग) दीघनिकाय ब्रह्मजालसुत्त

(घ) संयुत्तनिकाय १२।१७।२४

(ङ) विसुद्धिमग्ग १७।१६६–१७४

जब कभी भी महात्मा बुद्ध स आत्मा के सम्बन्ध में किसी जिज्ञासु ने प्रश्न किया तब उसका उत्तर न देकर वे मौन रहे हैं। मौन रहने का कारण पूछने पर उन्होने कहा—यदि मैं कहूँ कि आत्मा है तो लोग शाश्वतवादी बन जात हैं और यदि कहूँ कि आत्मा नही है तो लोग उच्छेदवादी हो जात है एतदथ उन दोनो के निषेध के लिए मैं मौन रहता हूँ।[५] एक स्थान पर नागार्जुन लिखत है— बुद्ध ने यह भी कहा है कि आत्मा है और यह भी कहा है कि आत्मा नही है। बुद्ध ने आत्मा अनात्मा किसी का भी उपदेश नही दिया।

आत्मा क्या है ? कहाँ से आया है और कहाँ जायेगा ? इन प्रश्नो के उत्तर भगवान् महावीर ने स्पष्टता से प्रदान किये है। उनका उत्तर देते समय बुद्ध ने उपेक्षा प्रदर्शित की है और उन्हे अव्याकृत कहकर छोड दिया है।[४७] वे मुख्यत दुख और दुख निरोध इन दो तत्त्वो पर प्रकाश डालत हैं। उन्होने अपने प्रिय शिष्य को कहा— तीर से व्यथित व्यक्ति के घाव को ठीक करने की बात विचारनी चाहिए। तीर कहाँ से आया है ? किसने मारा है ? इसे किसने बनाया है ? मारने वाले का रग रूप कसा है ? आदि आदि प्रश्न करना निरथक है।

बौद्ध दशन में आत्म तत्त्व के लिए पृथक-पृथक स्थलो पर कही मुख्य रूप से और कही गौण रूप से अनेक शब्द व्यवहृत हुए है। जैसे कि पुग्गल पुरिस सत्त जीव चित्त मन विज्ञान नाम रूप आदि।[४]

---

४५ अस्तीति शाश्वतग्राही नास्तीत्यु छेददर्शनम्।
तस्मादस्तित्व नास्तित्वे नाश्रीयेत विचक्षण ॥
—माध्यमिक कारिका १८।१

४६ आत्मेत्यपि प्रज्ञापित-मनात्मेत्यपि देशितम्।
बुद्ध र्नात्मा न चानात्मा कश्चिदित्यपि देशितम् ॥
—माध्यमिक कारिका १६।६

४७ (क) मिलिन्द प्रश्न २।२५ ३३ पृ ४१–५२
(ख) न्यायावतारवार्तिक वृत्ति की प्रस्तावना पृ ६
(ग) मज्झिमनिकाय चूलमालुक्य सुत्त ६३

४८ सब्बे सत्ता अवेरा सब्बे पाणा सब्बे भूता सब्बे पुग्गला ।
—पटसम्भिदा २।१३०

लौकिक दृष्टि से आत्मा की सत्ता है जो विज्ञान वेदना सज्ञा सस्कार और रूप—इन पाँच स्कन्धो का सघातमात्र है किन्तु पारमार्थिक रूप से आत्मा नही है।[१]

मिलिन्द प्रश्न म भदंत नागसेन और राजा मिलिन्द का सवाद है। राजा मिलिन्द के प्रश्न के उत्तर म भद त नागसेन ने बताया कि पुद्गल का अस्तित्व केश दाँत आदि शरीर के अवयवो तथा रूप वेदना सज्ञा सस्कार विज्ञान इन सबकी अपेक्षा से है किन्तु पारमार्थिक तत्त्व नही है।[५]

सक्षप मे यदि कहना चाहे तो बौद्धदशन आत्मा को स्थायी नही किन्तु चेतना का प्रवाहमात्र मानता ह। दीपशिखा के रूपक से प्रस्तुत कथन का प्रतिपादन किया गया है। जसे दीपक की ज्योति जगमगा रही है। किन्तु जो लौ पूव क्षण मे है वह द्वितीय क्षण मे नही। तल प्रवाह रूप मे जल रहा है लौ उसके जलने का परिणाम है प्रतिपल प्रतिक्षण वह नई उत्पन्न हो रही है किन्तु उसका बाह्य रूप उसी प्रकार स्थितिशील पदाथ के रूप मे दृष्टिगोचर हो रहा है। बौद्धदशन के अनुसार आत्मा के सम्बन्ध मे भी ठीक यही स्थिति चरिताथ होती है। स्पष्ट है कि बौद्ध-दशन अनात्मवादी होते हुए भी आत्मवादी है।

वदिक दृष्टि

उपनिषद् आदि परवर्ती साहित्य मे जिस प्रकार आत्म मीमासा की गई है वैसी मीमासा वेदो मे नही है।

कठोपनिषद् मे नचिकेता का एक मधुर प्रसग है। बालक नचिकेता के पिता ऋषि वाजश्रवस ने भीष्म प्रतिज्ञा ग्रहण की कि 'मैं सर्वस्व दान दू गा। प्रतिज्ञानुसार सब कुछ दान दे दिया। बालक नचिकेता ने विचार किया—पिता ने अन्य वस्तुए तो दान दे दी हैं पर अभी तक मुझे दान म क्यो नही दिया? उसने पिता से पूछा—आप

(ख) विसुद्धिमग्ग ८।१९

४९ मिलिन्द प्रश्न

५० मिलिन्द प्रश्न २।४। सू० २८८।

मुझे किसको दान दे रहे हैं ? पिता मौन रहे। उसने पुन वही प्रश्न दौहराया फिर भी पिता का मौन भग नही हुआ। तृतीय बार कहने पर पिता को क्रोध आ गया और उसने झु झला कर कहा—जा तुझे यमराज को दिया। बालक नचिकेता यम के घर पहुँचा। यमराज घर पर नही थे। वह भूखा और प्यासा तीन दिन तक यमराज के द्वार पर बठकर उनकी प्रतीक्षा करता रहा। यमराज आये। बालक की भद्रता पर वे मुग्ध हो गये। तीन वर माँगने के लिए कहा। नचिकेता ने तीसरा वर माँगा—मृत्यु के पश्चात् कुछ कहते है मानव की आत्मा का अस्तित्व है कुछ कहते हैं नही है सत्य तथ्य क्या है यह आप मुझे बताय—यही मेरा तृतीय वर है।[५१]

यमराज ने अन्य वर माँगने की प्रेरणा दी पर नचिकेता अपने कथन से तनिक भी विचलित नही हुआ। उसने कहा—मुझे वही विधि बताइये जिससे अमरता प्राप्त हो। यमराज ने कहा—त इस आत्म विद्या के लिए आग्रह न कर इसका ज्ञान होना साधारण बात नही है। देवता भी इस विषय मे स न्देहशील रहे हैं।[५२] पर नचिकेता की तीव्र जिज्ञासा से यमराज ने प्रस न होकर आत्मसिद्धि का सूक्ष्म रहस्य उसे बताया। आत्म विद्या व योगविधि को पाकर नचिकेता को ब्रह्मान द अनुभव हुआ। उसका राग द्व ष नष्ट हो गया। इसी प्रकार जो आत्म तत्त्व को पाकर आचरण करेगे वे भी अमरता को प्राप्त करेंगे।

---

५१ येय प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये
अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाह
वराणामेष वरस्तृतीय ॥

—कठोपनिषद् १–२

५२ देवरत्रापि विचिकित्सित पुरा नहि सुविज्ञय अणुरेष धर्म ।

—कठोपनिषद् १।२१

५३ मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा
विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्।

चरक के अनुसार अग्निवेश के प्रश्न के उत्तर मे पुनर्वसु ने आत्म तत्त्व का निरूपण किया है।[५४]

छान्दोग्य उपनिषद् मे महर्षि नारद और सनत्कुमार का सवाद है। सनत्कुमार के पूछने पर नारद ने कहा—वेद पुराण इतिहास आदि सभी विद्याओ का अध्ययन करने पर भी आत्मस्वरूप न पहचानने से मै शोक-ग्रस्त हूँ अत आत्मज्ञान प्रदान कीजिये और चिन्ताओ से मुक्त कीजिये।[५५]

बृहदारण्यक उपनिषद् मे याज्ञवल्क्य ऋषि से मत्रयी ने भी आत्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा व्यक्त की।[५६]

उपनिषद् के ऋषियो ने कहा है—आत्मा ही दर्शनीय है श्रवणीय है मननीय है और ध्यान किये जाने योग्य है। मनुस्मृति के रचियता आचार्य मनु कहते हैं—सब ज्ञानो मे आत्म ज्ञान ही श्रेष्ठ है। सभी विद्याओ मे वही परा विद्या है जिससे मानव को अमृत (मोक्ष) प्राप्त होता है।

ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद विमृत्यु–
रन्योऽप्येव यो विदध्यात्ममेव ॥

कठोपनिषद् ६।१८

५४ इत्यग्निवेशस्य वच श्रुत्वा मतिमता वर।
सव यथावत् प्रोवाच प्रशान्तात्मा पुनवसु ॥

— चरक सहिता शरीर स्थान अ १ श्लो १५

५५ छान्दोग्योपनिषद प्रपाठक ७ खण्ड १

५६ येनाह नामृता स्या कि तेन कुर्याम् ?
तदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहि ॥

—बृहदारण्योपनिषद्

५७ आत्मा वारे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य।

— बृहदारण्योपनिषद् २।४।५

५८ सवषामपि चतेषामात्मज्ञान पर स्मृतम्।
तद्ध यग्र्यं सवविद्यानां प्राप्यते ह्यमृत तत ॥

—मनुस्मृति अ १२

आत्मा शरीर से विलक्षण है। वह वाणी द्वारा अगम्य है।[६०] न वह स्थूल है न ह्रस्व है न विराट है न अणु है न अरुण है न द्रव है न छाया है न अन्धकार है न हवा है न आकाश है न सग है न रस है न गध है न नेत्र है न कर्ण है न वाणी है न मन है न तेज है न प्राण है न मुख है न माप है उसमे न अन्तर है न बाहर है।[६१]

उपनिषदो मे आत्मा के परिमाण की विभिन्न कल्पनाए मिलती है।

छान्दोग्योपनिषद् मे बताया है— यह मेरी आत्मा अन्तर्हृदय मे रहती है। यह चावल से जौ से सरसो से श्यामाक (साँवा) नामक धान या उसके चावल से भी लघु है।[६२]

बृहदारण्यक मे कहा है— यह पुरुष रूपी आत्मा मनोमय भास्वान् तथा सत्य रूपी है और उस अन्तर्हृदय मे ऐसी रहती है जैसे चावल या जौ का दाना हो।[६३]

कठोपनिषद् मे कहा है— आत्मा अगूठे जितनी बडी है। अगूठे जितना वह पुरुष आत्मा के मध्य मे रहता है।[६४]

---

५९ न हन्यते हन्यमाने शरीरे
—कठोपनिषद् १–२।१५।१८

६० यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह।
—तैत्तिरीय उपनिषद् २।४

६१ अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाश मसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्र मनन्तरमबाह्यम्।
—बृहदारण्योपनिषद् ३।८।८

६२ एष म आत्मान्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वा॥
—छान्दोग्योपनिषद् ३।१४।३

६३ मनोमयोऽयं पुरुषो भाः सत्यस्तस्मिन्नन्तर्हृदये यथा व्रीहिर्वा यवो वा।
—बृहदारण्यक उप ५।६।१

६४ अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
—कठोपनिषद् २।४।१२

कौषीतकी उपनिषद् मे कहा ह—यह आत्मा शरीर व्यापी है।[६५]

तत्तिरीय उपनिषद् ने प्रतिपादित किया ह—अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनन्दमय—ये सभी आत्माए शरीर प्रमाण है।[६६]

मुण्डकोपनिषद् आदि मे आत्मा को व्यापक माना गया है।[६७] हृदय कमल के भीतर यह मेरा आत्मा पृथ्वी अन्तरिक्ष द्युलोक अथवा इन सब लोको की अपेक्षा बडा है।[६]

गीता के अनुसार—आत्मा को शस्त्र छेद नहा सकते अग्नि जला नही सकती पानी गीला नही कर मकता और हवा सुखा नही सकती है[६] जैसे मानव जीर्ण शीर्ण वस्त्र को उतारकर नवीन वस्त्रो को धारण करता है वसे ही यह आत्मा भी जीर्ण शरीर का परित्याग कर नवीन शरीर को धारण करता है।

---

६५ एष प्रज्ञात्मा इद शरीरमनुप्रविष्ट ।

—कौषीतकी उपनिषद् ३५।४।२

६६ तत्तिरीय उपनिष १।२

६७ सवगतम् ।

—मुण्डकोपनिषद् १।१।६

(ख) वशेषिक दशन ७।१।२२

(ग) न्यायमजरी पृ ४६

(घ) प्रकरण प पृ १५

(ङ) ईशावास्यमिद सव यत् किञ्च जगत्या जगत ।

—ईशावास्य उप

६८ एष म आत्मान्तर हृदये ज्यायान् पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षा ज्यायान् दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्य ।

—छान्दोग्य उप ३।१४।३

६९ नन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक ।
न चन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत ॥

गीता अध्याय २ । २३

७ वासासि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

वैदिक सस्कृति मे ही नैयायिक वैशेषिक सांख्य मीमासक म
योग इन दर्शनो का समावेश होता है। ये सभी दशन आत्मा
स्वीकार करते हैं और आत्मा मोक्ष आदि की स्वतन्त्र परिभाषा
प्रस्तुत करते है।

नैयायिक व वैशेषिक दशन का मन्तव्य है कि आत्मा एकान्त नि
और सवव्यापी है। इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुख आदि के रूप मे
परिवतन परिलक्षित होता है वह आत्मा के गुणो मे है स्वय आ
मे नही। आत्मा के गुण आत्मा स भिन्न है इनसे हम आत्मा
अस्तित्व जानते हैं।

साख्य दशन आत्मा को कूटस्थ नित्य मानता है। उसके मतानुस
आत्मा सदा सर्वदा एकरूप रहता है। उसमे परिवतन नही होत
ससार और मोक्ष भी आत्मा के नही प्रत्युत प्रकृति के है सुख द
और ज्ञान भी प्रकृति के धम है आत्मा के नही।[२] आत्मा तो स्था
अनादि अनन्त अविकारी नित्य चित्स्वरूप और निष्क्रिय है
साख्य दृष्टि से आत्मा कर्ता नही किन्तु फल का भोक्ता है। कर्तृ
प्रकृति मे ह।[७५]

मीमासक दशन के अनुसार आत्मा एक है किन्तु देहादि

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि सयाति नवानि देही ॥

—गीता २।

७१ साख्यकारिका ६२

७२ सांख्यकारिका ११

७३ अमूर्तश्चेतनो भोगी नित्य सर्वगतोऽक्रिय ।
अकर्ता निगुण सूक्ष्म आत्मा कपिलदशने ॥

—षड्दर्शनसमुच्

७४ साख्यकारिका १७

७५ प्रकृते क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वश ।
अहकारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते ।

—गीता ३।

विविधता के कारण वह अनेक प्रतीत होता है।[७६] मीमासक कुमारिल ने आत्मा को नित्यानित्य माना है।[७७]

इस प्रकार हम देखते है वदिक दार्शनिको ने भी आत्मा के सम्ब ध मे गहन चिन्तन किया है किन्तु जैन-दर्शन जितना गभीर चिन्तन वे नही कर पाये हैं। अनेका त दृष्टि से जैन दशन ने आत्मा का सर्वाङ्ग विवेचन किया है। वसा अन्यत्र दुलभ है।

उपयु क्त पक्तियो में जैन बौद्ध और वैदिक दशन-मान्य आत्मा की एक हल्कीसी झाँकी प्रस्तुत की गई है। आधुनिक वज्ञानिक भी आत्मा के मौलिक अस्तित्व को स्वीकार करने लगे हैं। प्रोफेसर अलबर्ट आई स्टीन ने जो पाश्चात्य देशो म ससार के प्रतिभासम्पन्न विद्वान माने गये है लिखा है— मैं जानता हूँ कि सारी प्रकृति म चेतना काम कर रही है। इनके अतिरिक्त अ य अनेक मूधन्य वज्ञानिको के विचार भी मननीय है पर स्थानाभाव के कारण उ हे यहाँ उद्ध त करना सम्भव नही है।



---

७६ एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थित ।

७७ तत्त्वसग्रह का २२३-७।

तीन | कर्मवाद-पर्यवेक्षण

भारतवष दशनो की ज मस्थली है क्रीडाभूमि है। यहाँ की पुण्य भूमि पर आदिकाल से ही आध्या मिक चि तन की दशन की विचारधारा बहती चली आ रही है। याय सा य वेदा त वशेषिक मीमासक बौद्ध और जन प्रभति अनेक दशनो ने यहा ज म ग्रहण किया वे खूब फले और फूले। उनकी विचारधाराए हिमालय की चोटी से भी अधिक ऊ ची समुद्र से भी अधिक गहरी और आकाश से भी अधिक विस्तृत है।

भारतीय दशन जीवन दशन है। केवल कमनीय कल्पना के अनन्त गगन मे विहरण करने की अपेक्षा यहाँ के मनीषी दाशनिको ने जीवन के गम्भीर व गहन प्रश्नो पर चिन्तन मनन विमश करना अधिक उपयुक्त समझा। एतदर्थ यहाँ आत्मा परमात्मा लोक कम आदि तत्त्वो पर गहराई से चि तन मनन व विवेचन किया गया है। उ होने अपनी तपश्चर्या एव सूक्ष्म कुशाग्र बुद्धि के सहारे तत्त्व का जो विश्लेषण किया है वह भारतीय सभ्यता व धम का मेरुदण्ड है। इस विराट विश्व में भारत के मुख को उज्ज्वल-समुज्ज्वल रखने म तथा मस्तिष्क को उन्नत रखने मे ब्रह्मवेत्ताओ की यह आध्यात्मिक सम्पदा सवथा व सवदा कारण रही है। मानसिक पराधीनता के पङ्क मे निमग्न आधनिक भारतीय पाश्चात्य सभ्यता के चाकचिक्य के समक्ष इस अनुपम विचार राशि की भले ही अवहेलना कर किन्तु उ हे यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत अतिप्राचीन काल से गौरवशाली देश रहा है तो अपने दाशनिक चि तन के कारण ही। वस्तुत तत्त्व ज्ञान से ही भारतीय सस्कृति व सभ्यता की प्रतिष्ठा है।

दार्शनिक वादो की दुनिया मे कमवाद का अपना एक विशिष्ट स्थान है। कमवाद के मम का समझे विना भारतीय दशन विशेषत आत्मवाद का यथाथ परिज्ञान नही हो सकता।

डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी के मन्तव्यानुसार कमफल का सिद्धान्त भारतवष की अपनी विशेषता है। पुनज म का सिद्धान्त खोजने का प्रयत्न अ यान्य देशो के मनीषियो मे भी पाया जा सकता है पर तु इस कमफल का सिद्धान्त और कही भी नही मिलता।[१]

सुप्रसिद्ध प्राच्य विद्याविशारद कीथ ने सन १९ ९ की रायल एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका मे एक बहुत ही विचार पूर्ण लेख लिखा था। उसमे वे लिखते है— भारतीयो के कम बन्ध का सिद्धान्त निश्चय ही अद्वितीय ह। नस र की समस्त जातियो से उन्हे यह सिद्धा त अलग कर देता ह। जो कोई भी भारतीय धम और साहित्य को जानना चाहता ह वह यह उक्त सिद्धा त को जाने बिना अग्रसर नही हो सकता।

कम शब्द के पर्यायवाची

आत्मतत्त्व के सम्ब ध मे विभिन्न दाशनिको की विभिन्न धारणाए होने से कम के स्वरूप विवेचन म भी विभिन्नता होना स्वाभाविक है। तथापि यह स्पष्ट है—कि सभी आस्तिक दशनो ने पुनज म की समिद्धि के लिए किसी न किसी रूप मे कम सिद्धा त को स्वीकार किया है। सभी दशनो के श दो मे अ तर होने पर भी उसके आधार भूत भाव मे प्राय समानता है।

जन दाशनिको ने जिसे कर्म कहा है उसे वेदा त दशन ने अविद्या

---

१ अशोक के फूल भारतवष की सास्कृतिक समस्या पृ ६७

२ अशोक के फूल पृ ६

३ उत्तराध्ययन अ ३३।१

(ख) सूत्रकृताङ्ग १।२।१।४

(ग) आचाराग १।२।२।५

प्रकृति तथा माया कहा है। बौद्ध दर्शन ने उसे वासना और अविज्ञप्ति कहा है।[५] साख्य व योग दशन उसे आशय और क्लेश कहते हैं।[६] याय और वशेषिक दशन ने उसे धर्माधर्म सस्कार और अदृष्ट कहा है। मीमासको ने उसे अपूव कहा ह। ईसा मोहम्मद और मूसा ने उसे शैतान कहा ह। कम श द के ही ये पर्यायवाची श द है जि हे दाशनिको ने अपने अपने ग्र थो मे उटटङ्कित किया ह।

कम का स्वरूप

कम का स्वरूप क्या है? इस प्रश्न का उत्तर विभिन्न विचारको ने विभि न दृष्टि से दिया है।

(घ) दशाश्रतस्कन्ध ६

(ङ) कमग्रन्थ प्रथम गा १

४ ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य २।१।१४

५ अभिधम कोष चतुथ परि छेद।

६ योगदशन भाष्य १–५। २–३।२–१२।२–१३

(ख) योगदशन तत्त्व वशारदी।

(ग) योगदशन भास्वती टीका।

(घ) साख्यकारिका।

(ङ) साँख्य तत्त्व कौमुदी।

७ न्याय भाष्य १।१।२

(ख) न्यायसूत्र ४।१।३–६

(ग) न्यायसूत्र १।१।१७

(घ) न्याय मजरी पृ ४७१।५

(ङ) एव च क्षणभगित्वात् सस्कारद्वारिक स्थित।
स कमजन्यसस्कारो धर्माधर्मगिरोच्यते॥

—न्यायमजरी प ४७२

मीमासा-सूत्र—शाबर भाष्य २।१।५

(ख) त त्रवार्तिक २।१।५

(ग) शास्त्रदीपिका पृ

६ बाइबिल

कुरान शरीफ

न्याय दर्शन अदृष्ट (कर्म) को आत्मा का गुण मानता है और उसका फल ईश्वर के माध्यम से आत्मा को प्राप्त होता है।[1] सांख्य दर्शन कर्म को प्रकृति का विकार मानता है।[11] अच्छी-बुरी प्रवृत्तियों का प्रकृति पर संस्कार पड़ता है उस प्रकृतिगत संस्कार से ही कर्मों के फल प्राप्त होते हैं बौद्ध दर्शन चित्तगत वासना को ही कर्म मानता है।[12] वासना ही कार्य कारण भाव के रूप में सुख-दुःख का हेतु बनती है। मीमांसक यज्ञ आदि क्रियाओं को ही कर्म कहता है।[13] पौराणिक मान्यतानुसार व्रत नियमादि धार्मिक अनुष्ठान कर्म हैं। वैयाकरणों की दृष्टि से कर्ता जिसे अपनी क्रिया के द्वारा प्राप्त करना चाहता है वह कर्म है। गीता[14] उपनिषद् आदि ने अच्छे-बुरे कार्यों को कर्म कहा है। जैनदर्शन के अनुसार कर्म केवल संस्कार मात्र नहीं है किन्तु एक स्वतंत्र तत्त्व है। मिथ्यात्व अव्रत प्रमाद कषाय और योग से जीव के द्वारा जो किया जाता है वह कर्म है।[15] अर्थात् आत्मा की राग द्वेषात्मक क्रिया से आकाश प्रदेशों में स्थित अनन्तानन्त कर्म योग्य सूक्ष्म पुद्गल चुम्बक की तरह आकृष्ट होकर आत्म प्रदेशों के साथ बद्ध हो जाते हैं वे कर्म हैं। जैसे गर्म लोहपिण्ड पानी में रखने

---

१ ईश्वर कारण पुरुषकर्म फलस्य दर्शनात।

—न्यायसूत्र ४।१

११ अन्तःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम्।

—सांख्यसूत्र ५।२५

१२ अभिधर्म कोष चतुर्थ परिच्छेद

१३ तन्त्रवार्तिक पृ ३६५–६

१४ कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

—भगवद्गीता अ ४ श्लो २७

१५ कीरइ जीएण हेउहिं जेण तो भण्णए कम्मं।

—कर्मग्रन्थ प्रथम गा १ आचार्य देवचन्द्र

(ख) विसय कसायहिं रंगियहँ जे अणुया लग्गंति।
जीव-पएसहँ मोहियहँ ते जिण कम्म भणंति॥

—परमात्मप्रकाश १।६२

पर चारो ओर के पानी को खींचता है वैसे ही आत्मा भी राग द्वेष के वशीभूत होकर कार्मणजातीय पुद्गलो को आकर्षित करता है

कम के भद

कर्म के मुख्यत दो भेद हैं द्रव्य कम और भाव कम। सासारिक जीव का[१६] रागद्वषादिमय वभाविक परिणाम भाव क र है और उन वभाविक परिणामो से आत्मा म जो कामण व ।णा के पुद्गल सर्वात्मना चिपकते है वे द्र य कम है। द्रव्य कम और भाव कम मे निमित्त नमित्तिक रूप द्विमुख काय कारण भाव सम्ब ध है। द्र य कम काय है और भाव कम कारण है। प्रस्तुत काय कारण भाव मुर्गी और अण्डे के काय कारण भाव सदृश है। मुर्गी स अण्डा उत्प न होता है अत मुर्गी कारण है और अण्डा काय है। मगर अण्डे से मुर्गी उत्प न होती है अतएव अण्डा कारण और मुर्गी काय है। इस प्रकार दोनो काय और दोनो कारण है। यदि यह जिज्ञासा व्यक्त की जाय कि पहले मुर्गी थी या अण्डा ? तो इसका समाधान नही दिया जा सकता क्योंकि अण्डा मुर्गी से होता है और मुर्गी भी अण्डे से समुत्प न होती है। अत दोना म काय कारण भाव स्पष्ट है। उनमे पौर्वापय भाव नही बतलाया जा सकता। सतति की दृष्टि स उनका पारस्परिक काय कारण भाव अनादि है। वस ही द्रव्य और भाव कम का काय कारण भाव सम्ब ध सतति की अपेक्षा से अनादि है। दोनो एक दूसरे के उत्प न होने मे निमित्त है।

जसे मिटटी का एक पिण्ड घडे आदि के रूप म परिणत होने का उपादान कारण है कि तु कुम्भकाररूपी निमित्त के अभाव म वह घट नही बनता वसे ही कामण वगणा के पुद्गलो म कम रूप मे परिणत होने की शक्ति ह एतदथ पुद्गल द्र य कम का उपादान कारण ह पर जीव म भाव कम की सत्ता का अभाव हो तो पुद्गल द्रव्य कम मे परिणत नही हो सकता। अत भावकम द्र य कम का

---

१६ पोग्गल पिंडो दव्व तस्सत्ति भावकम्म तु।

—गोम्मटसार कमकाण्ड आ नेमिचन्द्र

निमित्त कारण है और द्रव्य कम भी भाव कम का निमित्त है। अत द्रव्य और भाव कम का कार्य कारण भाव उपादानोपादेय रूप न होकर निमित्त नमित्तिक रूप है। अन्य दर्शनकारो ने भी द्रव्य और भाव कर्म को विविध नामो से स्वीकार किया ह।[१७]

कर्म का अस्तित्व

इस विराट विश्व मे यत्र तत्र-सवत्र विषमता विचित्रता और विविधता दृष्टिगोचर होती है। सब जीव स्वभावत समान होने पर भी उनमे मनुष्य पशु पक्षी कीट पतग आदि के रूप मे जो महान् अन्तर दिखाई पडता है इसका क्या कारण ह ? केवल मानव जगत् को ही लें तो भी कोई निर्धन ह कोई धनी ह। कोई स्वस्थ ह कोई रुग्ण ह। कोई अज्ञ ह कोई विज्ञ ह। कोई निबल ह कोई सबल है। कोई सुन्दर ह कोई कुरूप ह। कोई सुखी ह कोई दु खी ह। कोई गगनचुम्बी अटटालिकाओ मे रहता ह तो कोइ टूटी फूटो झोपाडयो मे। कोई गुलाबजामुन और रसगुल्ले उडा रहा ह तो कोई भूख से छटपटा रहा ह। कोई बहुमूल्य और चमकदार वस्त्रो से अलकृत ह तो कोई फटे पुराने चीथडो से वेष्टित ह। यहाँ तक कि एक माता की कोख से उत्पन्न हुए पुत्रो म भी दिन रात का अ तर देखा जाता ह एक राजा ह दूमरा रक ह। इस भेद और विषमता का मूल कारण क्या ह ? यह एक ज्वलत प्रश्न ह।

भारत के मननशील मेधावी मनीषियो ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—विषमता और विविधता का मूल कम है।[१८] कर्म से ही विविधता और विषमता उत्पन्न होती ह।[१९] जन दशन की तरह बोद्ध

---

१७ देखिए—आत्ममीमासा प दलसुख मालवणिया।

१८ कम्मओण भते जीव नो अकम्मओ विभत्तिभाव परिणमई।
कम्मओण जए ? णो अकम्मओ विभत्तिभाव परिणमई॥
—भगवती १२।५

१९ कम्मुणा उवाही जायइ।
—आचारांग ३।१

दर्शन[२] न्याय दर्शन[२१] वेदान्तदर्शन[२२] प्रभृति भी कर्म को ही जीव की विविध अवस्थाओं का कारण मानते है। यह एक परखा हुआ सिद्धान्त है कि जैसा बीज होगा वैसा ही वृक्ष होगा।

सोटची स्वर्ण में कोई भेद नहीं होता किन्तु विजातीय तत्त्व के समिश्रण के कारण उसमे भेद होता है। वैसे ही निश्चय दृष्टि से

(ख) क्ष्माभृद्रङ्कयोमनीषिजडयो सद्रूपनीरूपयो
श्रीमद्दुर्गतयोर्बलाबलवतोर्नीरोगरोगातयो ।
सौभाग्यासुभगत्व-सगम जुषोस्तुल्येऽपि नृत्वेऽन्तर
यत्तत्कर्मनिबन्धन तदपि नो जीव विना युक्तिमत ।।

—कर्मग्रन्थ प्रथम टीका—देवेन्द्र सूरि

(ग) जो तुल्लसाहणाण फल विसेसो ण सो विणा हेउ ।
कज्जत्तणओ गोयम ! घडो व हेऊ य सो कम्म ।

—विशेषावश्यक भाष्य जिनभद्रगणी

२ भासित पेत महाराज भगवता—कम्मस्सका माणवसत्ता कम्मदायादा कम्मयोनी कम्मबन्धू कम्मपटिसरणा कम्म सते विभजति यदिद हीनपणीततायाति ।।

—मिलिन्द प्रश्न ३।२

(ख) कर्मज लोकवैचित्र्य ।

—अभिधर्म कोष ४।१

२१ जगतो यच्च वैचित्र्य सुखदुःखादिभेदत ।
कृषिसेवादिसाम्येऽपि विलक्षणफलोदय ।।
अकस्मान्निधिलाभस्य विद्य पातश्च कस्यचित ।
क्वचित्फलमयत्नेऽपि य नेऽप्यफलता क्वचित् ।।
तदेतद् दुर्घट दृष्टात्कारणाद् व्यभिचारिण ।
तेनादृष्टमुपेतव्यमस्य किञ्चन कारणम् ।।

—न्यायमजरी—जयन्तभट्ट

२२ ब्रह्मसूत्र—शाकर भाष्य २।१।१४

२३ करम प्रधान विश्व करि राखा ।
जो जस करहि सो तस फल चाखा ।।

—रामचरितमानस

आत्माएं एक है किन्तु जो भेद और विषमता है वह कर्म के कारण से है।[२४]

आत्मा पहले या कर्म

आत्मा पहले है या कर्म पहले है? दोनों में पहले कौन है और पीछे कौन है? यह एक प्रश्न है।

उत्तर है—आत्मा और कर्म दोनों अनादि हैं। कर्मसंतति का आत्मा के साथ अनादि काल से सम्बन्ध है। प्रतिपल प्रतिक्षण जीव नूतन कर्म बांधता रहता है। ऐसा कोई भी क्षण नहीं जिस समय सांसारिक जीव कर्म नहीं बांधता हो। इस दृष्टि से आत्मा के साथ कर्म का सम्बन्ध सादि भी कहा जा सकता है पर कर्म-सन्तति की अपेक्षा आत्मा के साथ कर्म का सम्बन्ध अनादि है।[२५]

अनादि का अन्त कैसे

प्रश्न है—जब आत्मा के साथ कर्म का सम्बन्ध अनादि है तब उसका अन्त कैसे हो सकता है? क्योंकि जो अनादि होता है उसका नाश नहीं होता।

---

२४ कामादिप्रभवश्चित्र कर्मबन्धानुरूपतः।

—आप्त मीमांसा—आचार्य समन्तभद्र

२५ जो खलु संसारत्था जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसुगदी॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इन्दियाणि जायन्ते।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा॥

—पञ्चास्तिकाय—आचार्य कुन्दकुन्द

जीव हँ कम्मु अणाइ जिय जणियउ कम्मु ण तेण।
कम्मे जीउ वि जणिउ णवि दोहिं वि आइ ण जेण॥
एहु ववहारें जीवडउ हेउ लहेवि णु कम्मु।
बहुविह भावें परिणवइ तेण जि धम्मु अहम्मु॥

—परमात्म प्रकाश १।५९।६

उत्तर है—अनादि का अन्त नही होता यह सामुदायिक नियम है जो जाति से सम्बन्ध रखता है। व्यक्ति विशेष पर यह नियम लाग नही भी होता। स्वर्ण और मिट्टी का घत और दुग्ध का सम्बन्ध अनादि है तथापि वे पृथक-पृथक होते है। वसे ही आत्मा और कर्म के अनादि सम्बन्ध का अन्त होता है।[२६] यह भी स्मरण रखना चाहिए कि व्यक्ति रूप से कोई भी कम अनादि नही है। किसी एक कर्मविशेष का अनादि काल से आत्मा के साथ सम्बन्ध नही है। पूवबद्ध कम स्थिति पूण होने पर आत्मा से पृथक हो जाते हैं। नवीन कम का बन्धन होता रहता है। इस प्रकार प्रवाह रूप से आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध अनादि काल से है[२] न कि यक्तिश। अत अनादि कालीन कर्मों का अन्त होता है तप और सयम के द्वारा नये कर्मों का प्रवाह रुकता है सचित कम नष्ट होते है और आत्मा मुक्त बन जाता है।[२]

आत्मा बलवान या कम

आत्मा और कर्म इन दोनो म अधिक शक्तिसम्पन्न कौन है? क्या आत्मा बलवान् है या कम बलवान है?

समाधान है—आत्मा भी बलवान् है और कम भी बलवान है। आत्मा मे भी अनन्त शक्ति है और कम मे भी अनन्त शक्ति है। कभी जीव काल आदि लब्धियो की अनुकूलता होने पर कर्मों को पछाड

---

२६ द्वयोरप्यनादिसम्बन्ध कनकोपल सन्निभ।

२७ यथाऽनादि स जीवात्मा यथाऽनादिश्च पुद्गल
द्वयोर्बन्धोऽप्यनादि स्यात् सम्बन्धो जीव-कमणो।

—पचाध्यायी २। ५ प राजमल्ल

(ख) अस्त्यात्माऽनादितो बद्ध कर्मभि कामणात्मक।

—लोकप्रकाश ४२४

(ग) आदिरहितो जीवकमयोग इति पक्ष।

—स्थानाङ्ग १।४।६ टीका

२८ खवित्ता पुव्वकम्माइ सजमेण तवण य।
सव्व-दुक्ख-पहीणट्ठा पक्कमति महेसिणो॥

—उत्तराध्ययन २५।४५

देता है और कभी कर्मों की बहुलता होने पर जीव उनसे दब जाता है।[२९]

बहिर्दृष्टि से कर्म बलवान् प्रतीत होते है पर अन्तर्दृष्टि से आत्मा ही बलवान् है क्योकि कर्म का कर्ता आत्मा है वह मकडी की तरह कर्मों का जाल बिछाकर उसमे उलझता है। यदि वह चाहे तो कर्मों को काट भी सकता है। कर्म चाहे कितने भी अधिक शक्तिशाली हो पर आत्मा उससे भी अधिक शक्तिसम्पन्न है।

लौकिक दृष्टि से पत्थर कठोर है और पानी मुलायम है किन्तु मुलायम पानी पत्थर के भी टकडे टकडे कर देता है। कठोर चटटानो मे भी छेद कर देता है। वसे ही आत्मा की शक्ति कर्म से अधिक है। वीर हनुमान को जब तक स्व स्वरूप का परिज्ञान नही हुआ तब तक वह नाग पाश मे बँधा रहा रावण की ठोकरें खाता रहा अपमान के जहरीले घूट पीता रहा किन्तु ज्यो ही उसे स्वरूप का ज्ञान हुआ त्यो ही नाग पाश को तोडकर मुक्त हो गया। आत्मा को भी जब तक अपनी विराट चेतनाशक्ति का ज्ञान नही होता तब तक वह भी कर्मों को अपने से अधिक शक्तिमान् समझकर उनसे दबा रहता है ज्ञान होने पर उनसे मुक्त हो जाता है।

कर्म और उसका फल

सासारिक जीव जो विविध प्रकार के कर्मों का बन्धन करते हैं उन्हे विपाक की दृष्टि से भारतीय चिन्तको ने दो भागो मे विभक्त किया है शुभ और अशुभ पुण्य और पाप अथवा कुशल और अकुशल। इन दो भेदो का उल्लेख जैन दर्शन[३०] बौद्ध दर्शन[३१] साख्य

---

२९ कत्थवि बलिओ जीवो कत्थवि कम्माइ हुन्ति बलियाइ।
जीवस्स य कम्मस्स य पुव्वविरुद्धाइ वराइ।

—गणधरवाद २-२५

३० शुभ पुण्यस्य
अशुभ पापस्य

—तत्त्वार्थ सूत्र ६।३-४

३१ विशुद्धिमग्ग १७।८८

दशन[32] योग दशन [3] न्याय दर्शन वशेषिक दर्शन[3] और उपनिषद्[3५] आदि मे हुआ है। जिस कम के फल को प्राणी अनुकूल अनुभव करता है वह पुण्य है और प्रतिकूल अनुभव करता है वह पाप है। पुण्य के फल की सभी इच्छा करते हैं। किन्तु पाप के फल की कोई इच्छा नही करता। इच्छा न करने पर भी उसके विपाक से बचा नही जा सकता।

जीव ने जो कम बाधा है उसे इस ज म मे या आगामी ज मो मे भोगना ही पडता है।[3६] कृत कर्मों का फल भोगे बिना आत्मा का छुटकारा नही हो सकता।

महात्मा बुद्ध कहते हैं चाहे अन्तरिक्ष मे चले जाओ समुद्र मे घुस जाओ गिरि कदराओ मे छिप जाओ। किन्तु ऐसा कोई प्रदेश नही जहाँ तुम्हे पाप कर्मा का फल भोगना न पडे।

वेदपथी कवि सिहलन मिश्र भी यही कहते है कि कही भी चले जाओ परन्तु ज मान्तर मे जो शुभाशुभ कम किये है उनके

---

३२ साख्यकारिका ४४

३३ योगसूत्र २।१४
(ख) योगभाष्य २।१२

३४ न्याय मजरी पृ ४७२।
(ख) प्रशस्तपाद पृ ६३७।६४३

३५ बहदारण्यक ३।२।१३

३६ परलोककडा कम्मा इहलोए वइज्जति
इहलोककडा कम्मा इहलोए वइज्जति।
—भगवती सूत्र
(ख) स्थानाङ्ग सूत्र ७७

३७ कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।
—उत्तराध्ययन ४।३

३८ न अन्तलिक्खे न समुद्दम झे
न पब्बतान विवर पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेशो
यत्थट्ठितो मुञ्चेऽय्य पावकम्मा॥
—धम्मपद ९।१२

फल तो छाया के समान साथ ही साथ रहेगे। वे तुम्हे कदापि नही छोडे गे।[3]

आचाय अमितगति का कथन है— अपने पूवकृत कर्मों का ही शुभाशुभ फल हम भोगते है यदि अ य द्वारा दिया फल भोग तो हमारे स्वकृत कम निरर्थक हो जायगे।

अध्यात्मशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित आचाय कुन्दकु द का भी यही स्वर है— जीव और कमपुद्गल परस्पर गाढ रूप मे मिल जात है समय पर वे पृथक-पृथक भी हो जाते है। जब तक जीव और कम पुद्गल परस्पर मिले रहते है तब तक कम सुख दु ख देता है और जीव को वह भोगना पडना है।

महात्मा बुद्ध ने एक बार पर मे काँटा विंध जाने पर अपने शिष्यो से कहा— भिक्षुओ ! इस ज म से एकानवे ज म पूव मेरी शक्ति (शस्त्र

---

३९ आका मुपततु गच्छतु वा दिगन्त-
मम्भोनिधि विशतु तिष्ठतु वा यथेष्टम्।
ज मान्तरार्जितशुभाशुभकृन्नराणा
छायेव न यजति कम फलानुबन्धि॥

—शान्तिशतकम् ८२

४ स्वय कृत कम्म यदात्मना पुरा
फल तदीय लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्त यदि लभ्यते स्फुट
स्वय कृत कर्म निरथक तदा॥

—द्वात्रिंशिका ३

४१ जीवा पुग्गलकाया
अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा।
काले विजुज्जमाणा
सुहदुक्ख दिति भु जन्ति॥

—पञ्चास्तिकाय ६७

विशेष) से एक पुरुष की हत्या हुई थी। उसी कम के कारण मेरा पर काँटे से विध गया है। [२]

भगवान् महावीर के जीवन प्रसगो से भी यह बात स्पष्ट है कि उन्हे साधनाकाल मे जो रोमाचकारी कष्ट सहने पडे थे उनका मूल कारण पूर्वकृत कम ही थे।

आत्मा स्वतन्त्र है या कम के अधीन ?

पहल बताया जा चुका ह कि जीव जसा कम करता ह वसा ही उसका फल उसे प्राप्त होता ह। शुभकम का फल शुभ होता ह और अशुभकम का फल अशुभ होता ह।

कम की मुख्यत दो अवस्थाए है—बध (ग्रहण) और उदय (फल)। कम को बाधने मे जीव स्वतन्त्र ह किन्तु उसके फल को भोगने मे वह स्वतन्त्र नही ह कम के अधीन ह। जिस प्रकार कोई व्यक्ति वृक्ष पर चढता ह वह चढने मे स्वतन्त्र है अपनी इच्छानुसार चढ सकता ह किन्तु असावधानीवश गिर जाय तो वह गिरने मे स्वतन्त्र नही ह। वह इच्छा से गिरना नही चाहता तथापि गिर जाता ह अत गिरने मे परतन्त्र ह। इसी प्रकार भग पीने मे स्वतन्त्र है किन्तु उसका परिणाम भोगने मे परतन्त्र ह। उसकी इच्छा न होते हुए भी भग अपना चमत्कार दिखलाएगी ही। उसकी इच्छा का फिर कोई मूल्य नही है।

---

४२ इत एकनवते कल्पे शक्त्या मे पुरुषो हत ।
तेन कर्मविपाकेन पादे विद्धोस्मि भिक्षव ॥

—षड्दर्शन समुच्चय टीका

४३ देखिए लेखक का महावीर जीवनदर्शन ग्रन्थ

४४ सुच्चिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवति
दुच्चिण्णा कम्मा दुच्चिण्णफला भवति ।

—दशाश्रुत स्कन्ध ६

४५ कम्म चिणति सवसा तस्सुदयम्मि उ परवसा होन्ति ।
रुक्ख दुरुहइ सवसो विगलस परवसो तत्तो ॥

—विशेषावश्यक भाष्य १-१

उक्त कथन का यह अथ नही कि बद्ध कर्मों के विपाक मे आत्मा कुछ भी परिवर्त्तन नही कर सकता। जसे भग के नशे की विरोधी वस्तु के सेवन से भग का नशा नही चढता या नाम मात्र को चढता है उसी प्रकार प्रशस्त अध्यवसायो के द्वारा पूवबद्ध कम के विपाक को मन्द भी किया जा सकता है और नष्ट भी किया जा सकता है। उस अवस्था मे कम प्रदेशो से उदित होकर ही निर्जीर्ण होजाते हैं। उसकी कालिक मर्यादा (स्थितिकाल) को कम करके शीघ्र उदय मे भी लाया जा सकता है। नियतकाल से पूर्व कर्मों को उदय मे ले आना उदीरणा कहलाता है।

पातजलयोग भाष्य मे भी अदृष्ट जन्य वेदनीय कम की तीन गतियाँ निरूपित की हैं। उनम से एक गति यह है— कई कम बिना फल दिये ही प्रायश्चित्त आदि के द्वारा नष्ट हो जाते हैं। इसे जैन पारिभाषिक शब्दो म प्रदेशोदय कहा है।

कम की पौदगलिकता

अन्य दशनकारो ने जहा कम को सस्कार और वासनारूप माना ह वहा जनदशन उसे पौद्गलिक मानता है। कम आत्मा का गुण नही है किन्तु वह आत्मगुणो का विघातक है। परतत्र बनाने वाला और दु खो का कारण है। यह तथ्य है जिस वस्तु का जो गुण है वह उसका विघातक नही होता। कम आत्मा का विघातक है अत आत्मा का गुण नही हो सकता। कर्म पौद्गलिक न होता तो वह आत्मा की पराधीनता का कारण नही हो सकता था।

जनदशन की दृष्टि से द्रव्य कम पौद्गलिक है। पुद्गल मूर्त ही होता है। उसमे रूप रस गध और स्पश—ये चार गुण होते हैं। जिसका कारण पौद्गलिक होता है उसका काय भी पौद्गलिक होता है। जसे कपास भौतिक है तो उससे बनने वाला वस्त्र भी भौतिक ही होगा। जैसे कार्य से कारण का अनुमान किया जाता है वैसे ही कारण से भी काय का अनुमान किया जा सकता है। शरीर आदि काय

पौद्गलिक और मूर्त है अत उसका कारण कर्म भी पौद्गलिक और मूर्त ही होना चाहिए।[४६]

मूर्त का अमूर्त पर प्रभाव

प्रश्न है—कर्म मूर्त है तो उसका प्रभाव अमूर्त आत्मा पर कैसे होता है? उत्तर है—जैसे मदिरा और क्लोरोफार्म का प्रभाव अमूर्त चेतना आदि गुणो पर प्रत्यक्ष देखा जाता है वैसे ही अमूर्त आत्मा पर मूर्त कर्म का प्रभाव पडता है।[४७]

उक्त प्रश्न का दूसरा समाधान यह है कि अनन्तकाल से आत्मा कर्म से सम्बद्ध होने के कारण स्वभावत अमूर्त होते हुए भी ससारी अवस्था मे मूर्त है। इस कारण भी वह कर्म से प्रभावित होता है।[४८] जो आत्मा कर्ममुक्त है उन्हे कर्म का बधन नही होता पूर्व कर्म से बधा हुआ जीव ही नए कर्मों का बधन करता है।[४९]

गौतम—भगवन! दु खी जीव दु ख से स्पृष्ट होता है या अदु खी दु ख से स्पृष्ट होता है?

---

४६ मुत्तो फासदि मुत्त मुत्तो मुत्तेण बधमणुहवदि
जीवो मुत्तिविरहिदो गाहदि ते तेहि उग्गहदि।
—पचास्तिकाय १३४

४७ मुत्तणामुत्तिमओ उवघाया-ऽणुग्गहा कह होज्जा?
जह विण्णाणाईण मइरापाणो-सहाईहिं।
—विशेषावश्यक भाष्य गा १६३७

४८ अहवा नेगतोऽयं ससारी सव्वहा अमुत्तात्ति।
जमणाइकम्मसतइपरिणामावन्नरूवो सो।
—विशेषावश्यक भाष्य गा १६३८

४९ वण्ण रस पच गधा दो फासा अट्ठ णिच्छिया जीवे।
णो सति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बधादो।।
—द्रव्यसग्रह

५० समिय दुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्ट अणुपरियट्टइ।
—आचारांग २।६।१ ५

५१ दु खनिमित्तत्वाद् दु ख कर्म तद्वान् जीवो दु खी।
—भगवती टीका ७।१।२३६

महावीर—गौतम ! दु खी जीव दु ख से स्पृष्ट होता है अदु खी दु ख से स्पृष्ट नही होता है। दु ख का स्पश पर्यादान (ग्रहण) उदीरणा वेदना और निजरा दु खी जीव करता है अदु खी नही।[५३]

गौतम—भगवन् ! कम कौन बाधता है—सयत असयत अथवा सयतासयत ?

महावीर—असयत सयतासयत और सयत ये सभी कम बाँधते है।

तात्पय यह है कि जो सकम आत्मा हैं वे ही कम बाधती है उन्ही पर कम का प्रभाव होता है।

कम बध के कारण

जीव के साथ कम का अनादि सम्बन्ध है किन्तु कम किन कारणो से बधते है यह एक सहज जिज्ञासा है। गौतम ने प्रश्न किया—भगवन ! जीव कम बन्ध कसे करता है ?

भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम ! ज्ञानावरणीय कम के तीव्र उदय से दशनावरणीय कम का तीव्र उदय होता है। दशनावरणीय कम के तीव्र उदय से दशनमोह का उदय होता है। दशनमोह के तीव्र उदय से मिथ्यात्व का उदय होता है और मिथ्यात्व के उदय से जीव आठ प्रकार के कर्मों को बाँधता है।

स्थानाङ्ग[५५] समवायाग[५६] मे तथा उमास्वाति ने कमबध के

---

५२ भगवती ७।१।२६६

५३ भगवती ६।३

५४ भते ! जीवे अट्ठ कम्मपगडीओ बधति ?
गोयमा ! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएण दरिसणावरणिज्ज कम्म नियच्छति दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएण दसणमोहणिज्ज कम्म णियच्छइ दसणमोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएण मिच्छत्त णियच्छइ मिच्छत्तेण उदिण्णेण एव खलु जीवे अट्ठकम्मपगडीओ बधइ।
प्रज्ञापना २३।१।२८९

५५ पच आसवदारा पण्णत्ता —समवायाग समवाय ५।

५६ स्थानाङ्ग ४१८ ।

पाँच कारण बताये हैं—मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और योग।[५७]

सक्षेप दृष्टि से कर्म बध के दो कारण है—कषाय और योग।[५८]

कर्मबन्ध के चार भेद है—प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश।[५९] इनमे प्रकृति और प्रदेश का बध योग से होता है। स्थिति व अनुभाग का बध कषाय से होता है।[६०] सक्षप मे कहा जाय तो कषाय ही कर्म बध का मुख्य हेतु है।[६१] कषाय के अभाव मे समपरायिक कर्म का बध नही होता। दसवे गुणस्थान तक दोनो कारण रहते है अत वहाँ तक साम्परायिक बध होता है। कषाय और योग से होने वाला बध साम्परायिक बन्ध कहलाता है। और गमनागमन आदि क्रियाओ से जो कर्म बध होता है वह ईर्यापथिक बध कहलाता है।[६२] ईर्यापथ कर्म की स्थिति उत्तराध्ययन[६३] प्रज्ञापना मे दो समय की मानी है और

---

५७ मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतव ।
—तत्त्वार्थ सूत्र ८।१

५८ जोगबध कसायबध ।
—समवायाङ्ग

५९ प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशास्तद्विधय ।
—तत्त्वार्थ सूत्र ।४

६० जोगा पयडिपएस ठिइअणुभाग कसायओ कुणइ ।
—पचम कर्मग्रन्थ गा ९६

जीव ण चउहि ठाणेहि अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिसु त कोहेण माणेण मायाए लोभेण । —स्थानांग ४ स्थान

६१ सकषायत्वाज्जीव कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्त ।
—तत्त्वार्थ सूत्र ८।२

६२ सकषायाकषाययो साम्परायिकेर्यापथयो ।
—तत्त्वार्थ ६।५

६३ जाव सजोगी भवइ ताव ईरियावहिय कम्म निबन्धइ सुहफरिस दुसमयठिइय । त पढमसमए बद्ध बिइयसमये वेइय तइयसमये निज्जिण्ण । —उत्तरा अ २९ अ ७१

६४ सातावेदणिज्जस्स इरियावहियबधग पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेण दो समया । —प्रज्ञापना २३।१३ पृ १३७

प सुखलाल जी ने[६५] सिर्फ एक समय की मानी है। योग होने पर भी अगर कषायाभाव हो तो उपार्जित कर्म की स्थिति या रस का बध नही होता। स्थिति और रस दोनो का बंध का कारण कषाय ही है।

विस्तार से कषाय के चार भेद हैं—क्रोध मान माया और लोभ।[६६] स्थानाङ्ग और प्रज्ञापना मे कर्म बध के ये चार कारण बताये है। सक्षप मे कषाय के दो भेद हैं राग और द्वेष।[६] राग और द्वेष इन दोनो मे भी उन चारो का समन्वय हो जाता है। राग मे माया और लोभ तथा द्वेष मे क्रोध और मान का समावेश होता है।[६] राग और

---

६५ तत्त्वार्थ सूत्र—प सुखलाल जी पृ २१७

६६ कोहं च माणं च तहेव मायं
लोभं चउत्थं अज्झत्थ दोसा।

—सूत्रकृताङ्ग सूत्र ६।२६

(ख) स्थानाङ्ग ४।१।२५१

(ग) प्रज्ञापना २३।१।२६

६७ रागो य दोसो वि य कम्मबीयं।

—उत्तरा ३२।७

६८ दोहिं ठाणेहिं पापकम्मा बंधति रागेण य दोसेण य। रागे दुविहे पण्णत्ते। माया य लोभे य। दोसे दुविहे कोहे य माणे य ।

—स्थानाङ्ग सूत्र २।३

(ख) जीवेणं भंते णाणावरणिज्जं कम्मं कतिहिं ठाणेहिं बंधति? गोयमा! दोहिं ठाणेहिं तंजहा—रागेण य दोसेण य। रागे दुविहे पण्णत्ते तं जहा—माया य लोभे य। दोसे दुविहे पण्णत्ते तं जहा—कोहे य माणे य।

—प्रज्ञापना २३

(ग) परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि रागदोसजुदो।
तं पविसदि कम्मरयं णाणावरणादिभावेहिं॥

—प्रवचनसार गा ९५

द्वेष के द्वारा ही अष्टविध कर्मो का बधन होता है। अत राग द्वेष को ही भाव कम माना है।[७०] राग-द्वेष का मूल मोह ही है।

आचाय हरिभद्र ने लिखा है—जिस मनुष्य के शरीर पर तेल चुपडा हुआ हो उसका शरीर उडने वाली धल से लिप्त हो जाता है वसे ही राग द्वेष के भाव से आक्लिन्न हुए आत्मा पर कम रज का बध हो जाता है।[१]

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि मिथ्यात्व को जो कमबधन का कारण कहा है उसम भी राग द्वेष ही प्रमुख है। राग-द्वेष की तीव्रता से ही ज्ञान विपरीत होता है। इसके अतिरिक्त जहाँ मिथ्यात्व होता है वहाँ अन्य कारण स्वत होते है। अत शब्द भेद होने पर भी सभी का सार एक है। केवल सक्षप विस्तार के विवक्षाभेद से उक्त कथनो मे भेद समझना चाहिए।

जन दशन की तरह बौद्धदशन ने भी कमबधन का कारण मिथ्याज्ञान अथवा मोह माना है। न्याय दशन का भी यही मन्तव्य है कि मिथ्याज्ञान ही मोह है प्रस्तुत मोह केवल तत्त्वज्ञान की अनुत्पत्ति रूप नही है किन्तु शरीर इन्द्रिय मन वेदना बुद्धि ये

---

६९ बद्ध यतेऽष्टविधन कमणा येन हेतुभूतेन तद् ब धनम्।

—प्रतिक्रमण सूत्रवृत्ति आचाय नमि

७० उत्तराध्ययन ३२।७

(ख) स्थानाङ्ग २।२

(ग) समयसार ६४।६६।१ ६।१७७

(घ) प्रवचनसार १।८४।८

७१ स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य
रेणुना श्लिष्यते यथा गात्रम्।
राग-द्वेषाक्लिन्नस्य
कर्म-बधो भवत्येवम् ॥

—आवश्यक टीका

७२ सुत्तनिपात ३।१२।३३

(ख) विसुद्धिमग्ग १७।३ २

(ग) मज्झिम निकाय महातण्हासखयसुत्त ३८

अनात्मा होने पर भी इनमे मैं ही हूँ ऐसा ज्ञान मिथ्याज्ञान और मोह है। यही कर्म बन्धन का कारण है। वशेषिक दर्शन भी प्रकत कथन का समर्थन करता है। साख्यदर्शन भी बध का कारण विपर्यास मानता है और विपर्यास ही मिथ्याज्ञान है। योगदर्शन क्लेश को बध का कारण मानता है और क्लेश का कारण अविद्या ह।[७७] उपनिषद् भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र म भी अविद्या को ही बध का कारण माना ह।

---

७३ यायभाष्य ४।२।१

(ख) दु खज मप्रवृत्तिदोषमि याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापाया दपवग ।

—न्यायसूत्र १।१।२

(ग) तत्त्रराश्य रागद्व षमोहा तरभावात ।

—न्यायसूत्र ४।१।३

(घ) तेषा मोह पापीयान्नामूढस्येतरोत्पत्त ।

—न्यायसूत्र ४।१।६

७४ प्रशस्तपाद पृ ५३८ विपययनिरूपण ।

(ख) प्रशस्तपाद भा य ससारापवग प्रकरण ।

७५ साख्यकारिका—४४–४७–४८

७६ ज्ञानस्य विपययाऽज्ञानम् ।

—माठर वृत्ति ४४

७७ अविद्यास्मितारागद्व षाभिनिवेशा पञ्च क्लेशा ।
अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषा प्रसुप्ततनुवि च्छिन्नोदाराणाम् ॥

—योगदर्शन २।३।४

७८ अविद्यायामन्तरे वतमाना स्वय धीरा पण्डितमन्यमाना ।
दन्द्रम्यमाणा परियन्ति मूढा अ धनव नीयमाना यथाऽन्धा ॥

—कठोपनिषद् १।२।५

७९ अज्ञानेनावृत ज्ञान तेन मुह्यन्ति जन्तव
ज्ञानेन तु तदज्ञान येषा नाशितमात्मन ।
× × ×
तेषामादित्यवज्ज्ञान प्रकाशयति तत्परम् ॥

—भगवद्गीता ५।१५६

इस प्रकार जन दशन ओर अन्य दशनो मे कम बध के कारणो मे शब्दभेद और प्रक्रियाभेद होने पर भी मूल भावनाओ मे खास भेद नही है।

ईश्वर और कमवाद

जन दशन का यह स्पष्ट मन्तव्य है कि जीव जसा कम करता है वसा ही उसे फल प्राप्त होता है। न्यायदशन की तरह वह कम फल का नियन्ता ईश्वर को नही मानता। कम फल का नियमन करने के लिए ईश्वर की आवश्यकता नही है। कम परमाणुओ मे जीवात्मा के सम्बन्ध से एक विशिष्ट परिणाम समुत्पन्न होता है। जिससे वह द्रव्य क्षत्र काल भाव भव गति स्थिति प्रभति उदय के अनुकूल सामग्री से विपाक प्रदशन मे समथ होकर आत्मा के सस्कारो को मलिन करता है। उससे उनका फलोपभोग होता है। पीयूष और विष पथ्य और अपथ्य भोजन मे कुछ भी ज्ञान नही होता तथापि आत्मा का सयोग पाकर वे अपनी अपनी प्रकति के अनुकूल विपाक उत्पन्न करते है। वह बिना किसी प्रेरणा अथवा बिना ज्ञान के अपना काय करते ही है। अपना प्रभाव डालते ही है।

कालोदायी अनगार ने भगवान् श्री महावीर से प्रश्न किया—भगवन्! क्या जीवो के किये गये पाप कर्मों का परिपाक पापकारी होता है।

---

८ अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
—उत्तरा २।३७

१ ईश्वर कारण पुरुषकर्माफलस्य दर्शनात्।
—न्याय दशन सूत्र ४।१

(ख) तत्कारित्वादहेतु।
—गौतमसूत्र अ ४ आ १ सू २१

८२ भगवती ७ १।

८३ दव्व खेत्त कालो भवो य भावो य हेयवो पच।
हेतुसमासेणुदओ जायइ सव्वाण पगईण॥
—पचसग्रह

४ प्रज्ञापना पृष्ठ २३

८५ भगवती ७।१

भगवान ने उत्तर दिया—कालोदायी हाँ होता है।

कालोदायी ने पुन जिज्ञासा व्यक्त की—भगवन्! किस प्रकार होता है?

भगवान् ने रूपक की भाषा मे समाधान करते हुए कहा—कालोदायी! जिस प्रकार कोई पुरुष मनोज्ञ सम्यक प्रकार से पका हुआ शुद्ध अष्टादश व्यजनो से परिपूर्ण विषयुक्त भोजन करता है। वह भोजन आपातभद्र—खाते समय—अच्छा होता है किन्तु ज्यो-ज्यो उसका परिणमन होता है त्यो त्यो उसमे विकृति उत्पन्न होती है वह परिणामभद्र नही होता। इसी प्रकार प्राणातिपात यावत् मिथ्या दर्शन शल्य (अठारह प्रकार के पाप कर्म) आपातभद्र और परिणाम अभद्र होते हैं। कालोदायी इसी प्रकार पाप कर्म पापविपाक वाले होते हैं।[८६]

कालोदायी ने निवेदन किया—भगवन। क्या जीवो के किये हुए कल्याण-कर्मों का परिपाक कल्याणकारी होता है?

भगवान् ने कहा—हाँ होता है।

कालोदायी ने पुन तर्क किया—भगवन्! कैसे होता है?

भगवान ने कहा—कालोदायी! प्राणातिपातविरति यावत् मिथ्या दर्शनशल्य विरति आपातभद्र प्रतीत नही होती पर परिणामभद्र होती है। इसी प्रकार हे कालोदायी! कल्याणकर्म भी कल्याणविपाक वाले होते हैं।

---

८६ अत्थि ण भन्ते! जीवाण पावा कम्मा पावफलविवागसजुत्ता कज्जन्ति? हन्ता अत्थि। कह ण भते! जीवाण पावा कम्मा पावफलविवाग सजुत्ता कज्जति? कालोदाई! जीवाण पाणाइवाए जाव मिच्छादसणसल्ले तस्स ण आवाए भद्दए भवइ तओ पच्छा विप रिणममाणे विपरिणममाणे दुरूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमति। एव खलु कालोदाई! जीवाण पावा कम्मा पावफलविवागसजुत्ता कज्जति। —भगवती ७।१

८७ अत्थि ण भते! जीवाण कल्लाणा कम्मा कल्लाणफलविवागसजुत्ता कज्जन्ति?

जसे गणित करनेवाली मशीन जड होने पर भी अक गिनने मे भूल नही करती वसे ही कम भी जड होने पर भी फल देने म भूल नही करता उसके लिए ईश्वर को निय ता मानने की आवश्यकता नही है। आखिर ईश्वर वही फल प्रदान करेगा जसे जीव के होगे । कम के विपरीत वह कुछ भी देने म समथ नही होगा। इस प्रकार एक ओर ईश्वर को सवशक्तिमान् मानना और दूसरी ओर उसे अणुमात्र भी परिवतन का अधिकार न देना वस्तुत ईश्वर का उपहास है। इससे यह भी सिद्ध है कि कम की शक्ति ईश्वर से भी अधिक है और ईश्वर भी उसके अधीन ही काय करता है। दूसरी दृष्टि से कम मे भी कुछ करने धरने की शक्ति नही माननी होगी क्योकि वह ईश्वर के सहारे से ही अपना फल द सकता है। इस प्रकार दोनो एक दूसरे के अधीन हो जाए गे। इसस तो यही श्र ष्ठ है कि स्वय कम को ही अपना फल देने वाला स्वीकार किया जाय। इससे ईश्वर का ईश्वरत्व भी अक्षुण्ण रहेगा और कमवाद के सिद्धान्त मे भी किसी प्रकार की बाधा समुपस्थित नही होगी। जन सस्कृति की चिन्तनधारा भी प्रस्तुत कथन का ही समथन करती है।

कम का सविभाग नही

वदिक दशन का यह म त य है कि आत्मा सवशक्तिमान ईश्वर के हाथ की कठपुतली है। उसमे स्वय कुछ भी काय करने की क्षमता नही है। स्वग और नरक मे भेजने वाला सुख और दु ख को देने

हता ! अ थि ! कह ण भते ! जीवाण क लाणा कम्मा जाव क जति ? कालोदाई ! जीवाण पाणाइवायवेरमणे जाव परि गहवेरमणे कोहविवेगे जाव मि छादसणस लविवेग तस्स ण आवाए नो भद्दए भवइ तओ प च्छा परिणममाणे सुरूवत्ताए जाव नो दुक्खत्ताए भुज्जो भु जो परिणमइ। एव खलु कालोदाई ! जीवाण कल्लाणा कम्मा जाव क जति ।

—भगवती ७।१

वाला ईश्वर है। ईश्वर की प्रेरणा से ही जीव स्वग और नरक मे जाता है।

जन दशन के कम सिद्धान्त ने प्रस्तुत कथन का खण्डन करते हुए कहा कि—ईश्वर किसी का उत्थान और पतन करने वाला नही है। वह तो वीतराग है। आत्मा ही अपना उत्थान और पतन करता है। जब आत्मा स्वभाव दशा मे रमण करता है तब उत्थान करता है और जब विभाव दशा मे रमण करता है तब उसका पतन होता है। विभाव दशा मे रमण करने वाला आत्मा ही वेतरणी नदी और कूटशाल्मली वक्ष है और स्वभावदशा मे रमण करने वाला आत्मा कामधेनु और न दनवन है। यह आत्मा सुख और दु ख का कर्ता भोक्ता स्वय ही है। शभ माग पर चलने वाला आत्मा मित्र है और अशभ मार्ग पर चलने वाला आत्मा शत्रु है।

जैन दशन का यह स्पष्ट उद्घोष है कि जो भी सुख और दु ख प्राप्त हो रहा है उसका निर्माता आत्मा स्वय ही है। जसा आत्मा कम करेगा वसा ही उसे फल भोगना पडेगा। वदिकदशन और बौद्ध

८८ अज्ञो ज तुरनीशोऽयमात्मन सुख-दुखयो।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वग वा श्वभ्रमेव वा॥
—महाभारत वनपव अ ३ श्लो २८

८९ अप्पा नई वेयरणी अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहा धनू अप्पा मे नदण वण॥
—उत्तराध्ययन २ ।३६

९ अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्त च दुप्पट्ठिअ सुपट्ठिओ॥
—उत्तराध्ययन २ ।३७

९१ ससारमावन्न परस्स अट्ठा साहारण ज च करेइ कम्म।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले ण बधवा बंधवय उवति॥
—उत्तराध्ययन ४।४

माया पिया ण्हुसा भाता भज्जा पुत्ता य ओरसा।
नाल ते मम ताणाय लुप्पतस्स सकम्मुणा॥
—उत्तराध्ययन ६।३

दर्शन की तरह वह कम फल के सविभाग मे विश्वास नहीं करता। विश्वास ही नही कि तु उस विचारधारा का खण्डन भी करता है। [२] एक व्यक्ति का कर्म दूसरे यक्ति मे विभक्त नही किया जा सकता। यदि विभाग को स्वीकार किया जायेगा तो पुरुषाथ और साधना का मूल्य ही क्या है ? पाप पुण्य करेगा कोई और भोगेगा कोई और। अत यह सिद्धान्त युक्ति-युक्त नही है।

कम का काय

कम का मुख्य काय है—आत्मा को ससार मे आबद्ध रखना। जब तक कमबध की परम्परा का प्रवाह प्रवहमान रहता है तब तक आत्मा मुक्त नह बन सकता। यह कम का सामा य कार्य है। विशेष रूप से देखा ाय तो भिन्न भिन्न कर्मों के भिन्न भिन्न काय हैं जितने कम हैं उतने ही काय है। जन कमशास्त्र की दृष्टि से कम की आठ मूल प्रकृतिया है जो प्राणी को विभि न प्रकार के अनुकूल एव प्रतिकूल फल प्रदान करती है। उनके नाम ये है—(१) ज्ञानावरण

---

६२ आ ममीमासा प दलसुख मालवणिया पृ १३१

(ख) श्री अमर भारती भारतीय दशनो म कर्मविवेचन।

—उपाध्याय अमरमुनि

६३ मिलिन्द प्रश्न ४।८।३ –३५ पृ २८

(ख) कथाव थु ७।६।३। पृ ३४

६४ स्वय कृत कर्म यदा मना पुरा
फल तदीय लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्त यदि लभ्यते स्फुट।
स्वय कृत कम निरर्थक तदा॥
निजार्जित कम विहाय देहिनो
न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन।
विचारय नेवमन य मानस
परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्।

—द्वात्रिंशिका आचाय अमितगति ३ –३१

(२) दर्शनावरण (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र (८) और अन्तराय।

इन आठ कम प्रकृतियो के भी दो अवान्तर भेद हैं। इनमे चार घाती है और चार अघाती है। ज्ञानावरण (२) दशनावरण (३) मोहनीय (४) अन्तराय ये चार घाती हैं।[९६] (१) वेदनीय (२) आयु (३) नाम और (४)गोत्र ये अघाती हैं।

जो कर्म आत्मा से बधकर उसके स्वरूप का या उसके स्वाभाविक गुणो का घात करते हैं वे घाती कम हैं। इन की अनुभाग शक्ति का

---

९५ नाणस्सावरणिज्ज दसणावरण तहा।
वयणिज्ज तहा मोह आउकम्म तहेव य ॥
नामकम्म च गोय च अन्तराय तहेव य।
एवमेयाइ कम्माइ अट्ठव उ समासओ।

—उत्तराध्ययन ३३।२–३

(ख) स्थानाङ्ग ।३।५९६
(ग) प्रज्ञापना २३।१
(घ) भगवती शतक ६ उद्द ९ पृ ४५३
(ङ) तत्त्वार्थ सूत्र ८।५
(च) प्रथम कर्मग्रन्थ गा ३
(छ) पचसग्रह २–२

९६ तत्र घातीनि चत्त्वारि कर्माण्यन्वर्थसज्ञया।
घातकत्वाद् गुणाना हि जीवस्यैवेति वाकस्मृति ॥

—पचाध्यायी २।९९८

(ख) आवरणमोहविग्घ घादी जीवगुणघादणत्तादो।

—गोमटसार-कर्मकाण्ड ९

९७ तत शेषचतुष्क स्यात् कर्माघातिविवक्षया।
गुणानां घातकाभावशक्तिरप्यात्मशक्तिवत् ॥

—पचाध्यायी २।९९९

(ख) आउगणाम गोद वेयणिय तह अघादित्ति।

—गोमटसार-कर्मकाण्ड ९

सीधा असर आत्मा के ज्ञान आदि गुणो पर होता है। इनसे गुण विकाश अवरुद्ध होता है जैसे बादल सहस्ररश्मि सूय के चमचमाते प्रकाश को आच्छादित कर देता है उसकी रश्मियो को बाहर नही आने देता वसे ही घाती कम आत्मा के मुख्य गुण (१) अनन्त ज्ञान (२) अन त दशन (३) अनन्त सुख (४) और अन त वीय गुणो को प्रकट नही होने देता। ज्ञानावरणीय कम जीव की अन त नान शक्ति को प्रकट नही होने देता। दशनावरणीय कम आत्मा के अन त दर्शन शक्ति के प्रादुर्भाव को रोकता है। मोहनीय कम आत्मा के मम्यक श्रद्धा और सम्यक चारित्र गुण का अवरोध करता है जिससे आत्मा को अन त सुख प्राप्त नही होता। अ तराय कम आत्मा की अन त वीयशक्ति आदि का प्रतिघात करता है जिससे आत्मा अ ानी अन त विराट शक्ति का विकास नही कर पाता। इम प्रकार घातोकम आत्मा के विभिन्न गुणो का घात करते है।

जो कम आत्मा के निज गुण का घात नही कर केवल आत्मा के प्रतिजीवी गुणो का घात करता है वह अघाती कम है। अघाती कर्मो का सीधा सम्ब ध पौद्गलिक द्र यो से होता है इनकी अनुभाग शक्ति जीव के गुणो पर सीधा असर नही करती। अघाती कर्मो के उदय से आत्मा का पौद्गलिक द्र यो से मम्ब ध जुडता है। जिससे आत्मा अमूर्तोऽपि मूत इव रहती है। उसे शरीर के कारागृह मे बद्ध रहना पडता है। जो जीव के गुण (१) अव्याबाध सुख (२) अटल अवगाहन (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुभाव को प्रकट नही होने देता। वेदनीयकम आत्मा के अव्याबाध सुख को आ छन्न करता है। आयुष्य कम आत्मा की अटल अवगाहना-शाश्वत स्थिरता को नही होने देता। नाम कम आत्मा की अरूपी अवस्था को आवत किये रहता है। गोत्र कम आत्मा के अगुरुलघुभाव को रोकता है। इस प्रकार अघाती कम अपना प्रभाव दिखाते है। जब घाति कम नष्ट हो जाते है तब आत्मा केवलज्ञान केवलदशन का धारक अरिहन्त बन जाता है। और जब अघाती कम नष्ट हो जाते है तब विदेह सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो जाता है।

---

६८ मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम्।
—तत्त्वाथ १ ।१

ज्ञानावरण कर्म

जीव चैतन्यमय है। उपयोग उसका लक्षण है।[९] उपयोग शब्द ज्ञान और दर्शन का संग्राहक है।[१०] ज्ञान साकारोपयोग है और दर्शन निराकारोपयोग। जिससे जाति गुण क्रिया आदि विशेष धर्मों का बोध होता है वह ज्ञानोपयोग है और जिससे सामान्य धर्म अर्थात् सत्ता मात्र का बोध होता है वह दर्शनोपयोग है।[१२] जिस कर्म के प्रभाव से ज्ञानोपयोग आच्छादित रहता है वह ज्ञानावरण कर्म है। आत्मा के ज्योतिर्मय स्वभाव को आवृत करने वाले इस कर्म की तुलना कपड़े की पट्टी से की गई है। जैसे नेत्रों पर कपड़े की पट्टी लगा देने से नेत्र-ज्ञान अवरुद्ध हो जाता है वैसे ही ज्ञानावरण कर्म के प्रभाव से आत्मा की समस्त पदार्थों को सम्यकतया जानने की ज्ञान शक्ति आच्छादित हो जाती है।[3]

---

९९ जीवो उवओग लक्खणो।

—उत्तरा २८।१

१ जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होई।

—नियमसार १

११ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेद ।

—तत्त्वार्थ २।९

(ख) तत्त्वार्थ सूत्र भाष्य २।९

१२ प्रमाणनयतत्त्वालोक २।७

१३ एसि ज आवरण पडव्व चक्खुस्स त तयावरण।

—प्रथम कर्मग्रन्थ ९

(ख) पडपडिहारसिमिज्जाहलिचित्तकुलालभंडयारीण
जह एदेसि भावा तहवि य कम्मा मुणेयव्वा।

—गोमटसार (कर्मकाण्ड) २१

ज्ञानावरण कम की पाँच उत्तर प्रकृतियाँ है—(१) मतिज्ञानावरण (२) श्र तज्ञानावरण (३) अवधि ज्ञानावरण (४) मन पर्याय ज्ञानावरण (५) केवल ज्ञानावरण।[1]

मतिज्ञानावरण कर्म इन्द्रियो व मन से होने वाले ज्ञान का निरोध करता है। श्र तज्ञानावरण कम श न्द और अर्थ की पर्यालोचना से होने वाले ज्ञान को आ छादित करता है। अवधिज्ञानावरण कम इन्द्रिय और मन की सहायता के विना होने वाले रूपी पदार्थो के मर्यादित प्रत्यक्ष ज्ञान को अवरुद्ध करता है। मन पर्यायज्ञानावरण कम इन्द्रिय तथा मन की सहायता के बिना सज्ञी जीवो के मनोगत भावो को जानने वाल ज्ञान को आच्छादित करता है। केवल ज्ञानावरण कम सव द्र यो और पर्यायो को युगपत् प्रत्यक्ष जानने वाल ज्ञान को आवत करता है।

ज्ञानावरण कम की उत्तर प्रकृतियाँ सव घाती और देश घाती रूप से दो प्रकार की है। जो प्रकृति स्वघात्य ज्ञान गरण का पूरण तया घात करे वह सवघाती है और जो स्वघात्य ज्ञान गुण का आशिक रूप से घात करे वह देशघाती है। मतिज्ञानावरण श्र नज्ञानावरण अवधिज्ञानावरण मन पर्याय ज्ञानावरण ये चार

(ग) सरउ गयससिनिम्मलयरस्स जीवस्स छायरण जमिह।
णाणावरण कम्म पडोवम होइ एव तु॥
—स्थानांग २।४।१ ५ टीका मे उद्धृत

१ ४ नाणावरण पचविह सुय आभिणिबोहिय।
ओहिनाण च तइय मणनाण च केवल॥
—उतराध्ययन ३३।४

(ख) प्रज्ञापना २३।२
(ग) स्थानाङ्ग ५।४६४
(घ) तत्त्वार्थ ।६–७

१ ५ णाणावरणिज्जे कम्मे दुविहे प त —देसनाणावरणिज्जे चेव सव्वणाणावरणिज्जे चेव।
—स्थानाङ्ग सूत्र २।४।१ ५

देशघाती है और केवल ज्ञानावरण सवघाती है। सवघाती कहने का तात्पय प्रबलतम आवरण की अपेक्षा से है। केवल ज्ञानावरणीय कर्म सवघाती होने पर भी आत्मा के ज्ञान गुण को सवथा आवृत नही करता परन्तु केवल ज्ञान का सवथा निरोध करता है। निगोदस्थ जीवो मे उत्कट ज्ञानावरणीय कम का उदय रहता है। जसे घनघोर घटाओ से सूय के पूणत आच्छादित होने पर भी उसकी प्रभा का कुछ अश अनावृत रहता है जिससे दिन और रात का विभाग प्रतीत होता है वसे ही ज्ञान का अनन्तवा भाग नित्य अनावृत रहता है।[16] जैसे घनघोर घटाओ को विदीण कर सूय की प्रभा भूमण्डल पर आती है पर सभी मकानो पर उसकी प्रभा एक सदृश नही गिरती मकानो की बनावट के अनुसार मन्द और मन्दतर और मन्दतम गिरती है वसे ही ज्ञान की प्रभा मतिज्ञानावरण आदि के उदय के तारतम्य के अनुसार मन्द मन्दतर और मन्दतम होती है। ज्ञान पूणरूप से तिरोहित कभी नही होता। यदि ऐसा हो जाय तो जीव अजीव हो जाए।

इस कम की स्थिति अधिकतम तीस कोटा-कोटि सागरोपम और न्यूनतम अन्तमुहूत की है।[17]

---

१६ (क) देश —ज्ञानस्याऽऽभिनबोधिकादिमावृणोतीति देशज्ञानावरणीयम् सव ज्ञान—केवलाख्यमावृणोतीति सर्वज्ञानावरणीय केवलावरण हि आदित्यकल्पस्य केवलज्ञानरूपस्य। जीवस्याच्छादकतया सान्द्रमेघवृन्द कल्पमिति तत्सवज्ञानावरण। मत्याद्यावरण तु घनातिच्छादितादित्ये षत्प्रभाकल्पस्य केवलज्ञानदेशस्य कटकुड्यादिरूपावरणतुल्यमिति देशावरणमिति। —ठाणाङ्ग २।४।१०५ टीका

(ख) स्थानाङ्ग-समवायाङ्ग पृ ६४–६५ प दलसुख मालवणिया।

(ग) सव्वजीवाण पि य ण अक्खरस्स
अणतभागो णिच्चुग्घाडिओ हवइ।
जइ पुण सो वि आवरिज्जा तेण जीवो अजीवत्त पावेज्जा।
सुटठुवि मेहसमुदये होइ पभा चन्दसूराण।
— नन्दीसूत्र ४३

१७ उदहीसरिसनामाण तीसई कोडिकोडीओ।
उक्कोसिया ठिई होइ अन्तोमुहुत्त जहन्निया॥

दर्शनावरण कर्म

पदार्थों की विशेषता को ग्रहण किये बिना केवल उनके सामान्य धर्म का बोध करना दर्शनोपयोग है। जिस कर्म के प्रभाव से दर्शनोपयोग आच्छादित रहता है वह दर्शनावरणीय कर्म है। दर्शन गुण के सीमित होने पर ज्ञानोपलब्धि का द्वार बन्द हो जाता है। इस कर्म की तुलना शासक के उस द्वारपाल से की गई है जो शासक से किसी व्यक्ति को मिलने में बाधा उपस्थित करता है। द्वारपाल की बिना आज्ञा के व्यक्ति शासक से नहीं मिल सकता वैसे ही दर्शनावरण कर्म वस्तुओं के सामान्य बोध को रोकता है। पदार्थों के देखने में अड़चन डालता है।

दर्शनावरण कर्म की नौ उत्तर प्रकृतियाँ है—(१) चक्षुदर्शनावरण (२) अचक्षुदर्शनावरण (३) अवधिदर्शनावरण (४) केवल दर्शनावरण (५) निद्रा (६) निद्रानिद्रा (७) प्रचला (८) प्रचलाप्रचला (९) स्त्यानर्द्धि।

आवरणिज्जाण दुण्हं पि वेयणिज्जे तहेव य।
अन्तराए य कम्मम्मि ठिई एसा वियाहिया॥

—उत्तराध्ययन ३३।१९-२

(ख) आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः।

—तत्त्वार्थ सूत्र ८।१५

(ग) पञ्चम कर्मग्रन्थ गा २६

१८ जं सामन्नग्गहणं भावाणं नेव कट्टु आगारं।
अविसेसिऊण अत्थे दंसणमिह वुच्चए समए॥

१९ दंसणसीले जीवे दंसणघायं करेइ जं कम्मं।
तं पडिहारसमाणं दंसणवरणं भवे जीवे॥

—स्थानाङ्ग २।४।१०५ टीका

दंसणचउ पणनिद्दा वित्तिसमं दंसणावरणं।

—प्रथम कर्मग्रन्थ ९

(ग) गोम्मटसार कर्मकाण्ड २१ नेमिचन्द्र

११ निद्दा तहेव पयला निद्दानिद्दा य पयलपयला य।
तत्तो य थीणगिद्धी उ पंचमा होइ नायव्वा॥

चक्षुर्दर्शनावरण कर्म नेत्रो द्वारा होने वाले सामान्य बोध को आवत करता है। अचक्षदशनावरण कम—चक्षु के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियो और मन के द्वारा होने वाले सामान्य बोध को आवृत करता है। अवधि दशनावरण कम—इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना आत्मा को रूपी द्रव्यो का जो सामान्य बोध होता है उसे आच्छादित करता है। केवलदशनावरण कम सब द्रव्य और पर्यायो के युगपत् होने वाले सामान्य अवबोध को आवृत करता है। निद्रा कम वह है जिससे सुप्त प्राणी सुख से जाग सके ऐसी हल्की निद्रा उत्पन्न हो। निद्रानिद्रा कम से ऐसी नीद उत्पन्न होती है जिससे सुप्त प्राणी कठिनाई से जाग सके। प्रचला—जिस कम से ऐसी नीद उत्पन्न हो कि खडे खडे और बठे-बठ भी नीद आये। प्रचला प्रचला कम—जिससे चलते फिरते भी नीद आये। स्त्यानर्धि—जिस कम से दिन मे अथवा रात मे सोचे हुए कायविशेष को निद्रावस्था मे सम्पन्न करे वसी प्रगाढतम नीद।

दशनावरण कम भी देशघाती और सवघाती रूप मे दो प्रकार का है। चक्ष अचक्षु अवधिदशनावरण देशघाती है और शेष छह प्रकृतियाँ सवघाती है।[1] सवघाती प्रकृतियो मे केवल

चक्खुमचक्खूओहिस्स दसणे केवले य आवरणे।
एव तु नवविगप्प नायव्व दसणावरण॥

—उत्तरा ३३।५-६

(ख) समवायाङ्ग सू ९

(ग) स्थानाङ्ग ८।३।६६

(घ) चक्षरचक्षरवधिकेवलाना निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला प्रचला-प्रचला स्त्यानगृद्धिवेदनीयानि च।

—तत्त्वाथ सूत्र ८।८

(ङ) प्रज्ञापना २३।१

(च) कर्मग्रन्थ

१११ दरिसणावरणिज्जे कम्मे एव चेव।

टीका—देशदर्शनावरणीय चक्षरचक्षरवधिदशनावरणीयं सवदशनावरणीय तु निद्रापञ्चक केवलदर्शनावरणीय चेत्यर्थं भावना त पूर्ववदिति। —ठाणाङ्ग २।४।१ ५

दर्शनावरण प्रमुख है। ज्ञानावरण की तरह इसे भी समझ लेना चाहिए।

दशनावरण कम का पूण क्षय होने पर जीव की अनन्त दशन शक्ति प्रकट होती है वह केवल दशन का धारक बनता है। जब उसका क्षयोपशम होता है तब चक्ष दशन अचक्ष दशन और अवधि दशन प्रकट होता है।

प्रस्तुत कर्म की यूनतम स्थिति अन्तमुहूत की और उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम की है।[२]

वेदनीय कम

आत्मा के अ-याबाध गुण को आवत करने वाला कम वेदनीय है। वेदनीय कम से आत्मा को सुख दुख का अनुभव होता है। उसके दो भेद है—(१) साता वेदनीय (२) असाता वेदनीय। साता वेदनीय कम से जीव को भौतिक सुखो की उपलधि होती है। और असाता वेदनीय कम से मानसिक और शारीरिक दुख प्राप्त होता है।

वेदनीय कम की तुलना मध मे लिप्त तलवार की धार से की गई है। तलवार की धार पर लिप्त मध को चाटने के

---

११२ उत्तराध्ययन ३३।१९–२
(ख) तत्वाथ सूत्र ।१५
(ग) पचम कमग्रथ गा २६
(घ) प्रज्ञापना पद २९ उ २ सू २९३

११३ वेयणीय पि दुविह सायमसाय च आहिय।

—उत्तराध्ययन ३३।७

(ख) स्थानाङ्ग २।१ ५

११४ यदुदयाद् वादिगतिष गरीरमानससुखप्राप्तिस्तत्सद् वेद्यम्। प्रशस्त वेद्य सद्वेद्यमिति। यत्फल दुखमनेकविध तदसद्वेद्यम्। अप्रशस्त वेद्यमसद्वेद्यमिति।

—तत्त्वार्थ ८।८ सर्वार्थसिद्धि

सदृश साता वेदनीय है और जीभ कट जाने के समान असाता वेदनीय है।[115]

सात वेदनीय कम-आठ प्रकार का है—मनोज्ञ शब्द मनोज्ञ रूप मनोज्ञ गन्ध मनोज्ञ रस मनोज्ञ स्पर्श सुखित मन सुखित वाणी सुखित काय जिससे प्राप्त हो [116]।

असात वेदनीय भी आठ प्रकार का है—अमनोज्ञ शब्द अमनोज्ञ रूप अमनोज्ञ गन्ध अमनोज्ञ रस अमनोज्ञ स्पर्श दुःखित मन दुःखित वाणी दुःखित काय की प्राप्ति जिससे हो।[117]

वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति उत्तराध्ययन[11] और प्रज्ञापना[11]

११५ महुलित्तखग्गधारालिहण व उल उ वेयणिय।

—प्रथम कर्मग्रन्थ १२

(ख) तथा वेद्यते—अनुभूयत इति वेदनीय सात सुख तद्र पतया वेद्यते यत्तत्तथा दीर्घ व प्राकृतत्वात् इतरद्—एतद्विपरीतम् आह च—

महुलित्तनिसियकरवालधार जीहाए जारिस लिहण
तारिसय सुहदुहउप्पायग मुणह ॥

—ठाणाङ्ग २।४।१ ५ टीका

११६ स्थानाङ्ग ८।४ ८

(ख) प्रज्ञापना २३।३

११७ स्थानाङ्ग ।४८८

(ख) असायावेदणिज्जे ण भते कम्मे कतिविध पण्णत्त ? गोयमा ! अट्ठविधे पन्नत्त त जहा अमणुण्णा सद्दा जाव कायदुहया।

—प्रज्ञापना २३।३।१५

११ उदही सरिसनामाए तीसई कोडिकोडीओ।
उक्कोसिया ठिई होइ अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥
आवरणिज्जाण दुण्ह पि वेयणिज्जे तहेव य।
अन्तराए य कम्मम्मि ठिई एसा वियाहिया ॥

—उत्तरा ३३।१९–२

११९ प्रज्ञापना २३।२।२१–२९

मे अन्तमुहूर्त की बताई है। भगवती[१२०] मे दो समय की कही गई है। इन दोनो कथनो मे कोई विरोध नही समझना चाहिए क्योकि मुहूर्त के अन्दर का समय अन्तमुहूर्त्त कहलाता है। दो समय को अन्तमुहूर्त्त कहने मे कोई विसगति नही है। वह जघन्य अन्तमुहूर्त्त है। किन्तु तत्त्वार्थ सूत्र[१२१] और अन्य अनेक ग्रन्थो मे बारह मुहूर्त की प्रतिपादित की गई है। उत्कृष्ट स्थिति सर्वत्र तीस कोटाकोटि सागर की है।

मोहनीय कर्म

जो कर्म आत्मा मे मूढता उत्पन्न करे वह मोहनीय है। आठ कर्मो मे यह सबसे अधिक शक्तिशाली है। अन्य सात कर्म प्रजा है तो मोहनीय कर्म राजा है।[१२२] यह आत्मा के वीतराग भाव—शुद्ध स्वरूप को विकृत करता है जिससे आत्मा रागद्वेष आदि विकारो से ग्रस्त होता है। यह कर्म स्व-परविवेक मे तथा स्वरूपरमण मे बाधा समुपस्थित करता है।

इस कर्म की तुलना मदिरापान से की गई है। जैसे मदिरापान से मानव परवश हो जाता है उसे अपने तथा पर के स्वरूप का भान नही रहता वह हिताहित के विवेक से विहीन हो जाता है

---

१२० वेदणिज्ज जह दो समया।

—भगवती ६।३

१२१ अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य।

—तत्त्वार्थ सूत्र ८।१९

(ख) वेदनीयप्रकृतेरपरा द्वादशमुहूर्ता स्थितिरिति।

—तत्त्वार्थ भाष्य

(ग) जहन्ना ठिई वेअणीअस्स बारस मुहुत्ता।

नवतत्त्व साहित्य सग्रह देवानन्द सूरिकृत सप्ततत्त्वप्रकरण

(घ) जैन दर्शन पृ ३५४ डा मोहनलाल मेहता

१२२ अष्ट कर्म नो राजवी हो मोह प्रथम क्षय कीन।

— विनयचन्द्र चौबीसी

वसे ही मोह कम के उदय से जीव को तत्त्व अतत्त्व का भेद विज्ञान नहीं हो पाता वह संसार के विकारो मे उलझ जाता है।[123]

मोहनीय कर्म दो प्रकार का होता है—(१) दशन मोहनीय और (२) चारित्र मोहनीय। यहाँ दशन का अथ तत्त्वाथ श्रद्धान रूप आत्मगुण है। जसे मदिरापान से बुद्धि मूर्च्छित हो जाती है वसे ही दर्शन मोहनीय कम के उदय से आत्मा का विवेक विलुप्त हो जाता है। वह अनात्मीय पदार्थो को आत्मीय समझता है।[6] वह धम को अधम और अधम को धम मानता है।

दशन मोहनीय कम तीन प्रकार का है[12] —(१) सम्यकत्व

---

१२३ मज्ज व मोहणीय—

—प्रथम कर्मग्रन्थ गाथा १३

(ख) जह म ज्जपाणमूढो लोए पुरिसो परव्वसो होइ
तह मोहेण विमूढो जीवो उ परव्वसो होइ।

—स्थानाङ्ग २।४।१ ५ टीका

(ग) गोम्मटसार (कमकाण्ड) २१

१२४ मोहणिज्ज पि दुविह दसणे चरणे तहा।

—उत्तराध्ययन ३३ ८

(ख) ठाणाङ्ग २।४।१ ५

(ग) प्रज्ञापना २३।२

१२५ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दशनम्

—तत्त्वाथ सूत्र १।२

१२६ यथा मद्यादिपानस्य पाकाद् बुद्धिर्विमुह्यति।
श्वेत शंखादि यद्वस्तु पीत पश्यति विभ्रमात्।
तथा दशनमोहस्य कमणस्तूदयादिह।
अपि यावदनात्मीयमात्मीय मनुते कुदृक ॥

—पचाध्यायी २।९८–६–७

१२७ सम्मत्त चेव मिच्छत्त सम्मामिच्छत्तमेव य।
एयाओ तिन्नि पयडीओ मोहणिज्जस्स दसणे ॥

—उत्तराध्ययन ३३।९

(ख) स्थानाङ्ग २।१८४

मोहनीय—जो कर्म सम्यक्त्व का प्रकट होना तो नही रोक सकता किन्तु औपशमिक और क्षायिक सम्यग्दर्शन को उत्पन्न नही होने देता। (२) मिथ्यात्व मोहनीय—जो कर्म तत्त्व मे श्रद्धा उत्पन्न नही होने देता और विपरीत श्रद्धा उत्पन्न करता है। (३) मिश्र मोहनीय—जो कर्म तत्त्व श्रद्धा मे दोलायमान स्थिति उत्पन्न करता है। दर्शनमोहनीय के शुद्ध दलिक सम्यक्त्व मोहनीय अशुद्ध दलिक मिथ्यात्व मोहनीय और शुद्धाशुद्ध दलिक सम्यग्मिथ्यात्वमोहनीय है। इनमे मिथ्यात्व मोहनीय सर्वघाती है और शेष दो देशघाती है।

मोहनीय कर्म का द्वितीय भेद चारित्रमोह है। यह कर्म आत्मा के चारित्र गुण को उत्पन्न नही होने देता।

चारित्र मोहनीय के भी दो भेद है—(१) कषाय मोहनीय (२) नोकषाय मोहनीय। कषाय मोहनीय के सोलह भेद है और नो कषाय मोहनीय के सात अथवा नौ भेद हैं।

---

१२ प्रथम कर्म ग्रन्थ गा १४–१६

१२६ केवलणाणावरण दसणछक्क कषायवारसय।
मिच्छ च सव्वघादी सम्मामिच्छ अबधम्हि॥
—गोम्मटसार (कर्मकाण्ड) ३९

(ख) केवलणाणावरण दसणछक्क च मोहबारसग।
ता सव्वघाइसन्ना भवति मिच्छत्तवीसइम।
—ठाणाङ्ग २।४।१ ५ टीका मे उद्धृत

१३ एव जीवस्य चारित्र गुणोऽस्त्येक प्रमाणसात्।
तन्मोहयति यत्कर्म तत्स्याच्चारित्रमोहनम्॥
—पचाध्यायी २१।६

१३१ चरित्तमोहण कम्म दुविह त वियाहिय।
कसायमोहणि ज तु नोकसाय तहेव य॥
—उत्तराध्ययन ३३।१

(ख) प्रज्ञापना २३।२

१३२ सोलसविहभेएण कम्म तु कसायज।
सत्तविह नवविह वा कम्म च नोकसायज॥
—उत्तरा ३३।११

कषाय मोहनीय

कषाय शब्द कष और आय से बना है। कष—संसार आय—लाभ जिससे ससार अर्थात् भवभ्रमण की अभिवद्धि हो वह कषाय है।[1] क्रोध मान माया और लोभ के रूप मे वह चार प्रकार का है। ये चार भी अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण और सज्वलन यो चार चार प्रकार के है। इस प्रकार सोलह भेद कषायमोहनीय के है। इसके उदय से प्राणी मे क्रोधादि कषाय उत्पन्न होते है।

अनन्तानुबन्धी चतुष्क के प्रभाव से जीव अनन्त काल तक ससार मे भ्रमण करता है। यह कषाय सम्यकत्व का विघातक है।[1]

अप्रत्याख्यानावरणीय चतुष्क के प्रभाव से देशविरति रूप श्रावक धर्म की प्राप्ति नही होती। प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के

(ख) प्रज्ञापना २३।२

(ग) स्थानाङ्ग ६।७

(घ) समवायाग—१६

१३३ कम्म कसो भवो वा कसमातो सि कसाया तो।
कसमाययति व जतो गमयति कस कसायत्ति॥

—आवश्यक मलयगिरि वृत्ति प ११६

—विशेषावश्यक भाष्य गा १२२७

१३४ (क) अनन्तानुबधी सम्यग्दर्शनोपघाती। तस्योदयाद्धि सम्यग्दर्शन नोत्पद्यते। पूर्वोत्पन्नमपि च प्रतिपतति।

—तत्त्वार्थ सूत्र ८।१ भाष्य

(ख) अनन्तायनुबध्नन्ति यतो जन्मानि भूतये।
ततोऽनन्तानुबन्ध्याख्या क्रोधाद्य षु नियोजिता॥

१३५ स्वल्पमपि नोत्सहेद् येषा प्रत्याख्यानमिहोदयात्।
अप्रत्याख्यानसज्ञाऽतो द्वितीयेषु निवेशिता॥

(ख) अप्रत्याख्यानकषायोदयाद्विरतिन भवति—

—तत्त्वार्थ भाष्य ८।१

उदय से सर्वविरति रूप श्रमणधर्म की प्राप्ति नहीं होती।[१३६] संज्वलन कषाय के प्रभाव से श्रमण यथाख्यात चारित्ररूप उत्कृष्ट चारित्र प्राप्त नहीं कर सकता।[१३७] गोम्मटसार में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है।

अनन्तानुबन्धी चतुष्क की स्थिति यावज्जीवन की, अप्रत्याख्यानी चतुष्क की एक वर्ष की, प्रत्याख्यानी कषाय की चार माह की और संज्वलन कषाय की स्थिति एक पक्ष की है।

जिनका उदय कषायों के साथ होता है या जो कषायों को उत्तेजित करते हैं वे नोकषाय हैं।[१४०] इन्हें अकषाय भी कहते हैं।[१४१] नोकषाय या अकषाय का तात्पर्य कषाय का अभाव नहीं किन्तु ईषत्कषाय है।[१४२] नोकषाय के नौ भेद है—(१) हास्य (२) रति

---

१३६ सर्वसावद्यविरतिः प्रत्याख्यानमुदाहृतम्।
तदावरणसंज्ञा ततस्तृतीयेषु निवेशिता॥

(ख) प्रत्याख्यानावरणकषायोदयाद् विरताविरतिर्भवत्युत्तमचारित्रलाभस्तु न भवति।

—तत्त्वार्थ सूत्र ८।१० भाष्य

१३७ (क) संज्वलनकषायोदयाद्यथाख्यातचारित्रलाभो न भवति।

—तत्त्वार्थ सूत्र ८।१० भाष्य

१३८ सम्मत्तदेससयलचरित्तजहक्खादचरणपरिणामे।
घादंति वा कषाया चउ सोल असंखलोगमिदा॥

—गोम्मटसार जीवकाण्ड २८३

१३९ जाजीववरिसचउमासपक्खगा नरयतिरियनर अमरा
सम्माणुसव्वविरई अहखायचरित्तघायकरा।

प्रथम कर्मग्रन्थ गा० १८

१४० कषायसहवर्तित्वात् कषायप्रेरणादपि।
हास्यादिनवकस्योक्ता नोकषायकषायता॥

१४१ तत्त्वार्थ राजवार्तिक ८।६।१

१४२ ईषदर्थे नञः प्रयोगादीषत्कषायोऽकषाय इति।

—सर्वार्थसिद्धि ८।९

(३) अरति (४) भय (५) शोक (६) जुगुप्सा[143] (७) स्त्री वेद (८) पुरुष वेद (६) नपु सक वेद।

इस प्रकार चारित्र मोहनीय की पच्चीस प्रकृतियो मे से सज्वलन कषाय चतुष्क और नोकषाय ये अघाती है और शष बारह प्रकृति सर्वघाती है

मोहनीय कम की स्थिति जघय अ तमु हूत की है और उत्कृष्ट सतर कोटाकोटी सागर की है। [145]

आयषकम

जीवो के जीवन अवधि का नियामक कम आयुष्य है। इस कर्म के अस्तित्व म प्राणी जीवित रहता है और क्षय होने पर मृत्यु का आलिगन करता है।[146]

इस कम की तुलना कारागृह से की गई है। जसे यायाधीश अप राधी को अपराध के अनुसार नियत समय तक कारागृह मे डाल देता है अपराधी के चाहने पर भी अवधि के पूरा हुए बिना वह मुक्त नही हो सकता। वसे ही आयुषकम के कारण जीव देह से मुक्त नही हो सकता।

---

१४३ यदुदयादात्मदोषसवरण परदोषाविष्करण सा जुगुप्सा।

—आचाय पूज्यपाद

१४४ स्थानाङ्ग २।४।१ ५ टीका

(ख) गोम्मटसार कर्मकाण्ड ३६

१४५ (क) उदहीसरिसनामाण सत्तरि कोडिकोडीओ।
मोहणि जस्स उक्कोसा अन्तोमुहुत्त जहन्निया॥

—उत्तरा ३३।२१

(ख) सप्ततिर्मोहनीयस्य। —तत्त्वार्थ ।।१६

१४६ यद्भावाभावयोर्जीवितमरण तदायु ॥२॥ यस्य भावात् आत्मन जीवित भवति यस्य चाभावाद् मृत इत्युच्यते तद्भवधारणमायुरित्युच्यते। — तत्त्वाथ राजवार्तिक—८।१ ।२

(ख) प्रज्ञापना २३।१

१४७ पडपडिहारासि मज्जहडचित्तकुलालभडगारीण।
जह एएसि भावा कम्माणि वि जाण तह भावा॥

—नवतत्त्व साहित्य सग्रह। अव चूर्ण्यादिसमेतं नवतत्त्व प्रकरणम् ७४

आयुष् कम का काय सुख दु ख देना नही किन्तु नियत अवधि तक किसी एक भव मे रोके रखना है।

आयु कम की चार उत्तर प्रकृतियाँ हैं—(१) नरकायु (२) तियञ्चायु (३) मनुष्यायु (४) देवायु।[१] आयु दो रूपो मे उपलब्ध होनी है। अपवतनीय और अनपवतनीय। बाह्य निमित्तो से आयु का कम होना अपवतन है। किसी भी कारण से आयु का कम न होना अनपवतन है। मगर आयु कम हो जाने का अभिप्राय यह नही कि आयु कम का कुछ भाग बिना भोगे ही नष्ट हो जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि आयु कम के जो प्रदेश धीरे धीरे बहुत समय मे भोगे जाने वाले थ वे सब अ पकाल मे—अन्तमु हूत मे ही भोग लिये जाते है। लोकव्यवहार म इसी का अकाल मृत्यु कहते है।

(ख) जीवस्य अवट्ठाण करेदि आऊ हडिव्व णर।

—गोम्मटसार-कर्मकाण्ड ११

(ग) सुरनरतिरिनरयाऊ हडिसरिस।

—प्रथम कम ग्रन्थ २३

१४८ दुक्ख न देइ आउ नवि य सुह देइ चउसुवि गईसु।
दुक्खसुहाणाहार धरे देहट्ठिय जीय॥

—ठाणाङ्ग २।४।१ ५ टीका

१४६ नारकतयग्योनमानुषदवानि।

—तत्त्वाथ सूत्र ८।११

(ख) गोयमा ! आउयस्स ण कम्मस्स जीवेण बद्धस्स जाव चउविहे अणुभावे पन्नत्त — त जहा-नेरइयाउते तिरियाउते मणयाउते देवाउए।

—प्रज्ञापना २३।१

(ग) नेरइयतिरिक्खाउ मणस्साउ तहेव य।
देवाउय चउत्थं तु आउ कम्म चउव्विह॥

—उत्तराध्ययन ३३।१२

१५ तत्त्वाथ सूत्र २।५२ प सुखलाल जी का विवेचन पृ ११२-११६ तक।

आयु कर्म की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।[151] भगवती मे उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि त्रिभाग उपरान्त तेतीस सागरोपम वर्ष कही है।[152]

नाम कर्म

जिस कर्म से जीव गति आदि पर्यायो के अनुभव करने के लिए बाध्य हो वह नाम कर्म है[153] अथवा जिस कर्म से जीव मे गति आदि के भेद उत्पन्न हो देहादि की भिन्नता का कारण हो अथवा जिससे गत्यन्तर जैसे परिणमन हो वह नाम कर्म है।

प्रस्तुत कर्म की तुलना चित्रकार से की गई है। जिस प्रकार एक चतुर चित्रकार अपनी कल्पना से मानव पशु पक्षी आदि नाना प्रकार के चित्र चित्रित करता है ऐसे ही नामकर्म भी नारक तिर्यञ्च मानव और देवो के शरीर आदि की रचना करता है। इस प्रकार यह कर्म शरीर अङ्गोपाङ्ग इन्द्रिय आकृति शरीरगठन यश अपयश आदि का निर्माता है।

---

१५१ तेत्तीस सागरोवमा उक्कोसेण वियाहिया।
ठिइ उ आउकम्मस्स अन्तोमुहुत्त जहन्निया॥
—उत्तराध्ययन ३३।२२

१५२ आउग उक्को तेत्तीस सायरोवमाणि पुव्वकोडितिभागमब्भहियाणि।
—भगवती ६।३

१५३ नामयति—गत्यादिपर्यायानुभवन प्रति प्रवयणति जीवमिति नाम।
प्रज्ञापना २३।१।२८८ टीका

(ख) विचित्रपर्यायैर्नमयति—परिणमयति यज्जीव तन्नाम।
—ठाणाङ्ग २।४।१ ५ टीका

१५४ गदिआदि जीवभेद देहादी पोग्गलाण भेद च।
गदियतरपरिणमन करेदि णाम अणेयविह॥
—गोम्मटसार-कर्मकाड १२

१५५ जह चित्तयरो निउणो अणेगरूवाइ कुणइ रूवाइ।
सोहणमसोहणाइ चोक्खमचोक्खेहि वण्णेहि॥

नाम कर्म के भी मुख्य दो भेद है—शुभ और अशुभ।[१५६] अशुभ नाम पापरूप है और शुभ नाम पुण्यरूप है।

नाम कर्म की मध्यम रूप से बयालीस उत्तर प्रकृतियाँ भी होती हैं।[१५७] वे इस प्रकार है —

(१) गतिनाम—जन्म सम्बन्धी विविधता का निमित्त कर्म। इसके चार उपभेद हैं—(क) नरक गतिनाम (ख) तिर्यञ्च गतिनाम (ग) मनुष्य गतिनाम (घ) देवगति नाम।

(२) जातिनाम—एकेन्द्रियत्व से लेकर पचेन्द्रियत्व तक का अनुभव कराने वाला कर्म। इसके पाच उपभेद है—(क) एकेन्द्रिय जातिनाम (ख) द्वीन्द्रिय जातिनाम (ग) त्रीन्द्रिय जातिनाम (घ) चतुरिन्द्रिय जातिनाम (ङ) पञ्चेन्द्रिय जाति नाम।

(३) शरीर नाम—औदारिक आदि शरीर का निर्माण करने वाला कर्म। इसके पाच उपभेद है। (क) औदारिक शरीरनाम (ख) वैक्रिय शरीरनाम (ग) आहारक शरीरनाम (घ) तजस शरीर नाम (ङ) कामरण शरीरनाम।

तह नामपि हु कम्म अरोगरूवाइ कुणइ जीवस्स।
सोहणमसोहणाइ इट्ठाणिट्ठाइ लोयस्स॥

—स्थानाङ्ग २।४।१ ५ टीका

(ख) नवत व साहित्य सग्रह अवचूर्णि वृ यादिसमेत।
नवतत्त्व प्रकरणम् ७४

१५६ नाम कम्मं तु दुविह सुहमसुह च आहिय।

—उत्तरा ३३।१३

१५७ (क) समवायाङ्ग सम ४२

(ख) प्रज्ञापना २३।२।२९३

(ग) गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणब धनसङ्घातसस्थानसहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपराघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतय प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तस्थिरादेययशांसि सेतराणि तीर्थकृत्त्व च।

—तत्त्वार्थ सूत्र ८।१२

(४) शरीर अंगोपाङ्ग नाम—शरीर के अवयवो और प्रत्यवयवो का निमित्तभूत कर्म। इसके तीन उपभेद है—(क) औदारिक शरीर अगोपाङ्ग नाम। (ख) वक्रिय शरीर अगोपाङ्ग नाम (ग) आहारक शरीर अगोपाङ्ग नाम। तजस् और कामणशरीर के अवयव नही होते।

(५) शरीरबधन नाम—पूव मे ग्रहण किये हुए और वतमान मे ग्रहण किये जाने वाले शरीरपुद्गलो के परस्पर सम्बध का निमित्तभूत कर्म। इसके पाँच उपभेद है—(क) औदारिक शरीर बधन नाम (ख) वैक्रियशरीर बधननाम (ग) आहारक शरीर बधन नाम (घ) तजसशरीर बधन नाम (ङ) कामण शरीर बन्धन नाम।

शरीर बधन नाम कर्म के कमग्रन्थ मे विस्तार को विवक्षा से पन्द्रह भेद भी किये हैं —

(१) औदारिक—औदारिक बधन नाम।
(२) औदारिक—तजस बधन नाम।
(३) औदारिक—कामणबधननाम।
(४) वैक्रिय—वक्रियबधननाम।
(५) वक्रिय—तजसबधननाम।
(६) वैक्रिय—कामणबधननाम।
(७) आहारक—आहारकबधननाम।
(८) आहारक—तजसबधननाम।
(९) आहारक—कामणबधननाम।
(१) औदारिक—तजस कामण बन्धन नाम।
(११) वक्रिय-तजस कार्मण बधन नाम।
(१२) आहारक—तैजसकार्मण बधन नाम।
(१३) तैजस—तैजस बन्धन नाम।
(१४) तैजस—कार्मणबन्धननाम।
(१५) कार्मण—कार्मणबन्धन नाम।

औदारिक वक्रिय और आहारक—इन तीनो के पुद्गलो का परस्पर बध नही होता अतएव यहा उनके ब धन की गणना नही की गई हैं।

(६) शरीर सघातन नाम—शरीर के द्वारा पूवगृहीत और गृह्यमाण पुद्गलो की यथोचित व्यवस्था करने वाला कम। इसके भी पांच उपभेद ह (क) औदारिक शरीर सघातन नाम (ख) वक्रिय शरीर सघातन नाम (ग) आहारक शरीर सघातन नाम (घ) तजस शरीर सघातन नाम (ङ) कामग्ग शरीर सघातन नाम।

(७) सहनन नाम—जिसके उदय से अस्थिबन्ध की विशिष्ट रचना हो। इसक छ उपभद है—(क) वज्रऋषभनाराच सहनन नाम (ख) ऋषभनाराच सहनन नाम (ग) नाराच-सहनन नाम (घ) अधनाराच सहनन नाम (ङ) कीलिका सहनन नाम (च) सेवात सहनन नाम।

(८) सस्थान नाम—शरीर की विविध आकृतियो का जिसके उदय से निर्माण हो। इसके भी छ उपभेद है—(१) समचतुरस्र संस्थान (२) यग्रोध परिमण्डल सस्थान (३) सादिसस्थान नाम (४) वामन सस्थान नाम (५) कुब्ज सस्थान नाम (६) हुण्ड सस्थान नाम।

(९) वर्णनाम—इस कम के उदय से शरीर मे रग का निर्माण होता है। इसके भी पाच उपभेद है—(क) कृष्णवर्ण नाम (ख) नील वर्ण नाम (ग) लोहितवर्ण नाम (घ) हारिद्रवर्ण नाम (ङ) श्वेतवर्ण नाम।

(१) गन्ध नाम—इस कम के उदय से शरीर के गन्ध पर प्रभाव पडता है। इसके दो उपभेद है—(क) सुरभि गन्ध नाम (ख) दुरभि गन्ध नाम।

(११) रसनाम—इस कर्म के उदय से शरीर के रस पर प्रभाव पडता है। इसके पाँच उपभेद है—(क) तिक्त रस नाम (ख) कट रस नाम (ग) कषाय रस नाम (घ) आम्ल रस नाम (ङ) मधर रस नाम।

(१२) स्पश नाम—इस क केर्म उदय से शरीर के स्पर्श पर

प्रभाव पडता है। इसके आठ उपभेद हैं—(क) कर्कश स्पश नाम (ख) मृदु स्पश नाम (ग) गुरु स्पश नाम (घ) लघु स्पर्श नाम (ङ) स्निग्ध स्पश नाम (च) रुक्ष स्पश नाम (छ) शीत स्पश नाम (ज) उष्ण स्पश नाम।

(१३) अगुरुलघुनाम—जिसके उदय से शरीर अत्य न गुरु या अत्यन्त लघु परिणाम को न पाकर अगुरुलघु रूप मे परिणत होना है।

(१४) उपघात नाम—इस कर्म के उदय से जीव विकृत बने हुए अपने ही अवयवो से क्लेश पाता है। जसे प्रतिजिह्वा चोरदन्त रसौली आदि।

(१५) पराघात नाम—इस कम के उदय से जीव अपने दशन और वाणी से ही प्रतिपक्षी और प्रतिवादी को पराजित कर देता है।

(१६) आनुपूर्वी नाम—जन्मान्तर के लिए जाते हुए जीव को आकाश प्रदेश की श्र णी के अनुसार नियत स्थान तक गमन कराने वाला कम। इसके भी चार उपभेद है—(क) नरक आनुपूर्वीनाम (ख) तिर्यंच-आनुपूर्वी नाम (ग) मनुष्य आनुपूर्वी नाम (घ) देव आनुपूर्वी नाम।

(१७) उच्छ्वास नाम—इसके उदय से जीव श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता है।

(१८) आतप नाम—इस कम के उदय से अनुष्ण शरीर मे से उष्ण प्रकाश निकलता है।[१५९]

(१९) उद्योत नाम—इसके उदय से शरीर शीतप्रकाशमय होता हैं।[१६]

(२० विहायोगति नाम—इसके उदय से प्रशस्त और अप्रशस्त गति होती है। इसके भी दो उपभेद हैं—(क) प्रशस्त

१५९ प्रस्तुत कम का उदय सूर्य मण्डल के एकेन्द्रिय जीवो मे होता है। उनका शरीर शीत होता है पर प्रकाश उष्ण होता है।

१६ देव के उत्तर वक्रिय शरीर मे से व लब्धिधारी मुनि के वक्रिय शरीर से तथा चांद नक्षत्र तारागणो से निकलने वाला शीतप्रकाश।

विहायोगति नाम (ख) अप्रशस्त विहायोगति नाम। यहाँ गति का अर्थ चलना है।

(२१) त्रस नाम—जिस कम के उदय से गमन करने की शक्ति प्राप्त हो।

(२२) स्थावर नाम—जिस कम के उदय से इच्छापूर्वक गति न होकर स्थिरता प्राप्त होती है।

(२३) सूक्ष्म नाम—जिस कम के उदय से जीव को चम चक्षुओ से अगोचर सूक्ष्म शरीर प्राप्त हो।

(२४) बादर नाम—जिस कर्म के उदय से जीव को चमचक्षु गोचर स्थूल शरीर की उपलब्धि हो।

(२५) पर्याप्त नाम—जिस कम के उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करे।

(२६) अपर्याप्त नाम—जिस कम के उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण न कर सके।

(२७) साधारण शरीर नाम—जिस कम के उदय से अनन्त जीवो को एक ही साधारण शरीर प्राप्त हो।

(२८) प्रत्येक शरीर नाम—जिस कम के उदय से जीवो को भिन्न भिन्न शरीर की प्राप्ति हो।

(२९) स्थिर नाम—जिस कम के उदय से हड्डी दाँत आदि स्थिर अवयव प्राप्त हो।

(३) अस्थिर नाम—जिस कर्म के उदय से जिह्वा आदि अस्थिर अवयव प्रा त हो।

(३१) शुभ नाम—जिस काम के उदय होने से नाभि के ऊपर के अवयव प्रशस्त हो।

(३२) अशुभ नाम—जिस कम के उदय से नाभि के नीचे के अवयव अशुभ होते है।

(३३) सुभग नाम—जिस कम के उदय से किसी भी प्रकार का उपकार न करने पर भी और सम्बन्ध न होने पर भी जीव सब क मन को प्रिय लगे।

(३४) दुर्भग नाम—जिस कर्म के उदय से उपकार करने पर और सम्बन्ध होने पर भी अप्रिय लगे।

(३५) सुस्वर नाम—जिसके उदय से जीव का स्वर श्रोता के हृदय मे प्रीति उत्पन्न करे।

(३६) दु स्वर नाम—जिस कम के उदय से जीव का स्वर अप्रीतिकारी हो।

(३७) आदेय नाम—जिस कम के उदय से जीव का वचन बहुमान्य हो।

(३८) अनादेय नाम—जिस कम के उदय से युक्तिपूर्ण वचन भी अमान्य हो।

(३९) यश कीर्तिनाम—जिस कम के उदय से ससार मे यश और कीर्ति प्राप्त हो।

(४) अयश कीर्तिनाम—जिस कम के उदय से अपयश और अपकीर्ति प्राप्त हो।

(४१) निर्माण नाम—जिस कम के उदय से शरीर के अग प्रत्यंग व्यवस्थित हो।

(४२) तीथकर नाम—जिस कम के उदय से धमतीथ की स्थापना करने की शक्ति प्राप्त हो।

प्रज्ञापना[161] व गोम्मटसार[162] मे नाम कम के तिरानवे भेदो का कथन किया गया है और कमविपाक मे एक सौ तीन[163] भेदो का वर्णन है। अन्यत्र इकहत्तर प्रकृतियो का उल्लेख है जिनमे शुभ नाम कम की सतीस प्रकृतियां मानी है[164] और अशुभनाम

१६१ प्रज्ञापना २३।२।२९३

१६२ गोम्मटसार (कमकाण्ड) २२

१६३ कर्मविपाक प सुखलाल जी हिन्दी अनुवाद पृ ५ ।१ ५

१६४ सत्तत्तीस नामस्स पयईओ पुन्नमाहु (हु) ता य इमो।

—नवतत्त्वसाहित्य सग्रह नवतत्त्वप्रकरणम् ७ भाष्य ३७

कर्म की चौतीस[१६५] मानी है। भदो की यह विविध सख्याए सक्षेप विस्तार की दृष्टि से ही है। इनमे कोई तात्त्विक भद नही है।

नाम कम की अल्पतम स्थिति आठ मुहूत और उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटाकोटी सागरोपम की है।[१६६]

गोत्रकम

जिस कम के उदय से जीव मे पूज्यता अपू यता का भाव समुत्पन्न हो वह गोत्र कम है। दूसरे श दो मे कहा जाय तो जिस कम के प्रभाव से जीव उ चावच कहलाता है वह गोत्रकम है।[१६७]

आजाय उमास्वाति के श दो म—उ चगोत्रकम देश जाति कुल स्थान मान स कार ऐश्वय प्रभृतिविषयक उत्कष का कारण है और इससे विपरीत नीचगोत्र कम चाण्डाल नट याध पारिधि मत्स्यब धक दास आदि भावो का निवतक है।[१६८]

इस कम के मुख्य दो भद है (१) उ च गोत्र कम—जिस कम के उदयसे प्राणी लोकप्रतिष्ठित कुल आदि मे ज म ग्रहण करता है।

---

१६५ मोहछवोसा एसा एसा पुण होई नाम चउतीसा।

—नवतत्त्वसाहित्य सग्रह नवत व प्रकरण भाष्य ४६

१६६ उदहीसरिसनामाण बीसई कोडिकोडीओ।
नामगोत्ताण उक्कोसा अट्ठमुहुत्ता जहन्निया॥

—उत्तरा ३३।२३

(ख) नामगोत्रयोर्विशति।
नामगोत्रयोरष्टौ॥

—तत्त्वाथ सूत्र अ ८। १७–२

१६७ यद्वा कमणोऽपादानविवक्षा गूयते-शब्द्यते उच्चावचै शब्दैरात्मा यस्मात् कमण उदयात् गोत्र।

—प्रज्ञापना २३।१।२८८ टीका

१६८ उ चर्गोत्र देशजातिकुलस्थानमानसत्कारैश्वर्याद्य त्कषनिवतकम्।
विपरीत नीचैर्गोत्र चण्डालमुष्टिक व्याधमत्स्यबधदास्यादिनिर्वतकम्॥

तत्त्वाथ सूत्र ८।१३ भाष्य

(२) नीचगोत्रकर्म—जिस कर्म के उदय से प्राणी का जन्म अप्रतिष्ठित एव असस्कारी कुल मे होता है।[१६]

उच्च गोत्र कर्म के भी आठ उपभद है —(क) जाति उच्च गोत्र (ख) कुल उच्च गोत्र (ग) बल उच्चगोत्र (घ) रूप उच्चगोत्र (ङ) तप उच्चगोत्र (च) श्रुत उच्चगोत्र (छ) लाभ उच्चगोत्र (ज) (ज) ऐश्वय उच्चगोत्र। इनका अथ नाम से ही स्पष्ट है। ध्यान रखना चाहिए कि मातृपक्ष को जाति और पितृपक्ष को कुल कहा जाता है।

नीच गोत्र कम के भी आठ उपभद हैं[१७१]—(क) जातिनीचगोत्र मातृपक्षीय विशिष्टता के अभाव का कारण (ख) कुलनीच गोत्र पितृपक्षीय विशिष्टता के अभाव का कारण। (ग) बलनीच गोत्र—बल विहीनता का कारण। (घ) रूपनीचगोत्र—रूपविहीनता का कारण (ङ) तप नीचगोत्र—तपविहीनता का कारण (च) श्रुत नीचगोत्र—श्रुतविहीनता का कारण (छ) लाभनीचगोत्र—लाभविहीनता का कारण (ज) ऐश्वय नीचगोत्र—ऐश्वर्यविहीनता का कारण।

इस कम की तुलना कुम्हार से की गई है। कुम्हार अनेक प्रकार के घडो का निर्माण करता है। उनमे से कितने ही घडे ऐसे होते हैं जिन्हे लोग कलश बनाकर अक्षत चन्दन आदि से चर्चित करते है और कितने ही ऐसे होते है जो मदिरा रखने के काय मे आते है और इस कारण निम्न माने जाते है। उसी प्रकार जिस कर्म के कारण जीव का व्यक्तित्व श्लाघ्य एव अश्लाघ्य बनता है[१] वह गोत्र कम कहलाता है।

---

१६६ गोय कम्म तु दुविह उच्च नीय च आहिय।

—उत्तराध्ययन ३३।१४

१७ उच्च अट्ठविह होइ एव नीय पि आहिय।

—उत्तरा ३३।१४

१७१ प्रज्ञापना—२३।१ २९२ २३।२।२९३

१७२ (क) जह कुभारो भडाइ कुणइ पुज्जेयराइ लोयस्स।
इय गोय कुणइ जिय लोए पुज्जेयरानत्थ॥

—ठाणाङ्ग २।४।१ ५ टीका

गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटाकोटी सागरोपम की है।[173]

अन्तराय कर्म

जिस कर्म के उदय से देने लेने मे तथा एकबार या अनेक बार भोगने और सामर्थ्य प्रा त करन मे अवरोध उपस्थित हो वह अन्तराय कर्म है।

इस कर्म की तुलना राजा के भडारी से की गई है। राजा का भण्डारी राजा के द्वारा आदेश देने पर भी दान देने मे आनाकानी करता है विघ्न डालता है वसे ही यह कम दान लाभ भोग उपभोग और वीय मे बाधा उपस्थित करता है।[1]

अ तराय कर्म की पाच उत्तर प्रकृतिया है—

(१) दान अ तराय कम—इस कम के उदय से जीव दान नही द सकता।

(२) लाभ अ तराय कम—इस कर्म के उदय से उदार दाता की उपस्थिति मे भी दान का लाभ प्राप्त नही हो सकता अथवा पर्याप्त सामग्री के रहने पर भी जिसके कारण अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति न हो।

(ख) गोय दुहु चनीय कुलाल इव सुघडभु भलाईय।

—प्रथम कर्मग्रन्थ ५२

१७३ उत्तराध्यन ३३।२३

(ख) तत्त्वाथ सूत्र अ ८।१७–२

१७४ अस्ति जीवस्य वीर्याख्योऽस्त्येकस्तदादिवत्।
तदन्तरयतीहेदमन्तराय हि कम तत्॥

—पचाध्यायी २।१ ७

१७५ जीव चाथसाधन चान्तरा एति-पततीत्यन्तरायम्। इद चव
जह राया दाणाइ ण कुणइ भडारिए विकूलमि।
एव जेण जीवो कम्म त अन्तराय ति।

—ठाणांग—२।४।१ ५ टीका

(३) भोग-अन्तराय कर्म—जो वस्तु एक बार भोगी जाय वह भोग है। जैसे खाद्य पेय आदि। इस कर्म के उदय से भोग्य पदाथ सामने होने पर भी भोगे नही जा सकते। जसे पेट की खराबी के कारण सरस भोजन तयार होने पर भी खाया नही जा सकता।

(४) उपभोग अन्तराय कर्म—जो वस्तु बार बार भोगी जा सके वह उपभोग है। जस—भवन वस्त्र आभूषण आदि। इस कर्म के उदय से उपभोग्य पदाथ होने पर भी भोगे नही जा सकते।

(५) वीय अन्तराय कर्म—जिसके उदय से सामथ्य का प्रयोग नहीं किया जा सक और जिसके प्रभाव से जीव क उत्थान कर्म बल वीय और पुरुषाकार पराक्रम क्षीण होते है।

यह अन्तराय कर्म दो प्रकार का है —

(१) प्र युत्प नविनाशी अन्तराय कर्म—जिसके उदय से प्राप्त वस्तु का विनाश होता है।

(२) पिहित आगामिपथ अ तराय कम—भविष्य मे प्राप्त होने वाली वस्तु की प्राप्ति का अवरोधक।[१७६]

अ तराय कर्म की जघन्य स्थिति अ तमु हूत और उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटी सागरोपम की है।

जैसे तू बा स्वभावत जल की सतह पर तरता है उसी प्रकार जीव स्वभावत ऊध्वगतिशील है पर मृत्तिकालिप्त तू बा जसे जल मे नीचे जाता है वसे ही कर्मा से बद्ध आत्मा की अधोगति होती है। वह भी नीचे जाती है।

कम बन्ध

पूव मे यह बताया जा चुका है कि इस ससार मे ऐसा कोई स्थान नही जहाँ कमवगणा के पुद्गल न हो। प्राणी मानसिक वाचिक

---

१७६ अन्तराइए कम्मे दुविहे पं त पडुप्पन्नविणासिए चेव पिहितआगामिपह।

—स्थानाङ्ग २।४।१ ५

१७७ उत्तराध्ययन ३३।१६

१७८ ज्ञातासूत्र

और कायिक प्रवृत्ति करता है और कषाय के उत्ताप से उत्तप्त होता है अत वह कर्मयोग्य पुद्गलो को सब दिशाओ से ग्रहण करता है। आगमो मे स्पष्ट निर्देश है कि एकेन्द्रिय जीव व्याघात न होने पर छओ दिशाओ से कर्म ग्रहण करते है याघात होने पर कभी तीन कभी चार और कभी पाँच दिशाओ से ग्रहण करते है किन्तु शेष जीव नियम से सब दिशाओ से पुद्गल ग्रहण करते है। किन्तु क्षत्र के सम्बन्ध म यह मर्यादा है कि जिस क्षत्र म वह स्थित है उसी क्षत्र मे स्थित कर्म योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है। अन्यत्र स्थित पुद्गलो को नही।[1] यह भी विस्मरण नही होना चाहिये कि जितनी योगो को चचलता म तरतमता होगी उसी के अनुसार न्यूनाधिक रूप मे जीव कर्म पुद्गलो का ग्रहण करेगा। योगो की प्रवत्ति मन्द होगी तो परमाणुओ की सख्या भी कम होगी। आगमिक भाषा मे इसे ही प्रदेश बध कहत है। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो आत्मा के असख्यात प्रदेश होते है उन असख्य प्रदेशो मे से एक एक प्रदेश पर अनन्तानन्त कर्मप्रदेशो का बन्ध होना प्रदेश बन्ध है। अर्थात् जीव क प्रदेशो और कर्म पुद्गलो के प्रदेशो का परस्पर बद्ध होजाना प्रदेश बन्ध है।

---

१७६ सव्वजीवाण कम्म तु सगहे छद्दिसागय।
सव्वेसु वि पएसेसु सव्व सव्वेण बद्धग ॥
—उत्तराध्ययन ३३।१८
(ख) भगवती शतक १७ उद्द ४

१८ गेण्हति तज्जोग चिय रेणु पुरिसो जहा कयन्भगो।
एगक्खेत्तोगाढ जीवो सव्वप्पएसेहि ॥
—विशेषावश्यक भाष्य गा १६४१ प ११७ द्वि भा
(ख) एगपएसोगाढ सव्वपएसेहि कम्मुणो जोग।
बधइ जहुत्तहेउ साइयमणाइय वावि ॥
—पचसग्रह—२८४

१८१ प्रदेशा कमपुदगला जीवप्रदेशेष्वोतप्रोता तद्रूप कम प्रदेश कम।
—भगवती १।४।४ वृत्ति
(ख) प्रदेशो दलसचय।
(ग) नतत्त्वसाहित्यसग्रह अव चूर्यादिसमेत नवतत्त्वप्रकरण गा ७१ की वृत्ति

गणधर गौतम ने महावीर से पूछा—भगवन् ! क्या जीव और पुद्गल अन्योन्य—एक दूसरे से बद्ध एक दूसरे से स्पृष्ट एक दूसरे मे अवगाढ एक दूसरे मे स्नेह प्रतिबद्ध हैं और एक दूसरे मे एकमेक होकर रहते हैं ?

उत्तर मे महावीर ने कहा—हे गौतम हाँ रहते हैं।

हे भगवन् ! ऐसा किस हेतु से कहते हैं ?

हे गौतम ! जैसे एक ह्रद हो जल से पूर्ण जल से किनारे तक भरा हुआ जल से लबालब जल से ऊपर उठा हुआ और भरे हुए घडे की तरह स्थित। अब यदि कोई पुरुष उस ह्रद मे एक बडी सौ आस्रव द्वार वाली सौ छिद्र वाली नाव छोडे तो हे गौतम ! वह नाव उन आस्रव द्वारो—छिद्रो द्वारा भरती भरती जल से पूर्ण ऊपर तक भरी हुई बढते हुए जल से ढकी हुई होकर भरे घडे की तरह होगी या नही ?

हे भगवन् ! होगी।

हे गौतम ! उसी हेतु से मै कहता हूँ कि जीव और पुद्गल परस्पर बद्ध स्पृष्ट अवगाढ और स्नेह प्रतिबद्ध हैं और परस्पर एकमेक होकर रहते है।

यही आत्म प्रदेशो और कर्म पुद्गलो का सम्बन्ध प्रदेशबन्ध है।

योगो की प्रवृत्ति द्वारा ग्रहण किये गये कर्मपरमाणु ज्ञान को आवृत करना दर्शन को आच्छन्न करना सुख-दुःख का अनुभव कराना आदि विभिन्न प्रकृतियो के रूप मे परिणत होते हैं। आत्मा के साथ बद्ध होने से पूर्व कार्मण वर्गणा के जो पुद्गल एकरूप थे बद्ध होने के साथ ही उनमे नाना प्रकार के स्वभाव उत्पन्न हो जाते है। इसे आगम की भाषा मे प्रकृति बन्ध कहते हैं।[१८३]

(घ) नवतत्त्वसाहित्य संग्रह देवानन्दसूरिकृत सप्ततत्त्वप्रकरण अ ५

१८२ भगवती।१।६

१८३ प्रकृति स्वभाव प्रोक्त।

प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध ये दोनो योगो की प्रवृत्ति से होते हैं। केवल योगो की प्रवृत्ति से जो बन्ध होता है वह सूखी दीवार पर हवा के झौंके के साथ आने वाली रेती के समान है। ग्यारहवें बारहवें और तेरहवें गुण स्थान मे कषायाभाव के कारण कर्म का बन्धन इसी प्रकार का होता है। कषायरहित प्रवृत्ति से होने वाला कर्मबन्ध निर्बल अस्थायी और नाममात्र का होता है इससे ससार नही बढता।

योगो के साथ कषाय की जो प्रवृत्ति होती है उससे अमुक समय तक आत्मा से पृथक न होने की कालिक मर्यादा पुद्गलो मे निर्मित होती है। यह काल मर्यादा ही आगम की भाषा मे स्थिति बन्ध है। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो आत्मा के द्वारा ग्रहण की गई ज्ञानावरण आदि कर्म पुद्गलो की राशि कितने काल तक आत्म प्रदेशो मे रहेगी उसकी मर्यादा स्थितिबन्ध है।

जीव के द्वारा ग्रहण की हुई शुभाशुभ कर्मो की प्रकृतियो का तीव्र मन्द आदि विपाक अनुभागबन्ध है। कर्म के शुभ या अशुभ फल की तीव्रता या मन्दता रस है। उदय मे आने पर कर्म का अनुभव तीव्र या मन्द कैसा होगा यह प्रकृतिप्रभृति की तरह कर्मबन्ध के समय ही नियत हो जाता है। इसे अनुभागबन्ध कहते है।

जिन कर्मो का आत्मा ने बन्ध कर लिया है वे अवश्य ही उदय मे आते है और जब उदय मे आते है तब उनका फल भोगना पडता

---

१८४ जोगा पयडिपएस।

—पचम कर्मग्रन्थ गा ९६

(ख) ठाणाङ्ग २।४।९६ टीका

१८५ स्थिति कालावधारणम्।

१८६ अनुभाग तेषामेव कर्मप्रदेशाना सवेद्यमानताविषयो रस इत्यर्थ कर्मोऽनुभाग कर्म।

—भगवती १।४।४ वृत्ति

(ख) अनुभागो रसो ज्ञेय।

(ग) विपाकोऽनुभाव।

—तत्त्वार्थ ८।२२

है। किन्तु अनुक्रम निमित्त कारण न हो तो बहुत-से कर्म—प्रदेशो से ही उदय मे आकर—फल दिये बिना ही पृथक हो जाते है। जब तक फल देने का समय नही आता तब तक बद्ध कर्मो के फल की अनुभूति नही होती। कर्मो के उदय मे आने पर ही उनके फल का अनुभव होता है। बन्ध और उदय के बीच का काल अबाधा काल कहलाता है। बधे हुए कर्म यदि शुभ होते हैं तो उन कर्मो का विपाक सुखमय होता है। बधे हुए कर्म यदि अशुभ होते है तो उदय मे आने पर उन कर्मो का विपाक दु खमय होता है।

उदय मे आने पर कर्म अपनी मूलप्रकृति के अनुसार ही फल प्रदान करते है। ज्ञानावरणीय कर्म अपने अनुभाव—फल देने की शक्ति के अनुसार ज्ञान का आच्छादन करता है दर्शनावरणीय कर्म दर्शन को आवृत करता है। इसी प्रकार अन्य कर्म भी अपनी प्रकृति के अनुसार तीव्र या मन्द फल प्रदान करते हैं। उनकी मूल प्रकृति मे उलट फेर नही होता।

पर उत्तर प्रकृतियो के सम्बन्ध मे यह नियम पूर्णत लागू नही होता। एक कर्म की उत्तर प्रकृति उसी कर्म की अन्य उत्तर प्रकृति के रूप मे परिवर्तित हो सकती है। जैसे मतिज्ञानावरण कर्म श्रुतज्ञानावरण कर्म के रूप मे परिणत हो सकता है। फिर उसका फल भी श्रुतज्ञानावरण के रूप मे ही होगा। किन्तु उत्तर प्रकृतियो मे भी कितनी ही प्रकृतियाँ ऐसी है जो सजातीय होने पर भी परस्पर संक्रमण नही करती जैसे दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय चारित्र मोहनीय के रूप मे और चारित्र मोहनीय दर्शन मोहनीय के रूप मे सक्रमण नही करता। इसी प्रकार सम्यक्त्व वेदनीय और मिथ्यात्व वेदनीय उत्तर प्रकृतियो का भी सक्रमण नही होता। आयुष्य की उत्तर प्रकृतियों का भी परस्पर सक्रमण नही होता। जैसे नारक आयुष्य तिर्यंच आयुष्य के रूप मे या अन्य आयुष्य के रूप मे नही बदल सकता। इसी प्रकार अन्य आयुष्य भी।

---

१८७ उत्तरप्रकृतिषु सर्वासु मूलप्रकृत्यभिन्नासु न तु मूलप्रकृतिषु सक्रमो

प्रकृति सक्रमण की तरह बधकालीन रस मे भी परिवतन हो सकता है। मन्द रस वाला कर्म बाद मे तीव्र रस वाले कर्म के रूप मे बदल सकता है और तीव्र रस मन्द रस के रूप मे हो सकता है।

गणधर गौतम ने महावीर से पछा—भगवन्! अन्य यूथिक इस प्रकार कहते है कि सब जीव एवभूत वेन्ना (जैसा कर्म बाँधा है वसे ही) भोगते हैं—यह किस प्रकार है? महावीर ने कहा—गौतम! अन्य यूथिक जो इस प्रकार कहते है वह मिथ्या है। मैं इस प्रकार कहता हूँ—कि कई जीव एव भूत वेदना भोगते हैं और कई अन् एवभूत वेदना भी भोगते हैं। जो जीव किये हुए कर्मों के अनुसार ही वेदना भोगते हैं वे एवभूत वेदना भोगते है और जो जीव किए हुए कर्मों स अन्यथा भी वेदना भोगते है वे अन् एवभूत वेदना भोगते है।

स्थानाङ्ग मे चतुभङ्गी है—(१) एक कर्म शुभ है और उसका विपाक भी शुभ है (२) एक कर्म शुभ है कि तु विपाक अशुभ है (३) एक कर्म अशभ है पर उसका विपाक शभ है (४) एक कर्म अशभ है और उसका विपाक भी अशभ है।

विद्यते 'उत्तरप्रकृतिषु च दशनचारित्रमोहनीययो सम्यग्मिथ्यात्ववेदनीयस्यायुष्कस्य च

—तत्त्वाथ सूत्र ८।२२ भाष्य

(ख) अनुभवो द्विधा प्रवतते स्वमुखेन परमुखेन च। सर्वासा मूलप्रकृतिना स्वमुखेनवानुभव। उत्तरप्रकृतीना तु यजातीयाना परमुखेनापि भवति। आयुदशनचारित्रमोहवर्जानाम्। न हि नरकायुमुखेन तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्वा विपच्यते। नापि दशनमोहश्चारित्रमोहमुखेन चारित्रमोहो वा दशनमोहमुखेन।

—तत्त्वार्थ ८।२२ सर्वार्थ सिद्धि

(ग) तत्त्वाथ सूत्र प सुखलाल जी हिन्दी द्वि स पृ २६३
मोत्तूण आउय खलु दसणमोह चरित्तमोह च।
सेसाण पयडीण उत्तरविहिसकमो भज्जो।

—विशेषावश्यक भाष्य-गा १६३८

१८८ भगवती ५।५

१ ६ स्थानाङ्ग ४ ४।३१२

जिज्ञासा हो सकती है कि इसका मूल कारण क्या है ? जैन कर्म साहित्य समाधान करता है कि कर्म की विभिन्न अवस्थाएं हैं। मुख्य रूप से उन्हें ग्यारह भेदों में विभक्त कर सकते हैं — (१) बन्ध (२) सत्ता (३) उद्वर्तन उत्कर्ष (४) अपवर्तन अपकर्ष (५) संक्रमण (६) उदय (७) उदीरणा (८) उपशमन (९) निधत्ति (१०) निकाचित और (११) अबाधा-काल।

(१) बन्ध — आत्मा के साथ कर्म परमाणुओं का सम्बन्ध होना क्षीर-नीरवत् एकमेक हो जाना बन्ध है।[१६१] बन्ध के चार प्रकार हैं। इनका वर्णन पूर्व किया जा चुका है।

स्थानाङ्ग की तरह बौद्ध साहित्य में उल्लेख है —

(१) कितने ही कर्म ऐसे होते हैं जो कृष्ण होते हैं और कृष्ण विपाकी होते हैं।

(२) कितने ही कर्म ऐसे होते हैं जो शुक्ल होते हैं और शुक्ल विपाकी होते हैं।

(३) कितने ही कर्म कृष्ण—शुक्ल मिश्र होते हैं और वैसे ही विपाक वाले होते हैं।

(४) कितने ही कर्म अकृष्ण शुक्ल होते हैं और अकृष्ण-शुक्ल विपाकी होते हैं।

—अंगुत्तर निकाय ४।२३२–२३३

१६० द्रव्य संग्रह टीका गा० ३३

(ख) आत्म मीमांसा—पं० दलसुख मालवणिया पृ० १२८

(ग) जैन दर्शन

(घ) श्री अमर भारती वर्ष १

१६१ आत्मकर्मणोरन्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशात्मको बन्धः।

—तत्त्वार्थ सूत्र १।४ सर्वार्थ सिद्धि

(ख) बन्धश्च—जीवकर्मणोः संश्लेषः

—उत्तराध्ययन २८।१४ नेमिचन्द्रीय टीका

(ग) बंधनं बन्धः सकषायत्वात् जीवः कर्मणो-योग्यान् पुद्गलान् आदत्ते यः स बन्ध इति भावः।

—स्थानाङ्ग १।४।९ टीका

(२) **सत्ता**—आबद्ध कर्म अपना फल प्रदान कर जब तक आत्मा स पृथक नही हो जाते तब तक वे आत्मा से ही सम्बद्ध रहते हैं इस जैन दार्शनिकों ने सत्ता कहा है। दूसरे श दो मे कहा जाय तो ब ध होने और फलोदय होने के बीच कर्म आत्मा मे विद्यमान रहते है वह सत्ता है। उस समय कर्मो का अस्तित्व रहता है पर वे फल प्रदान नही करते।

(३) **उद्वतन उत्कष**—आत्मा के साथ आबद्ध कर्म की स्थिति और अनुभाग ब ध तत्कालीन परिणामो मे प्रवहमान कषाय की तीव्र एव म दधारा के अनुरूप होता है। उसके पश्चात् की स्थिति विशेष अथवा भाव विशेष के कारण उस स्थिति एव रस मे वृद्धि होना उद्वतन उत्कर्ष है।

(४) **अपवतन अपकष**—पूर्व बद्ध कर्म की स्थिति एव अनुभाग को काला तर मे नूतन कर्म ब ध करते समय यून कर देना अपवर्तन—अपकर्ष है। इस प्रकार उद्वतन-उत्कष से विपरीत अपवतन अपकष है।

उद्वर्तन और अपवतन की प्रस्तुत विचारधारा यह प्रतिपादित करती है कि आबद्ध कर्म की स्थिति और इसका अनुभाग एका तत

(घ) सकषायतया जीव कमयो यास्तु पुद्गलान्।
यदादत्त स ब ध या जीवास्वात यकारणम्॥
—नवतत्त्वसाहित्यसग्रह सप्ततत्त्वप्रकरण गा १३३

(ङ) ब झदि कम्म जेण दु चेदणभावेण भावब धो सो
कम्मादपदेसाण अण्णोण्णपवेसण इदरो।
—द्रव्यसग्रह—२।३२ नेमिच द्र सि चक्रवर्ती

(च) द्रव्यतो ब धो निगडादिभिर्भावत कम्मणा।
—ठाणाङ्ग १।४।६ टीका

(छ) ननु ब धो जीवकर्म्मणो सयो ोऽभिप्रेत

(ज) मिथ्यात्वादिभिहतुभि कमयोग्यवगणापुद्गलरात्मन क्षीरनीर वह्न्य य पिण्डवद्दान्योन्यानुगमाभेदात्मक सम्ब धो बध।
—नवतत्त्वसाहित्यसग्रह वृत्त्यादिसमेत नवतत्त्वप्रकरणम् गाथा ७१ की प्राकृत अवचूर्णि

नियत नही है उसमे अध्यवसायो की प्रबलता से परिवतन भी हो सकता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि प्राणी अशुभ कम का बध करके शुभ काय मे प्रवृत्त हो जाता है। उसका असर पूव बद्ध अशभ कर्मों पर पडता है जिससे उस लम्बी कालमर्यादा और बिपाक शक्ति मे न्यूनता हो जाती है। इसी प्रकार पूर्व मे श्र ष्ठ काय करके पश्चात् निकृष्ठ काय करने से पूर्वबद्ध पुण्य कर्म की स्थिति एव अनुभाग मे मन्दता आ जाती है। साराश यह है कि संसार को घटाने-बढाने का आधार पूवकृत कर्म की अपेक्षा वतमान अध्यवसायो पर विशेष आधत है।

(५) सक्रमण—एक प्रकार के कम परमाणुओ की स्थिति आदि का दूसरे प्रकार के कर्म परमाणुओ की स्थिति आदि के रूप मे परिवर्तित हो जाने की प्रक्रिया को संक्रमण कहते हैं। इस प्रकार के परिवतन के लिए कुछ निश्चित मर्यादाएँ हैं जिनका उल्लेख पूव किया जा चुका है। सक्रमण के चार प्रकार हैं—(१) प्रकृति-सक्रमण (२) स्थिति-सक्रमण (३) अनुभाव-सक्रमण (४) प्रदेश सक्रमण।

(६) उदय—कम का फलदान उदय है। यदि कम अपना फल देकर निर्जीण हो जाय तो फलोदय है और फल क दिये बिना ही नष्ट हो जाय तो प्रदेशोदय है।

(७) उदीरणा—नियत समय से पूव कर्म का उदय मे आना उदीरणा है। जैसे समय के पूर्व ही प्रयत्न से आम आदि फल पकाये जाते हैं वसे ही साधना से आबद्ध कम का नियत समय से पूव भोग कर क्षय किया जा सकता है। सामान्यत यह नियम है कि जिस कर्म का उदय होता है उसी के सजातीय कम की उदीरणा होती है।

(८) उपशमन—कर्मों के विद्यमान रहते हुए भी उदय मे आने के लिए उन्हे अक्षम बना देना उपशम है। अर्थात् कर्म की वह अवस्था जिसमे उदय अथवा उदीरणा सभव नही किन्तु उद्वर्तन अपवतन और सक्रमण की सभावना हो वह उपशमन है। जैसे अगारे का राख से इस प्रकार आच्छादित कर देना जिससे वह अपना कार्य न कर

१६२ स्थानाङ्ग ४।।२१६

सके। वसे ही उपशमन क्रिया से कम को इस प्रकार दबा देना जिससे वह अपना फल नही दे सके। कि‍तु जैसे आवरण के हटते ही अगारे जलाने लगते हैं वसे ही उपशम भाव के दूर होते ही उपशान्त कम उदय मे आकर अपना फल देना प्रारम्भ कर देते हैं।

(९) **निधत्ति**—जिसमे कर्मों का उदय और सक्रमण न हो सके कि‍तु उद्वतन अपवतन की सभावना हो वह निधत्ति है। यह भी चार प्रकार[१९४] का है। (१) प्रकृति निधत्त (२) स्थिति निधत्त (३) अनुभाव निधत्त (४) प्रदेश निधत्त।

(१) **निकाचित**—जिसमे उद्वतन अपवर्तन सक्रमण एव उदीरणा इन चारो अवस्थाओ का अभाव हो वह निकाचित है। अर्थात् आत्मा ने जिस रूप मे कम बाधा है प्राय उसी रूप मे भोगे बिना उसकी निजरा नही होती। वह भी प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश रूप मे चार प्रकार का है।

(११) **अबाधाकाल**—कम बधने के पश्चात् अमुक समय तक किसी प्रकार फल न दने की अवस्था का नाम अबाध अवस्था है। अबाधा काल को जानने का प्रकार यह है कि जिस कर्म की स्थिति जितने सागरोपम की है उतने ही सौ वष का उसका अबाधा काल होता है। जसे ज्ञानावरणीय की स्थिति तीन कोटाकोटि सागरोपम की है तो अबाधाकाल तीस सौ (तीन हजार) वष का है। भगवती मे अष्टकम प्रकृतियो का अबाधा काल बताया है[१९६] और प्रज्ञापना मे अष्टकम प्रकृतियो की उत्तर प्रकृतियो का भी अबाधाकाल उल्लिखित है विशेष जिज्ञासुओ को मूल ग्रन्थ देखने चाहिए।

जन कम साहित्य मे इन कर्मों की अवस्थाओ एव प्रक्रियाओ का जसा विश्लेषण है वसा अन्य दाशनिको के साहित्य मे दृग्गोचर नही

---

१९३ कम प्रकृति गा २

१९४ स्थानाग ४।२९६

१९५ स्थानाग ४।२९६

१९६ भगवती २।३

१९७ प्रज्ञापना २३।२।२१–२९

होता। हाँ योग-दर्शन मे नियतविपाकी अनियतविपाकी और आवापगमन के रूप मे कम की त्रिविध दशा का उल्लेख किया है। नियतविपाकी कर्म का अर्थ है—जो नियत समय पर अपना फल प्रदान कर नष्ट हो जाता है। अनियतविपाकी कर्म का अर्थ है—जो कर्म बिना फल दिये ही आत्मा से पृथक हो जाते हैं। और आवापगमन कर्म का अर्थ है—एक कम का दूसरे मे मिल जाना।[९८] योगदशन की इन त्रिविध अवस्थाओ की तुलना क्रमश निकाचित प्रदेशोदय और सक्रमण के साथ की जा सकती है।

कम बधन से मक्ति का उपाय

भारतीय कर्म साहित्य मे जसे कम बध और उनके कारणो का विस्तार से निरूपण है उसी प्रकार उन कर्मों से मुक्त होने का साधन भी प्रतिपादित किया गया है। आत्मा नित नये कर्मो का बधन करता है पुराने कर्मों को भोग कर नष्ट करता है। ऐसा कोई समय नही है जिस समय वह कम नही बाँधता हो। तब प्रश्न हो सकता है कि वह कर्मों से मुक्त कसे होगा? उत्तर है—तप और साधना मे। जसे खान मे सोना और मिट्टी दोनो एकमेक होते है किन्तु ताप आदि के द्वारा जसे उन्हे अलग अलग कर दिया जाता है वसे ही आत्मा और कर्मो को भी सम्यग्दर्शन सम्यगज्ञान और सम्यकचारित्र से पृथक किया जाता है। जनदशन ने एकान्त रूप से न्याय वशेषिक साख्य वेदान्त महायान (बौद्ध) की तरह ज्ञान को प्रमुखता नही दी है और न एकान्त रूप से मीमासक दशन की तरह क्रिया-काण्ड पर ही बल दिया है। किन्तु ज्ञान और क्रिया इन दोनो के समन्वय को ही मोक्ष मार्ग माना है। चारित्रयुक्त अल्पज्ञान भी मोक्ष का हेतु है और विराट ज्ञान भी यदि चारित्र रहित है तो मोक्ष का कारण नही

---

१९८ योगदर्शन व्यास भाष्य २।१३

१९९ सुयनाणम्मि वि जीवो वट्टन्तो सो न पाउणइ मोक्ख।
जो तव-सजममइए जोगे न चएइ वोढु जे॥
—आवश्यक नियुक्ति गा ९४

है।[२००] आचार्य भद्रबाहु के शब्दो मे चारित्रहीन श्र तवेत्ता चन्दन का भार ढोने वाले गधे के समान है।[२] साराश यह है कि सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र मोक्ष का हेतु है। जहाँ ये दोनो सम्यक होते है वहाँ सम्यग दशन अवश्य होता है अत आचार्यो ने तीनो को मोक्ष का माग कहा है आगमो मे ज्ञान दशन चारित्र और तप को मोक्ष माग रूप मे स्वीकार किया है। किन्तु यह शाब्दिक अ तर है वास्तविक नही। कही पर दशन को ज्ञान के अन्तर्गत गिनकर ज्ञान और क्रिया को मोक्ष का कारण बताया है और कही पर तप को चारित्र मे गर्भित कर ज्ञान दशन और चारित्र को मोक्षमाग कहा है।

बद्ध कर्मो से मुक्त होने के लिए सव प्रथम साधक सवर की साधना

---

२ अप्पपि सुयमहीय पगासय होइ चरणजुत्तस्स।
एक्कोऽवि जह पईवो सचक्खुयस्स पयासेइ।

—आवश्यक नियु क्ति गा ९९

२ १ जहा खरो चन्दनभारवाही
भारस्सभागी न हु चदणस्स।
एव खु नाणी चरणेण हीणो
नाणस्स भागी न हु सुग्गईए।

—आवश्यक नियु क्ति गा १

२ २ सम्यगदशनज्ञानचारित्राण मोक्षमार्ग।

—तत्त्वार्थ सूत्र १।१

(ख) नाण पयासय सोहओ तवो सजमो य गुत्तिकरो।
तिण्हपि समाओगे मोक्खो जिणसासणे भणिओ।

आवश्यक नियु क्ति गा १ ३

२ ३ नाण च दसण चेव चरित्त च तवो तहा।
एस मग्गु त्ति पन्नत्तो जिणेहि वरदसिहि॥
नाण च दसण चेव चरित्त च तवो तहा।
एयमग्गमणुप्पत्ता जीवा गच्छन्ति सोग्गइ॥

—उत्तराध्ययन अ २८ गा २–३

से नवीन कर्मों के आगमन को रोकता है।[२] आचार्य श्री हेमचन्द्र के शब्दो मे— जिस तरह चौराहे पर स्थित बहु-द्वारवाले गृह मे द्वार बंद न न होने पर निश्चय ही रज प्रविष्ट होती है और चिकनाई के योग से वही चिपक जाती है और यदि द्वार बन्द हो तो रज प्रविष्ट नही होती और न चिपकती है वैसे ही योगादि आस्रवो को सवत अवरुद्ध कर देने पर सवृत जीव के प्रदेशो मे कर्मद्रव्य का प्रवेश नही होता।

जिस तरह तालाब मे सवद्वारो से जल का प्रवेश होता है पर द्वारो को प्रतिरुद्ध कर देने पर थोडा भी जल प्रविष्ट नही होता वैसे ही योगादि आस्रवो को सवत अवरुद्ध कर देने पर सवत जीव के प्रदेशो मे कर्मद्रव्य का प्रवेश नही होता है।

जिस तरह नौका मे छिद्रो से जल प्रवेश पाता है और छिद्रो को रोक दने पर थोडा भी जल प्रविष्ट नही होता वैसे ही योगादि आस्रवो को सवत अवरुद्ध कर देने पर सवृत जीव के प्रदेशो मे कर्म द्रव्य का प्रवेश नही होता।[२]

— —

२ ४ शुभाशुभकर्मागमद्वाररूप आस्रव। आस्रवनिरोधलक्षण सवर।

—तत्त्वार्थ १।४ सर्वार्थ सिद्धि

२ ५ यथा चतुष्पथस्थस्य बहुद्वारस्य वेश्मन।
अनावृतेषु द्वारेषु रज प्रविशति ध्रुवम्॥
प्रविष्ट स्नेहयोगाच्च तन्मयत्वेन बध्यते।
न विशेन्न च बध्येत द्वारेषु स्थगितेषु च॥
यथा वा सरसि क्वापि सवद्वारैर्विशेज्जलम्।
तेषु तु प्रतिरुद्धेषु प्रविशेन्न मनागपि॥
यथा वा यानपात्रस्य मध्ये रन्ध्रैर्विशेज्जलम्।
कृते रन्ध्रपिधाने तु न स्तोकमपि तद्विशेत्॥
योगादिष्वास्रवद्वारेष्वेव रुद्धेषु सवत।
कर्मद्रव्यप्रवेशो न जीवे सवरशालिनि॥

—नवतत्त्व साहित्य सग्रह श्री हेमचन्द्र सूरिकृत
सप्ततत्त्व प्रकरणम् ११८–१२२

इस प्रकार साधक सवर से आग तुक कर्मों को रोकने के साथ साथ निर्जरा की साधना से पर्वसंचित कर्मों को क्षय करता है।[२०६] कर्मों का एक देश से आत्मा से छूटना निर्जरा है और जब सम्पूर्ण कर्मों को सवतोभावेन नष्ट कर देता हैं तब आत्मा सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो जाता है। जब आत्मा एक बार पूर्ण रूप से कर्मों से विमुक्त हो जाता है तो फिर वह कभी कम बद्ध नही होता। क्योकि उस अवस्था मे कम ब ध के कारणो का सवथा अभाव हो जाता है। जैसे बीज के जल जाने पर उससे पुन अ कुर की उत्पत्ति नही होती वसे ही कम रूपी बीज के सम्पर्ण जल जाने पर ससार रूपी अ कुर की उत्पत्ति नही होती। इससे स्पष्ट है कि जो आत्मा कर्मों से बधा हो वह एक दिन उनसे मुक्त भी हो सकता है।

अपूव देन

कमवाद का सिद्धान्त भारतीय दशन की और विशेष रूप से जन शन की विश्व को एक अपव और अलौकिक देन है। इस सिद्धान्त ने मानव को अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति मे दीपक की लौ की तरह नही अपितु ध्र व की तरह अटल रहने की प्रेरणा दी है। जन-जन

---

२ ६ नाणेण जाणई भावे दसणेण य सद्दहे।
चरित्तण निगिण्हाइ तवेण परिसु झई॥

—उत्तरा २।३५

२ ७ एकदेशकर्मसक्षयलक्षणा निर्जरा।

—तत्त्वाथ १।४ सर्वाथ सिद्धि

२ कृत्स्नकमक्षयो मोक्ष।

—तत्त्वार्थ १।३

(ख) मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव च।
अज्ञान हृदय ग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृत॥

—शिवगीता १३–३२

६ द ध बाजे यथा य त प्रादुर्भवति नाङ कुर।
कमबीजे तथा द ध न रोहति भवाकुर॥

—तत्त्वाथ भाष्यगत अन्तिम कारिका द

मन मे से श्वानवृत्ति को हटाकर सिंह वृत्ति जागृत की है। कर्मवाद की महत्ता के सम्बन्ध मे एतदर्थ ही डाक्टर मेक्समूलर ने कहा है—

यह तो निश्चित है कि कममत का असर मनुष्य जीवन पर बेहद हुआ है। यदि किसी मनुष्य को यह मालूम पडे कि वर्तमान अपराध के सिवाय भी मुझको जो कुछ भोगना पडता है वह मेरे पूर्व जन्म के कर्म का ही फल है तो वह पुराने कज को चुकाने वाले मनुष्य की तरह शान्त भाव से उस कष्ट को सहन कर लेगा और वह मनुष्य इतना भी जानता हो कि सहनशीलता से पुराना कज चुकाया जा सकता है तथा उसी से भविष्य के लिए नीति की समृद्धि इकटठी की जा सकती है तो उसको भलाई के रास्ते पर चलने की प्रेरणा आप ही आप होगी। अच्छा या बुरा कोई भी कम नष्ट नही होता यह नीतिशास्त्र का मत और पदाथ शास्त्र का बल-सरक्षण सम्बन्धी मत समान ही है। दोनो मतो का आशय इतना ही है कि किसी का नाश नही होता। किसी भी नीतिशिक्षा के अस्तित्व के सम्बन्ध मे कितनी ही शका क्यो न हो पर यह निर्विवाद सिद्ध है कि कममत सबसे अधिक जगह माना गया है। उससे लाखो मनुष्यो के कष्ट कम हुए हैं और उसी मत से मनुष्यो को वनमान सकट झेलने की शक्ति पदा करने तथा भविष्य जीवन को सुधारने मे उत्तेजन मिला है। [21]

जो सत्य के अन्वेषी सुधी और धैर्यवान् पाठक है उन्हे यह सत्य तथ्य अनुभव हुए बिना नही रहेगा कि भारतीय दशन का कमवाद सिद्धान्त अद्भुत अनन्य और अपराजेय है। इस वज्ञानिक युग मे भी यह एक चिरन्तन ज्योति के रूप मे मानव मात्र के पथ को आलोकित कर सकता है।



---

२१ दशन और चिन्तन द्वि खण्ड पृ २१६।

चार | स्याद्वाद

स्याद्वाद क्या है ?

दार्शनिक जगत् को जैन दर्शन ने जो मौलिक एवं असाधारण देन दी है उसमें अनेकान्तवाद का सिद्धान्त सर्वोपरि है। अनेकान्तवाद जैन परम्परा की एक विलक्षण सूझ है जो वास्तविक सत्य का साक्षात्कार करने में सहायक है। अनेकान्त का प्रतिपादक वाद स्याद्वाद कहलाता है।

स्याद्वाद पद में दो शब्द हैं—स्यात् और वाद। स्यात् शब्द तिङन्त पद जैसा प्रतीत होता है किन्तु वास्तव में यह एक अव्यय है जो कथंचित् किसी अपेक्षा से अमुक दृष्टि से इस अर्थ का द्योतक है।[1] वाद शब्द का अर्थ सिद्धान्त मत या प्रतिपादन करना होता है।

इस प्रकार स्याद्वाद पद का अर्थ हुआ—सापेक्ष सिद्धान्त अपेक्षावाद कथंचित्वाद या वह सिद्धान्त जो विविध दृष्टि बिन्दुओं से वस्तुतत्त्व का निरीक्षण-परीक्षण करता है।

---

१ स्यादिति शब्दो अनेकान्तद्योती प्रतिपत्तव्यो न पुनर्विधि विचार प्रश्नादिद्योती तथा विवक्षापायात्।

—अष्टसहस्री पृ २८६

सर्वथात्वनिषेधकोऽनेकान्तताद्योतकः कथञ्चिदर्थे स्याच्छब्दो निपातः।

—पञ्चास्तिकाय टीका श्री अमृतचन्द्र

जैनाचार्यों ने स्याद्वाद को ही अपने चिन्तन का आधार बनाया है। चिन्तन की यह पद्धति हमे एकागी विचार और निश्चय से बचाकर सर्वाङ्गीण विचार के लिए प्रेरित करती है और इसका परिणाम यह होता है कि हम सत्य के प्रत्येक पहलू से परिचित हो जाते हैं। वस्तुत समग्र सत्य को समझने के लिए स्याद्वाद दृष्टि ही एकमात्र साधन है। स्याद्वाद पद्धति को अपनाए बिना विराट सत्य का साक्षात्कार होना सम्भव नही। जो विचारक वस्तु के अनेक धर्मो को अपनी दृष्टि से ओझल करके किसी एक ही धर्म को पकड कर अटक जाता है वह सत्य को नही पा सकता।[2] इसीलिए आचाय सम-तभद्र ने कहा है—स्यात् शब्द सत्य का प्रतीक है। और इसी कारण जनाचार्यो का यह कथन है कि जहाँ कही स्यात् श * का प्रयोग न दृष्टिगोचर हो वहाँ भी उसे अनुस्यूत ही समझ लेना चाहिए।

स्याद्वाद दृष्टि विविध अपेक्षाओ से एक ही वस्तु मे नित्यता अनित्यता सदृशता विसदृशता वाच्यता अवाच्यता सत्ता असत्ता आदि परस्पर विरुद्ध से प्रतीत होने वाले धर्मो का अविरोध प्रतिपादन करके उनका सु-दर एव बुद्धिसगत सम-वय प्रस्तुत करती है।

साधारणतया स्याद्वाद को ही अनेका-तवाद कह दिया जाता है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि दोनो म प्रतिपाद्य प्रतिपादक सम्ब-ध है। अनेकान्तात्मक वस्तु को भाषा द्वारा

---

२ एयन्ते निरवेक्खे नो सि झइ विविहयावग दव्व।

३ स्यात्कार सत्यलाञ्छन ।

४ सोऽप्रयुक्तोऽपि सर्वत्र स्यात्कारोऽर्थात्प्रतीयते।

—लघीयस्त्रय श्लो २२

५ स्यान्नाशि नित्य सदृश विरूप वाच्य न वाच्य सदसत्तदेव।

—अन्ययोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका श्लोक २५

आचार्य हेमचन्द्र

प्रतिपादित करने वाला सिद्धान्त स्याद्वाद कहलाता है।[6] इस प्रकार स्याद्वाद श्रुत है और अनेकान्त वस्तुगत तत्त्व है।

आचाय समन्तभद्र ने स्पष्ट किया है—स्याद्वाद और केवलज्ञान दोनों ही वस्तुतत्त्व के प्रकाशक हैं। भेद इतना ही है कि केवलज्ञान वस्तु का साक्षात् ज्ञान कराता है जब कि स्याद्वाद श्रुत होने से असाक्षात् ज्ञान कराता है।

समन्वय का श्रेष्ठ मार्ग

जगत् की विभिन्न दार्शनिक परम्पराओं में जो परस्पर विरुद्ध विचार प्रस्तुत किए हैं उनका अध्ययन करने पर जिज्ञासु को घोर निराशा होना स्वाभाविक है। उन विचारों में एक पूर्व की ओर जाता है तो दूसरा पश्चिम की ओर। ऐसी स्थिति में जिज्ञासु अपनी आस्था स्थिर करे तो किस पर? किसे वास्तविक और किसे अवास्तविक स्वीकार करे? आखिर ये दार्शनिक किसी भी विषय में एकमत नहीं होते। आत्मा जैसे मूलतत्त्व के सम्बन्ध में भी इनके दृष्टिकोणों में आकाश पाताल का अन्तर है। चार्वाकदर्शन आत्मतत्त्व की सत्ता को ही अस्वीकार करता है। जो दर्शन उसे स्वीकार करते हैं उनमें भी एकमत नहीं। सांख्यदर्शन आत्मा को कूटस्थनित्य एवं अविकारी कहता है। उसके मन्तव्य के अनुसार आत्मा अकर्त्ता है निर्गुण है। नैयायिक वैशेषिकों ने परिवर्तन तो माना पर उसे गुणों तक ही सीमित रखा। मीमांसक अवस्थाओं में परिवर्तन मान कर भी द्रव्य को नित्य मानते हैं। बुद्ध के समक्ष जब आत्मा विषयक प्रश्न उपस्थित किया गया तो उन्होंने उसे अव्याकृत प्रश्न कह कर मौन धारण कर लिया।

---

६ अनेकान्तात्मकार्थकथनं स्याद्वादः।

—लघीयस्त्रय ६२ अकलंक

७ स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्॥

—आप्तमीमांसा १०५

अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपं नित्यम्।

६ मज्झिमनिकाय चूल मालुक्य सुत्त ६३।

इसी प्रकार जब आत्मा के परिमाण के विषय मे विचार किया गया तो किसी ने उसे आकाश की भाँति सवव्यापी माना किसी ने अणु परिमाण किसी ने अ गुष्ठ परिमाण तो किसी ने श्यामाक के बराबर कहा।

एक कहता है—चेतना भूतो से उत्पन्न होती या व्यक्त होती है। दूसरे का कथन है कि चेतना आ मा का धर्म नही जड प्रकृति से प्रादुभू त तत्त्व है। तीसरा दशन विधान करता है कि चेतना आत्मा का गुण तो नही है किन्तु समवाय सबध से आत्मा मे रहती है।

इस प्रकार जब आत्मा जसे तत्त्व के विषय मे भी ये विचारक किसी एक तथ्य पर नही टिक पात तो अन्य पदार्थों के विषय मे क्या कहा जाय।

दशनो और दार्शनिको की बात जाने दीजिए और अपनी ही विचारधाराओ को जरा गहराई से देखिए। जब हमारा दृष्टिकोण अभेदप्रधान हाता है तो प्रत्येक प्राणी मे चेतना की दृष्टि से समानता प्रतीत होती है और चेतना से आगे बढकर जब सत्ता को आधार बताते है तो चतन और अचतन सभी विद्यमान पदाथ सत्स्वरूप मे एकाकार भासित होने लगते हैं। इसके विपरीत जब हमारे दृष्टि कोण मे भेद की प्रधानता होती है तो अधिक से अधिक सदृश प्रतीत हो रहे दो पदार्थों मे भी भिन्नता प्रतीत हुए बिना नही रहती। इस प्रकार हम स्वयं अपने ही विरोधी विचारो मे खो जात है और सोचने लगत है—सत्य अज्ञ य हैं उसका पता लगना असम्भव है। इस निराशापर्ण भावना ने ही अज्ञ यवादी दर्शन को जन्म दिया है।

अनेकान्तवाद का आलोक हमे निराशा के इस अ धकार से बचाता है। वह हमे एक ऐसी विचारधारा की ओर ले जाता है जहाँ सभी प्रकार के विरोधो का उपशमन हो जाता है। अनेकान्तवाद समस्त दार्शनिक समस्याओ उलझनो और भ्रमणाओ के निवारण का समाधान प्रस्तुत करता है। अपेक्षा विशेष से पिता को पुत्र पुत्र को भी पिता छोटे को भी बडा बडे को भी छोटा यदि कहा जा सकता है तो अनेकान्तवाद का आश्रय लेकर ही। अनेकान्तवाद वह न्यायाधीश है जो परस्पर विरोधी दावेदारो का फैसला बडे ही सुन्दर

ढंग से करता है और जिससे वादी और प्रतिवादी दोनो को ही न्याय मिलता है पूर्व कालीन महान् दार्शनिक समन्तभद्र सिद्धसेन अकलंक हरिभद्र आदि ने अनेकान्तदृष्टि का अवलम्बन करके ही सत्त्व असत्त्व नित्यत्त्व अनित्यत्त्व भेद अभेद द्वैत-अद्वैत भाग्य पुरुषार्थ आदि विरोधी वादो का तर्क सगत समन्वय किया और विचार की एक शुद्ध व्यापक बुद्धिसगत और निष्पक्ष दृष्टि प्रदान की। इस दृष्टि से देखने पर खण्डित एव एकांगी वस्तु के स्थान पर हमे सर्वांगीण परिपूर्ण वस्तु दृष्टिगोचर होने लगती है। अनेकान्त दृष्टि विरोध का शमन करने वाली है इसी कारण वह पूर्ण सत्य की ओर ले जाती है।

अनेकान्तवाद की इस विशिष्टता को हृदयगम करके ही जैन दार्शनिको ने उसे अपने विचार का मूलाधार बनाया है। वस्तुत वह समस्त दार्शनिको का जीवन है प्राण है। जैनाचार्यों ने अपनी समन्वयात्मक उदार भावना का परिचय देते हुए कहा है—एकान्त वस्तुगत धर्म नही किन्तु बुद्धिगत कल्पना है। जब बुद्धि शुद्ध होती है तो एकान्त का नामनिशान नही रहता। दार्शनिको की भी समस्त दृष्टिया अनेकान्त दृष्टि मे उसी प्रकार विलीन हो जाती है जैसे विभिन्न दिशाओ से आने वाली सरिताए सागर मे एकाकार हो जाती है।

प्रसिद्ध विद्वान् उपाध्याय यशोविजयजी के शब्दो मे कहा जा सकता है—सच्चा अनेकान्तवादी किसी भी दर्शन से द्वेष नही कर सकता। वह एकनयात्मक दर्शनो को इस प्रकार वात्सल्य की दृष्टि से देखता है जैसे कोई पिता अपने पुत्रो को देखता है। अनेकान्त वादी न किसी को न्यून और न किसी को अधिक समझता है—उसका सबके प्रति समभाव होता है। वास्तव मे सच्चा शास्त्रज्ञ कहलाने का अधिकारी वही है जो अनेकान्तवाद का अवलम्बन लेकर समस्त दर्शनो पर समभाव रखता हो। मध्यस्थभाव रहने पर शास्त्र के एक पद

---

१ उदधाविव सर्वसिन्धव समुदीर्णास्त्वयि नाथ ! दृष्टय ।
न च तासु भवान् प्रदृश्यते अविभक्तासु सरित्स्विवोदधि ॥

—सिद्धसेन

का ज्ञान भी सफल है अन्यथा कोटि-कोटि शास्त्रो को पढ लने पर भी कोई लाभ नही ।[1]

हरिभद्र सूरि ने लिखा है— आग्रहशील व्यक्ति युक्तियो को उसी जगह खीचतान करके लेजाना चाहता है जहाँ पहले से उसकी बुद्धि जमी हुई है मगर पक्षपात से रहित मध्यस्थ पुरुष अपनी बुद्धि का निवेश वही करता है जहाँ युक्तिया उसे ले जाती है ।[1] अनेकान्त दशन यही सिखाता है कि युक्ति-सिद्ध वस्तुस्वरूप को ही शुद्ध बुद्धि से स्वीकार करना चाहिए । बुद्धि का यही वास्तविक फल है । जो एकान्त के प्रति आग्रहशील है और दूसरे सत्याश को स्वीकार करने के लिए तत्पर नही है वह तत्त्व रूपी नवनीत नहीं पा सकता ।

गोपी नवनीत तभी पाती है जब वह मथानी की रस्सी के एक छोर को खीचती और दूसरे छोर को ढीला छोडती है । अगर वह एक ही छोर को खीच और दूसरे को ढीला न छोडे तो नवनीत नही निकल सकता । इसी प्रकार जब एक दृष्टिकोण को गौण करके दूसरे दृष्टिकोण को प्रधान रूप से विकसित किया जाता है तभी सत्य का अमृत हाथ लगता है ।[13] अतएव एकान्त के गदले पोखर से दूर रहकर

---

११ यस्य सवत्र समता नयेषु तनयेष्विव ।
तस्याऽनेकान्तवादस्य क्व न्यूनाधिकशेमुषा ॥
तेन स्याद्वादमालम्ब्य सर्वदशनतुल्यताम् ।
मोक्षोद्देशा विशेषेण य पश्यति स शास्त्रवित् ॥
माध्यस्थ्यमेव शास्त्रार्थो येन तच्चारु सिद्ध्यति ।
स एव धमवाद स्याद् अद् बालिशव गनम् ॥
माध्यस्थसहित ह्येकपदज्ञानमपि प्रमा ।
शास्त्रकोटिवृथवान्या तथा चोक्त महात्मना ॥

—ज्ञानसार उपाध्याय यशोविजय

१२ आग्रही बत निनीषति युक्ति
यत्र तत्र मतिरस्य निविष्टा ।
पक्षपातरहितस्य तु युक्ति
यत्र तत्र मतिरेति निवेशम् ॥

अनेकान्त के शीतल स्व-छ सरोवर मे अवगाहन करना ही उचित ह।

स्याद्वाद का उदार दष्टिकोण अपनाने से समस्त दशनो का सहज ही सम-वय साधा जा सकता ह।

अन्य दशनो पर अनेका-त की छाप

अनेकान्तवाद सत्य का पर्यायवाची दशन ह। यद्यपि कतिपय भारतीय दाशनिको ने अपनी एका-त विचारधारा का समर्थन करते हुए अनेकान्तवाद का विरोध भी किया ह मगर यह निस्सन्देह कहा जा सकता ह कि सभी भारतीय दशनो पर उसकी छाप यूनाधिक रूप मे अकित हुई है। असल मे यह इतना तकयुक्त और बुद्धिसगत सिद्धान्त ह कि इसकी सवथा उपेक्षा की ही नही जा सकती।

ईशावास्योपनिषद् मे आ-मा के सम्ब-ध मे कहा गया ह— तदेजति तन्नजति तद् दूरे तदन्तिके तदन्तरस्यसवस्य तद् सवस्यास्य बाह्यत। अर्थात् आत्मा चलती भी ह और नही भी चलती ह दूर भी ह समीप भी ह वह सब के अन्तगत भी ह बाहर भी ह।

क्या ये उद्गार स्याद्वाद से प्रभावित नही है? भले ही शकराचाय और रामानुजाचाय एक वस्तु मे अनेक धर्मो का अस्तित्व असम्भव कहकर स्याद्वाद का विरोध करते है मगर जब वे अपने मन्तव्य का निरूपग करने चलत है तब स्याद्वाद के असर से वे भी नही बच पाते। उ हे भी अनन्यगत्या स्याद्वाद का आधार लेना पडता है। ब्रह्म के पर और साथ ही अपर रूप की कल्पना मे अनेकान्त का प्रभाव स्पष्ट है। उन्होने सत्य की परमाथसत्य यवहारसत्य और प्रतिभाससत्य के रूप मे जो याख्या प्रस्तुत की है उससे अनेकान्त की पुष्टि ही होती है। वे कहते है— दृष्ट किमपि लोकेऽस्मिन् न निर्दोष न निगु णम्। अर्थात् इस लोक मे दिखाई देने वाली कोई भी वस्तु न निर्दोष है और न निगु ण है।

---

१३ एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जनी नीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी॥

आशय यह हुआ कि प्रत्येक वस्तु मे किसी अपेक्षा से दोष हैं तो किसी अपेक्षा से गुण भी हैं। यह अपेक्षावाद अनेकान्तवाद का रूप नही तो क्या है ?

स्वामी दयानन्द सरस्वती से पूछा गया—आप विद्वान् हैं या अविद्वान् ? स्वामी जी ने कहा—दार्शनिक क्षत्र मे विद्वान् और व्यापारिक क्षत्र म अविद्वान्। यह अनेका तवा॰ नही तो क्या है ?

बुद्ध का विभज्यवाद एक प्रकार का अनेकान्तवाद है। उनका मध्यममाग भी अनेकान्त से प्रतिफलित होने वाला वाद ही है।

साख्य एक ही प्रकृति को सतोगुण रजोगुण और तमोगुणमयी मानकर अनेका त को ही अगीकार करते हैं।

पाश्चात्य दार्शनिक प्लटो आदि ने समस्त विश्ववर्ती पदार्थो को सत् और असत् इन दो मे समाविष्ट करके समन्वय की महत्ता बतलाते हुए जगत् की विविधता सिद्ध की है।

आइन्स्टीन का सापेक्षसिद्धा त स्याद्वाद की विचारधारा का अनुसरण करता है।

इन कतिपय उदाहरणो स पाठक समझ सकगे कि अनेकान्तवाद एक ऐसा व्यापक दृष्टिकोण है कि दार्शनिक जग् मे उसकी उपेक्षा नही की जा सकती। किसी न किसी रूप मे प्र ेक दशन को उसका आश्रय लना ही पडता है।

सामा य रूप स अनेकान्त के सम्ब ध मे इतना ही जान लेने के पश्चात् अब हमे अनेकान्त के प्रकाश मे प्रतिफलित होने वाले कतिपय मुख्यवादो का विचार भी कर लना चाहिए। वे वाद इस प्रकार है।

नित्यानित्यता—

अनेका तवादी दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक वस्तु नित्यानित्य है। द्रव्य और पर्याय का सम्मिलित रूप वस्तु है या यो कहा जा सकता है कि द्रव्य और पर्याय मिलकर ही वस्तु कहलाते है। पर्यायों के अभाव मे द्रव्य का और द्रव्य के अभाव मे पर्याय का कोई अस्तित्व सम्भव नही है। जहाँ जीवद्रव्य है वहाँ उसके

कोई न कोई पर्याय भी अवश्य होते हैं। जो जीव है वह मनुष्य पशु पक्षी स्थावर अथवा सिद्ध मे से कुछ अवश्य होगा और जो मनुष्य आदि किसी पर्याय के रूप मे दृष्टिगोचर होता है वह जीव अवश्य होता है।

द्रव्य नित्य और पर्याय अनित्य है क्योकि जीव द्रव्य का कभी विनाश नही हो सकता मगर पर्यायो का परिवर्त्तन सदैव होता रहता है। इस दृष्टि मे ध्यान देने योग्य बात यह है कि इससे शाश्वतवाद और उच्छेदवाद—दोनो का समन्वय हो जाता है। प्रत्येक द्रव्य शाश्वत है किन्तु उसके पर्यायो का उच्छेद होता रहता है। यहा यह नहो भूलना चाहिए कि द्रव्य और उसके पर्याय पृथक पृथक दो वस्तुए नही है। उनमे वस्तुगत कोई भेद नही है केवल विवक्षाभेद है। अनेकान्तदशन के अनुसार प्रत्येक सत् पदार्थ उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है अर्थात् पर्याय से उत्पन्न और विनष्ट होता हुआ भी द्रव्य से ध्रुव है। कोई भी वस्तु इसका अपवाद नही है।

जब कभी कोई पूर्व परिचित व्यक्ति हमारे समक्ष उपस्थित होता है तब हम कहते हैं यह वही है। वर्षा होते ही भूमि शस्यश्यामला हो जाती है तब हम कहते है—हरियाली उत्पन्न हो गई। हमारे हाथ मे कपूर है यह देखते-ही-देखते उड जाता है तब हम कहते हैं वह नष्ट हो गया। यह वही है—यह नित्यता का सिद्धान्त है। हरियाली उत्पन्न हो गई—यह उत्पत्ति का सिद्धान्त है और वह नष्ट हो गया—यह विनाश का सिद्धान्त है।

द्रव्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे परिणामवाद आरम्भवाद और समूहवाद आदि अनेक विचार है। उसके विनाश के सम्बन्ध मे भी रूपान्तरवाद विच्छेदवाद आदि अनेक अभिमत है। साख्यदर्शन परिणामवादी है वह कार्य को अपने कारण मे सत् मानता है। सत् कार्यवाद के अभिमतानुसार जो असत् है उसकी उत्पत्ति नही होती और जो सत् है उसका विनाश नही होता किन्तु केवल रूपान्तर

---

१४ सद् द्रव्य लक्षणम्। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्।

—तत्त्वार्थ सूत्र अ ५

होता है । उत्पत्ति का तात्पर्य है—सन् की अभिव्यक्ति और विनाश का तात्पर्य है —सत् की अव्यक्ति । न्याय-वैशेषिक दशन आरम्भवादी है। वह काय को अपने कारण मे सत् नही मानता। असत् कायवाद के मतानुसार असत् की उत्पत्ति होतो है और सत् का विनाश होता है। एतदर्थ ही नैयायिक ईश्वर को कूटस्थ नित्य और दीपक को सवथा अनित्य मानते है। बौद्धदर्शन के अनुसार स्थूल द्रव्य सूक्ष्म अवयवो का समूह है तथा द्रव्य क्षणविनश्वर है। उनके विचारानुसार कुछ भी स्थिति नही है। जो दशन एकान्त नित्यवाद को मानते है वे भी जो हमारे प्रत्यक्ष है उस परिवर्तन की उपेक्षा नही कर सकते। और जो दर्शन एकान्त अनित्यवाद को मानते है वे भी जो हमारे प्रत्यक्ष है उस स्थिति की उपेक्षा नही कर सकते। एतदथ ही नयायिको ने दृश्य वस्तुओ को अनित्य मानकर उनके परिवतन की विवक्षा की और बौद्धो ने सन्तति मानकर उनके प्रवाह की विवेचना की।

आधुनिक वज्ञानिक रूपान्तरवाद के सिद्धान्त को एक मत से स्वीकार करते हैं। जसे एक मोमबत्ती है जलाने पर कुछ ही क्षणो मे उसका पूण नाश हो जाता है। प्रयोगो के द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि मोमबत्ती के नाश होने पर अन्य वस्तुओ की उत्पत्ति होती है।[१५]

इसी प्रकार पानी को एक वतन मे रखा जाये और उस बर्तन म दो छिद्र कर तथा उनमे काक लगाकर दो प्लेटिनम की पत्तियाँ उस पानी मे खडी कर दी जाय और प्रत्येक पत्ती पर एक काँच का टयूब लगा दिया जाय तथा प्लटिनम की पत्तियो का सम्बन्ध तार से बिजली की बैटरी के साथ कर दिया जाये तो कुछ ही समय मे पानी गायब हो जायेगा। साथ ही उन प्लेटिनम की पत्तियो पर अवस्थित टयूबो पर ध्यान केन्द्रित किया जायेगा तो दोनो मे एक एक तरह की गस

---

१५ A text book of Inorganic Chemistry by J R Partung N P 15

१६ A text Book of Inorganic Chemistry by G S —Neuth P 237

प्राप्त होगी जो आक्सीजन और हाइड्रोजन के नाम से पहचानी जाती है।[१८]

वैज्ञानिक अनुसन्धान के द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि पुद्गल शक्ति मे और शक्ति पुद्गल मे परिवर्तित हो सकती है। सापेक्षवाद की दृष्टि से पुद्गल के स्थायित्व के नियम व शक्ति के स्थायित्व के नियम को एक ही नियम मे समाविष्ट कर देना चाहिए। उसकी सज्ञा पुद्गल और शक्ति के स्थायित्व का नियम इस प्रकार कर देनी चाहिए।

स्याद्वाद की दृष्टि से सत कभी विनष्ट नही होता और असत की कभी उत्पत्ति नही होती। ऐसी कोई स्थिति नही जिसके साथ उत्पाद और विनाश न रहा हो अर्थात जिनकी पृष्ठ भूमि मे स्थिति है उनका उत्पाद और विनाश अवश्य होता है।

सभी द्रव्य उभय-स्वभावी है। उनके स्वभाव की विवेचना एक ही प्रकार की नही हो सकती। असत् की उत्पत्ति नही होती और सत् का कभी नाश नही होता। इस द्रव्य नयात्मक सिद्धान्त से द्रव्यो की ही विवेचना हो सकती है पर्यायो की नही। उनकी विवेचना— असत की उत्पत्ति और सत का विनाश होता है—इस पर्यायनयात्मक सिद्धान्त के द्वारा ही की जा सकती है। इन दोनो को एक शब्द मे परिणामी नित्यवाद या नित्यानित्यवाद कहा जा सकता है। इसमे स्थायित्व और परिवतन की सापेक्ष रूप से विवेचना है। इस विश्व मे ऐसा द्रव्य नही जो सवथा ध्रुव हो और ऐसा भी द्रव्य नही है जो सवथा परिवतनशील ही हो। दीपक जो परिवतनशील है वह भी स्थायी है और जीव जो स्थायी है वह भी परिवतनशील है। स्थायित्व

---

१७ G al Ch m t y by fin P ul g P P 4 5

१ G n l d In g Ch m t y fo by P J dur t 18

१८ भावस्स णत्थि णासो
णत्थि अभावस्स उप्पादो।
—पचास्तिकाय १५

और परिवतनशीलता की दृष्टि से जीव और दीपक मे कोई अन्तर नही है।

केवल स्थिति ही होती तो सभी द्रव्यो का एक ही रूप रहता उनमे किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही होता। केवल उत्पा‸ और व्यय ही होता तो केवल उनका क्रम होता किन्तु स्थायी आधार के अभाव मे उनका कुछ भी रूप नही होता। कतृत्व कम और परिणामी की कोई विवेचना नही होती। स्याद्वाद की दृष्टि से परिवतन भी है और उसका आधार भी है। परिवतनरहित किसी भी प्रकार का स्थायित्व नही ह। और स्थायित्व रहित किसी भी प्रकार का परिवतन नही ह। अर्थात् परिवर्तन स्थायी मे होता ह और स्थायी वही हो सकता ह जिसमे परिवतन हो। साराश यह ह कि निष्क्रियता और सक्रियता स्थिरता और गतिशीलता का जो सहज समन्वित रूप ह उसे ही द्रव्य कहा गया ह। अपने केन्द्र मे प्रत्येक द्रव्य ध्रुव स्थिर और निष्क्रिय ह। उसके चारो ओर परिवतन की एक शृङ्खला ह जिसे हम परमाणु की रचना से समझ सकते हैं। विज्ञान के अनुसार अणु की रचना तीन प्रकार के कणो से मानी गई ह—(१) प्रोटोन (२) इलक्ट्रोन (३) न्यूट्रोन। धनात्मक कण प्रोटोन ह। परमाणु का वह मध्यबिन्दु होता ह। ऋणात्मक कण इलक्ट्रोन ह। यह धनाणु के चारो ओर परिक्रमा करता ह। उदासीन कण न्यूट्रोन ह।

आत्मा का शरीर से भेदाभेद

आत्मा शरीर से भिन्न ह अथवा अभिन्न ह इस विषय मे भी दशनशास्त्रो के मन्तव्य विविध प्रकार के उपलब्ध होते हैं। चार्वाक दशन आत्मा को शरीर से भिन्न स्वीकार नही करता। वह शरीर से ही चेतना

---

२ आदीपमाव्योमसमस्वभाव
स्याद्वादमुद्राऽनतिभेदि वस्तु।
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्य—
दिति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापा॥
अन्ययोग व्यवच्छेदिका श्लो ५

की उत्पत्ति मानता है और शरीर का विनाश होने पर चेतना का भी विनाश हो जाना स्वीकार करता है।[21] सूत्रकृताग सूत्र मे तज्जीव तच्छरीरवाद का उल्लेख मिलता है। यह चार्वाक मत से किंचित् भिन्न होता हुआ भी एक ही वस्तु को जीव और शरीर के रूप मे स्वीकार करता है।[22] अनेक दशन आत्मा का शरीर से एकान्त भिन्नत्व स्वीकार करते है। इस समस्या को सुलझाते हुए भगवान् महावीर ने कहा– आत्मा कथंचित शरीर से भिन्न भी है और अभिन्न भी है।[23] आत्मा को शरीर से भिन्न तत्त्व न माना जाय और दोनो का एकत्व स्वीकार किया जाय तो शरीर के नाश के साथ आत्मा का भी नाश मानना होगा और उस स्थिति मे पुनर्जन्म एव मुक्ति की कल्पना निराधार हो जायगी। किन्तु युक्ति और आगम आदि प्रमाणा से पुनजन्म आदि की सिद्धि होती है अत आत्मा को शरीर से पृथक मानना ही समीचीन है। साथ ही अनादि काल से आत्मा शरीर के साथ ही रहा हुआ है और कृत कर्मो का फलोपभोग शरीर के द्वारा ही होता है। शरीर पर प्रहार होता है तो दुख की अनुभूति आत्मा को होती है। देवदत्त पर प्रहार किया जाय तो जिनदत्त को दुखानुभव नही होता क्योकि देवदत्त के शरीर से जिनदत्त की आत्मा भिन्न है। इसी प्रकार यदि देवदत्त की आत्मा देवदत्त के शरीर से भी सवथा भिन्न हो तो उसे भी दुख का अनुभव नही होना चाहिये। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जसे देवदत्त के शरीर और जिनदत्त की आत्मा मे भेद है वसा भेद देवदत्त के शरीर और देवदत्त की आत्मा म नही है। यही देह और आत्मा का अभेद है।

---

२१ भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत ?

२२ पत्तय कसिरो आया जे बाला जे अ पडिया।
सन्ति पिच्चा न ते सन्ति नत्थि सत्तोववाइया॥

—सूत्रकृतांग १।१।११

२३ आया भन्ते! काये अन्न काये? गोयमा! आया वि काये अन्ने वि काये।

सत्ता और असत्ता

जब यह निश्चित हो जाता है कि वस्तुतत्त्व सापेक्ष है और स्याद्वादपद्धति से ही उसका ठीक प्रतिपादन हो सकता है तो वस्तु के अस्तित्व और नास्तित्व के विषय मे भी हमे अनेकान्त को लागू करके देखना होगा। जैन दार्शनिको ने बडी ही खूबी के साथ इस विषय पर ऊहापोह किया है और स्वचतुष्टय और परचतुष्टय के द्वारा अस्तित्व नास्तित्व की समस्या का समाधान खोजा है।

द्रव्य क्षत्र काल और भाव ये चारो चतुष्टय कहलाते हैं। प्रत्येक वस्तु स्वचनुष्टय की अपेक्षा अस्तित्ववान् है और परचतुष्टय की अपेक्षा नास्तिरूप है।[२]

उदाहरण के लिए एक स्व गघट को लीजिए। वह स्वण का बना है यह स्वद्र य की अपेक्षा अस्तित्व है। वह जिस क्षत्र अर्थात् स्थान मे रक्खा है उस क्षत्र की अपेक्षा से है। जिस काल मे उसकी सत्ता है उस काल की अपेक्षा से ह। उसमे जो पीतवण आदि अनेक पर्याय विद्यमान है उनकी अपेक्षा स ह। कि तु वही घट मृत्तिकाद्रव्य की अपेक्षा से नही ह। अन्य क्षत्र की अपेश्ना से भी नही ह। कालान्तर की अपेक्षा से भी नही है। कृष्णवण आदि पर्यायो से भी उसमे अस्तित्व नही ह। इसी प्रकार स्वणघट सोने का ह मृत्तिका आदि का नही है। अमुक क्षत्र म ह अ य क्षत्र मे नही ह। जिस काल मे है उसके अतिरिक्त अन्य काल की अपेक्षा से नही ह। वह अपने स्वपर्यायो से ह पर पर्यायो से नही ह इस प्रकार स्वचतुष्टय और परचतुष्य की अपेक्षा उसमे अस्तित्व और नास्तित्व सहज ही घटित होते है।

कई लोग अस्तित्व और नास्तित्व को विरोधी धम समझ कर एक ही वस्तु मे दोनो का समन्वय असभव मानते हैं। मगर वे भूल जाते हैं कि एक ही अपेक्षा से यदि अस्तित्व और नास्तित्व का विधान किया जाय तभी उनमे विरोध होता ह विभिन्न अपेक्षाओ से विधान

---

२४ सदेव सर्व को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते॥
—आप्तमीमांसा श्लोक १५

करने मे कोई विरोध नही होता। किसी व्यक्ति के सम्बन्ध मे यह कहना कि यह मनुष्य ह मनुष्येतर नही ह भारतीय ह पाश्चात्य नहा ह वर्त्तमान मे ह सदा से या सदा रहने वाला नही ह विद्वान् ह मूख नही है तो क्या हम उस व्यक्ति क विषय मे परस्परविरुद्ध विधान करते है ? नही। यह विधान न केवल तकसगत ह अपितु यवहारसगत भी है। हम प्रतिदिन इसी प्रकार यवहार करते है। ऐसा यवहार किए विना किसी वस्तु का निश्चय हो भी नही सकता। यह पुस्तक है ऐसा निश्चय तो तभी सभव ह जब हम यह जान लें कि यह पुस्तक के अतिरिक्त अन्य कुछ नही ह।

इन उदाहरणो से प्रत्येक पदाथ सत् और असत् किस प्रकार ह यह समझ म आ जाता ह। मगर जनाचार्यो ने इस विचार को सुस्पष्ट करन के लिए सप्तभगी का विधान किया ह जिससे वस्तु म प्रत्येक धम की सगति एकदम निर्विवाद हो जाती ह।

सप्तभगी

प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक है। उन अनन्त धर्मों मे से प्रत्येक धम की ठीक ठीक सगति बिठलाने के लिए विधि निषेध आदि की विवक्षा से सात भग होते है। यही सप्तभगी है। ये सात भग प्रत्येक धम पर घटित किए जा सकते है किन्तु उदाहरण के रूप मे सत्ता धम को लेकर यहाँ उनका उल्लेख किया जाता है। वे निम्न लिखित है—

(१) स्यादस्ति—स्वकीय द्रव्य क्षत्र काल और भाव से प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व है।

(२) स्यान्नास्ति—परकाय द्रव्य क्षत्र काल और भाव से प्रत्येक वस्तु नही है।

(३) स्यादस्ति-नास्ति—स्वकीय तथा परकीय द्रव्य क्षत्र काल और भाव से वस्तु है और नही है।

---

२५ सप्तभि प्रकारवचन विन्यास सप्तभङ्गीतिगीयते।

—स्याद्वाद मजरी का २३ टीका

(४) स्यादवक्तव्य—युगपद् कथन की अपेक्षा से वस्तु अनिवचनीय है अर्थात् सत्ता और असत्ता को एक साथ कहा नही जा सकता।

(५) स्यादस्ति अवक्तव्य– वस्तु स्वचतुष्टय से सत होने पर भी एक साथ स्व पर चतुष्टय की अपेक्षा से अवक्तव्य है।

(६) स्या नास्ति अवक्तव्य—पर चतुष्टय से असत होते हुए भी एक साथ स्व-पर चतुष्टय से अवक्तव्य है।

(७) स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य– स्वचतुष्टय मे सत पर चतुष्टय से असत होते हुए भी एक साथ स्व पर चतुष्टय से अनिवचनीय हैं।

इसी प्रकार नित्यत्व एक व आदि सभी धर्मों के विषय मे यह स तभगी लाग होती है। यह सान भग वस्तत प्रथम और द्वितीय भग के ही यापक स्वरूप हैं।

पाठक समझ सकगे कि स्याद्वाद सिद्धा त मे वस्तुस्वरूप की विवेचना सापेक्ष दष्टि से की गई है। उक्त सातो भगो का आधार काल्पनिक नही वरन् वस्तु का विराट और विविधरूप स्वरूप ही है। स्याद्वाद सिद्धा त की चमत्कारिक शक्ति और व्यापक प्रभाव को हृदयगम करके डॉ हमन जैकोबी ने कहा था— स्याद्वाद से सब सत्य विचारो का द्वार खुल जाता है।

अभी हाल म ही मे अमेरिका के विश्व त दाशनिक प्रोफमर आर्चि ज बह्न ने स्याद्वाद का अ ययन करके जनो को ये प्रेरणाप्रद शब्द कहे है– विश्वशा ि की स्थापना के लिए जनो को अहिंसा की अपक्षा स्याद्वाद सिद्धा त का अत्यधिक प्रचार करना उचित है। महात्मा गाँधी को भी यह सिद्धा त बडा प्रिय था और आचाय विनोबा जसे शान्तिप्रसारक स त इसके महत्व को मुक्त कठ से स्वीकार करते है।

भ्रम निवारण

सप्तभगी सिद्धा त के विषय मे कतिपय पाश्चात्य और कुछ भारतीय विद्वानो की जो गलत धारणा है उसका उल्लख यहाँ कर देना अनुचित न होगा।

प्राचीन जैन आगमो मे सप्तभगी बीज रूप मे उपलब्ध होती है।[२६] आचार्य कुन्दकुन्द ने कुछ ही भगो का उल्लेख किया है।[२७] किन्तु इनके पश्चाद्वर्त्ती आचार्य समन्तभद्र सिद्धसेन अकलक विद्यानन्द हेमचन्द्र वादिदेव आदि ने उसका स्पष्ट और विस्तृत विवेचन किया है। इस प्रतिपादन क्रम को कुछ विद्वानो ने स्याद्वाद या सप्तभगी का विकासक्रम समझ लिया है किन्तु तथ्य यह है कि जैन तत्त्वज्ञान सर्वज्ञमूलक है। सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थङ्करो के ज्ञान मे जो तत्त्व प्रतिभासित होता है उसी को उनके प्रधान शिष्य शब्द बद्ध करते है और फिर उनके शिष्य प्रशिष्य उसके एक-एक अग का आधार लेकर युग की परिस्थिति के अनुसार विभिन्न ग्रन्थो की रचना करते है। इस प्रकार तत्त्वविवेचन का क्रम आगे बढता है। इस विवेचनक्रम को तत्त्व का विकासक्रम समझ लेना युक्तिसगत नही है।

इस युग मे प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव हुए है। उन्होने जो उपदेश किया वही उनके पश्चात् होने वाले तेईस तीर्थङ्करो ने किया। वही उपदेश कालक्रम से उनके अनुयायी विभिन्न आचार्यो द्वारा जैन साहित्य मे लिपिबद्ध किया गया है। किसी भी विषय का सक्षिप्त या विस्तृत विवेचन उसके लेखक की सक्षेपरुचि अथवा विस्तार रुचि पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त युग की विचारधारा भी उसे प्रभावित करती है। खासतौर से दार्शनिक साहित्य मे ऐसा भी होता है कि कोई लेखक जब किसी विषय के ग्रन्थ की रचना करता है तो अपने समय तक के विरोधी विचारो का उसमे उल्लेख करता है

---

२६ जीवा ण भते ! कि सासया असासया ?
गोयमा ! जीवा सिय सासया सिय असासया। दव्वट्ठयाए सासया भावट्ठयाए असासया।

—भगवती ७।२।७७३

२७ सिय अत्थि णत्थि उहय—

—पचास्तिकाय प्रवचनसार

२८ अत्थ भासइ अरहा सुत्त गुथति गणहरा निउण।

—भद्रबाहु।

और अपने दृष्टिकोण के अनुसार उनका निराकरण भी करता है। जैन दार्शनिक साहित्य मे भी यह प्रवत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इस प्रतिपादन क्रम को अगर कोई मूल तत्त्व का विकासक्रम समझ बैठे तो यह उसकी भूल ही कही जाएगी।

अमरीकी विद्वान आर्चि जे बह्न इसी भूल के शिकार हुए हैं। उन्होने स्याद्वाद के निरूपणक्रम को स्याद्वाद का विकासक्रम समझ लिया है। एक भूल अनेक भूलो की सृष्ट कर देती है। जब उन्होंने स्याद्वाद के क्रमविकास की भ्रान्त कल्पना की तो दूसरी भूल यह हो गई कि वे सप्तभगी को बौद्धो के चतुष्कोटिनिषेध का अनुकरण अथवा विकास समझने लगे यद्यपि उन दोनो मे बहुत अधिक अन्तर है।

सर्वप्रथम हमे इतिहास द्वारा निर्णीत इस तथ्य को ध्यान मे रखना चाहिए कि जनधर्म बौद्धधर्म से बहुत प्राचीन है।[२] महात्मा बुद्ध से पहल तेईस तीथकर हो चुके थे। तेईसवें तीथकर भगवान पार्श्वनाथ उनसे लगभग २५ वष पूर्व हुए थे। उन्होने स्याद्वाद सिद्धान्त का निरूपण किया था। सजय बेलटिठपुत्त जो बुद्ध के पूर्व वर्ती हैं उन्होने स्याद्वाद को ठीक तरह न समझ कर सशयवाद की प्ररूपणा की थी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्याद्वाद सिद्धान्त का बुद्ध से पहले ही अस्तित्व था। ऐसी स्थिति मे यह समझना कि सप्तभगी सिद्धान्त बौद्धो के चतुष्कोटिप्रतिषेध का विकसित रूपान्तर है सर्वथा निराधार है। चतुष्कोटिप्रतिषेध का सिद्धान्त तो बुद्ध के भी बाद मे प्रचलित हुआ है। इसके अतिरिक्त सप्तभंगी और चतुष्कोटिप्रतिषध के आशय मे भी बहुत अन्तर है। बौद्धो का चतुष्कोटि प्रतिषेध यो है—

१—वस्तु है ऐसा नही है।
२—वस्तु नही है ऐसा भी नही है।
३—वस्तु है और नही है ऐसा भी नही है।

---

२१ देखिए डा हर्मन जैकोबी द्वारा लिखित जैन सूत्राज की भूमिका।

४—वस्तु है और नही है ऐसा नही है यह भी नही है।

सप्तभगी के स्वरूप का उल्लेख पहले किया जा चुका है। सप्तभंगी म और प्रस्तुत चतुष्काटि प्रतिषध मे वस्तुत कोई समानता नही है। सप्तभगी मे वस्तु क अस्तित्व और नास्तित्व आदि का प्रतिपादन है जब कि इस प्रतिषेध मे अस्तित्व को कोई स्थान नही है केवल नास्तित्व का ही निरूपण पाया जाता है। सप्तभगी मे जो अस्तित्व और नास्तित्व का विधान है वह स्वचतुष्टय और परचतुष्टय के आधार पर है और क्षण क्षण मे होने वाला हमारा अनुभव उसका समथन करता है। स तभगी के अनसार मनष्य मनुष्य है पशु पक्षी आदि मनष्येतर नही है। किन्तु चतुष्कोटि प्रतिपव का कहना है कि कि मनुष्य मनुष्य नही है मनुष्येतर भी नही है उभय रूप भी नही है अनुभ रूप भी नही है। वह कुछ भी नही है और वह कुछ भी नही है ऐसा भी नही है। इस प्रकार यहाँ न कोई अपेक्षाभेद है और न अस्तित्व का कोई स्थान ही है।

सप्तभगी मे पदार्थो के अस्तित्व से इ कार नही किया गया है सिफ उसके स्वरूप की नियतता प्रदर्शित करने के लिए यह दिखलाया गया है कि वह पर रूप मे नही है। सप्तभगोवाद हमे सतरगी पुष्पो से सुशोभित विचारवाटिका म विहार कराता है तो बौद्धो का निषधवाद पदार्थो के अस्ति व को अस्वीकार कर के शून्य के घोर एका त अ धकार म ले जाता है। अनुभव उसको कोई आधार प्रदान नही करता है। अतएव यह स्पष्ट है कि सप्तभगी का बौद्धो के चतुष्काटिनिषध के साथ लेशमात्र भी सरोकार नही है।

स्याद्वाद सशयवाद नहीं

जनदशन का यह मा यता है कि प्रत्येक प ाथ अन त धर्मात्मक है। अन त धर्मात्मकता के बिना किसी पदाथ के अस्तित्व की कल्पना

---

३ नामन्नसन्न मदसन्न ना यनुभया मकम् ।
चतुष्कोटिविनिमु क्त त व मा यमिका विदु ॥

११ अन तधर्मा मकमेव त व
अतोऽन्यथा स वमसूपपादम् ।
—अ ययोग व्यवच्छेद द्वा त्रिंशिका

ही सम्भव नही है। किन्तु एक साथ अनन्त धर्मो का निवचन नही हो सकता। दूसरे धर्मो का विधान और निषध न करत हुए किसी एक धम का विधान करना ही स्याद्वाद है। अनेका त वाच्य और स्याद्वाद वाचक है। अमुक अपेक्षा से घट सत् ही है और अमुक अपेक्षा से घट असत् ही है यह स्याद्वाद है। इसमे यह प्रदर्शित किया गया है कि स्वचतुष्टय से घट की सत्ता निश्चित है और परचतुष्टय से घट की असत्ता निश्चित है। इस कथन में सशय को काई स्थान नही है। किन्तु स्यात् शब्द के प्रयोग को देखकर स्याद्वाद की गहराई म न उतरने वाले कुछ लोग यह भ्रमपण धारणा बना ले। हैं कि स्याद्वाद अनिश्चय की प्ररूपणा करता है।

वस्तुत स्यात् श द का अथ न शायद है न सम्भवत है और न कदाचित् जसा ही है। वह तो एक सुनिश्चित सापे त दृष्टिकोण का द्योतक ह। प्रो बलदेव उपाध्याय ने लिखा ह— अनेका तवाद सशयवाद नही है। परन्तु वे उसे सम्भवत अथ म प्रयुक्त करना चाहत है मगर यह भी सगत नही है।

शकराचाय ने अपने भाष्य म स्याद्वाद को सशयवाद कहकर जो भ्रा त धारणा उत्पन्न की थी उसकी परम्परा अब भी बहुत अशो म चल रही है। किन्तु प्रोफेसर फणिभूषण अधिकारी ने आचाय शकर की धारणा के सम्ब ध म लिखा है— जनधम के स्याद्वाद सिद्धा त को जितना गलत समझा गया है उतना अ य किसी भी सिद्धा त को नही। यहाँ तक कि शकराचार्य भी इस दोष से मुक्त नही है। उन्होने भी इस सिद्धान्त के प्रति अन्याय ही किया है। यह बात अल्पज्ञ पुरुषो के लिए क्षम्य हो सकती थी कि तु यदि मुझे कहने का अधिकार है तो मै भारत के इस महान विद्वान् के लिए तो अक्षम्य ही कहूँगा यद्यपि मैं इस महर्षि को अतीव आदर की दृष्टि से देखता हूँ। ऐसा जान पडता है कि उन्होने इस धम के दशनशास्त्र के मूल ग्रन्थो के अध्ययन की परवाह नही की।

स्पष्ट है कि स्याद्वाद सशयवाद नही है। सभी दर्शन किसी न किसी रूप में इसे स्वीकार करते हुए भी इसका नाम लेने मे हिचकते हैं।

पाश्चात्य विद्वान् थामस का यह कथन ठीक ही ह कि— स्याद्वाद सिद्धा न बडा गम्भीर है। यह वस्तु की भिन्न भिन्न स्थितियो पर अच्छा प्रकाश डालता ह। स्याद्वाद का अमर सिद्धान्त दाशनिक जगत् में बहुत ऊ चा सिद्धान्त माना गया ह। वस्तत स्याद्वाद सत्य ज्ञान की कुञ्जी है। दाशनिक क्षत्र म स्याद्वाद को सम्राट का रूप दिया गया है। स्यात् श द को एक प्रहरी के रूप म स्वीकार करना चाहिए जो उच्चारित धम को इधर उधर नही जाने देता ह। यह अविवक्षित धर्मों का सरक्षक ह सशयादि शत्रुओ का सरोधक व भिन्न दाशनिको का सपोषक ह।

जिन दाशनिको की भाषा स्याद्वादानुगत है उ हे कोई भी दशन भ्रमजाल के चक्र मे नही फसा सकता।

एकबार भगवान् महावीर के समक्ष प्रश्न उपस्थित हुआ साधु को किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करना चाहिए? उत्तर मे भगवान् ने कहा—साधु को विभज्यवाद[३२] का प्रयोग करना चाहिए। टीकाकार ने विभज्यवाद का अथ स्याद्वाद किया है। क्या सशयात्मक वाणी का प्रयोग करके कोई दर्शन जीवित रह सकता है?

विरोध का निराकरण

शकराचार्य ने अपने शाकरभाष्य म स्याद्वाद के निरसन का प्रयत्न करत हुए यह भी कहा है—शीत और उष्ण की तरह एक धर्मी मे परस्पर विरोधी सत्त्व और असत्त्व आदि धर्मो का एक साथ समावेश नही हो सकता। कि तु स्याद्वाद के स्वरूप को जिसने समझ लिया है उसके समक्ष यह आरोप हास्यास्पद ही ठहरता है। आचाय से यदि प्रश्न किया गया होता— आप कौन हैं? तो वे

---

३२ भिक्खू विभ जवाय च वियागरेज्जा।

—सूत्रकृतांग १।१४।२२

३३ न हि एकस्मिन् धर्मिणि युगपत् सदसत्त्वादिविरुद्धधर्मसमावेश सम्भवति शीतोष्णवत्।

—शांकरभाष्य

उत्तर देते— मैं संन्यासी हूँ। पुन प्रश्न किया जाता— आप गृहस्थ हैं या नही ? तो वे कहते – मैं गृहस्थ नही हूँ। अब तीसरा प्रश्न उनसे यह किया जाता—आप हूँ भी और नही हूँ भी कहते है इस परस्पर विरोधी कथन का क्या आधार है ? तब आचार्य को अनन्यगत्या यही कहना पडता – सन्यासाश्रम की अपेक्षा हूँ गृहस्थाश्रम को अपेक्षा नही हूँ इस प्रकार अपेक्षाभेद के कारण मेरे उत्तरो मे विरोध नही है।

बस यही उत्तर स्याद्वाद है। सत्त्व और असत्त्व धर्म यदि एक ही अपक्षा से स्वीकार किये जाए तो परस्पर विरोधी होते हैं किन्तु स्वरूप से सत्त्व और पररूप से असत्त्व स्वीकार करने मे किसी प्रकार का विरोध नही है जसे—मैं सन्यासी हूँ और सन्यासी नही हूँ यह कहना विरुद्ध है किन्तु मैं सन्यासी हूँ गृहस्थ नही हूँ ऐसा कहने मे कोई विरोध नही है।

नयवाद

नयवाद को स्याद्वाद का एक स्तम्भ कहना चाहिए। स्याद्वाद जिन विभिन्न दृष्टिकोणो का अभिव्यजक है वे दृष्टिकोण जैन परिभाषा मे नय के नाम से अभिहित होते हैं। पहले कहा जा चुका है कि प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। वस्तु के उन अनन्त धर्मों मे से किसी एक धर्म का बोधक अभिप्राय या ज्ञान नय है।

प्रमाण वस्तु के अनेक धर्मों का ग्राहक होता है और नय एक धम का[३४]। किन्तु एक धम को ग्रहण करता हुआ भी नय दूसरे धर्मों का न निषेध करता है और न विधान ही करता है। निषेध करने पर वह दुर्नय हो जाता है। विधान करने पर प्रमाण की कोटि मे परिगणित हो जाता है। नय प्रमाण और अप्रमाण दोनो से भिन्न प्रमाण का एक अश है जैसे समुद्र का अश न समुद्र है न असमुद्र है

३४ अर्थस्यानेकरूपस्य धी प्रमाण तदशधी ।
नयो धर्मान्तरापेक्षी दुर्नयस्तन्निराकृति ॥

३५ स्वाभिप्रेतादशादितरांशापलापी पुनर्नयाभास ।
—प्रमाणनयतत्त्वालोक वाविवेव ।

वरन् समुद्रांश है।[३६] नय का ग्राह्य भी वस्त्वंश ही होता है। विश्व के सभी एकान्तवादी दर्शन एक ही नय को अपने विचार का आधार बनाते हैं। उनका दृष्टिकोण एकांगी होता है। वे भूल जाते है कि दूसरे दृष्टिकोण से विरोधी प्रतीत होने वाला विचार भी संगत हो सकता है। इसी कारण वे एकांगी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं और वस्तु के समग्र स्वरूप को स्पर्श नही कर पाते। वे सम्पूर्ण सत्य के ज्ञान से वंचित रह जाते हैं। नयवाद अनेक दृष्टिकोणों से वस्तु को निरखने परखने की कला सिखलाता है।

बौद्धदर्शन वस्तु के अनित्यत्व धर्म को स्वीकार करके द्रव्य की अपेक्षा पाये जाने वाले नित्यत्व धर्म का निषेध करता है। सांख्यदर्शन नित्यत्व को अंगीकार करके पर्याय की दृष्टि से विद्यमान अनित्यत्व धर्म का अपलाप करता है। इस प्रकार ये दोनों दर्शन अपने अपने एकान्त पक्ष के प्रति आग्रहशील होकर एक-दूसरे को मिथ्या कहते है। वे नही जानते कि दूसरे को मिथ्यावादी कहने के कारण वे स्वयं मिथ्यावादी बन जाते है। अगर उन्होंने दूसरे को सच्चा माना होता तो वे स्वयं सच्चे हो जाते क्योंकि वस्तु मे द्रव्यत नित्यत्व और पर्यायत अनित्यत्व धर्म रहता है।

इस प्रकार नयवाद द्वैत अद्वैत निश्चय व्यवहार ज्ञान क्रिया काल स्वभाव नियति यदृच्छा पुरुषार्थ आदि वादो का सुन्दर और समीचीन समन्वय करता है।

नयवाद दुराग्रह को दूर करके दृष्टि को विशालता और हृदय को को उदारता प्रदान करता है। वह वस्तु के विविध रूपो का विश्लेषण हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। आचार्य समन्तभद्र ने कहा है— हे जिनेन्द्र ! जिस प्रकार विविध रसो द्वारा सुसंस्कृत लोह स्वर्ण आदि धातु पौष्टिकता और स्वास्थ्य आदि अभीष्ट फल प्रदान करती है उसी प्रकार स्यात्' पद से अंकित आपके नय

---

३६ नासमुद्रं समुद्रो वा समुद्रांशो यथैव हि।
नायं वस्तु न चावस्तु, वस्त्वंशो कथ्यते बुधैः ॥
—श्लोकवार्तिक विद्यानन्दि

मनोवांछित फल के प्रदाता है अतएव हितषी आय पुरष आपको नमस्कार करते हैं।

कहा जा चुका है कि प्रत्येक पदाथ मे उत्पाद व्यय और ध्रौ य की प्रक्रिया निर तर चालू है। स्वणपिण्ड स एक कलाकार घट बनाता है। फिर उम स्वणघट को तो कर मुकुट बनाता है। यहा प्रथम पिण्ड के विनाश से घट की और घट के विनाश से मुकुट की उत्पत्ति होती है मगर स्वणद्रव्य सब अवस्थाओ मे विद्यमान रहता है। यह द्रव्य से नित्यता और पर्याय से अनित्यता है। जिसने दूध ही ग्रहण करने का नियम अगीकार किया है वह दधि नही खाता। दधि खाने का नियम लेने वाला दूध का सेवन नही करता। कि तु गोरस का त्याग कर देने वाला दोनो का सेवन नही करता इससे स्पष्ट है कि दुग्ध का विनाश दधि की उत्पत्ति और गोरस की स्थिरता होने से वस्तु का पर्याय से उ पाद विनाश होने पर भी द्र य से ध्रौव्य रहता है। इस उदाहरण से वस्त की सामा यविशेषात्मकता भी प्रमाणित हो जाती है।

आशय यह है कि प्रत्येक वस्त के दो मुख्य अश है—द्र य और पर्याय। अतएव द्र य को प्रधान रूप से ग्रहण करने वाला दृष्टि कोण द्र यार्थिक नय और पर्याय को ग्रहण करने वाला पर्या ार्थिक नय कहलाता है। यद्यपि वस्तगत अनन्त धर्मों को ग्रहण करने वाले अभिप्राय भी अनन्त होते है और इस कारण नयो की सख्या का अवधारण नही किया जा सकता तथापि उन सब का समावेश

---

३७ घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोक प्रमोद मा यस्थ्य जनो याति सहेतुकम्॥

—आचाय समन्तभद्र

३८ पय व्रतो न दध्यत्ति न पयोत्ति दधिव्रत।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्त्व त्रया मकम्॥

—आचार्य समन्तभद्र

३९ जावइया वयणपहा तावइया चेव हु ति नयवाया।

— सन्मतितर्क आचार्य सिद्धसेन

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दो नयो मे ही हो जाता है। जिस दृष्टिकोण मे द्रव्य की प्रधानता हो वह द्रव्यार्थिक नय कहलाता है और जिसमे पर्याय की मुख्यता हो वह पर्यायार्थिक नय है। जैन साहित्य मे नयविषयक अनेक ग्रन्थो का निर्माण हुआ है। अधिक जानकारी के लिए पाठको को उन ग्रन्थो का अवलोकन करना चाहिए। विस्तार भय से यहा अधिक नही लिखा गया है।



---

४ व्यासतोऽनेकविकल्प । समासतस्तु द्विभेदो द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकश्च।
—प्रमाणनयतत्त्वालोक ७।४।५

पाँच | धर्म का मूल सम्यग्दर्शन

धम का मल क्या है ? यह एक गम्भीर प्रश्न रहा ह और इस प्रश्न का उत्तर विभिन्न दष्टियो से विभिन्न विचारको ने दिया है। कही पर दया को धर्म का मूल बताया है। कही पर विनय को धम का मूल कहा है । और कही पर दशन को धम का मूल कहा है। अपक्षा दष्टि से सभी कथन सत्य हैं। दया मे चारित्रसम्बधी सभी नियमो का समावेश हो जाता है। विनय का अथ यहाँ नम्रता नही किन्तु सदाचार ही है। सदाचार सम्यग्दशनमूलक होता है। इस प्रकार धर्म के मूल मे शब्दभेद होने पर भी आशयभेद नही है। तथापि गहराई से चिन्तन किया जाय तो यह स्पष्ट हुए विना

---

१ दयामूलो भवेद्धर्मो दयाप्राण्यनुकम्पनम् ।

—महापुराण-जिनसेन २१।५।९२

(ख) दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान ।

—संत तुलसीदास

२ एव धम्मस्स विणओ मूल परमो से मोक्खो ।

—दशवकालिक ९।२।२

किं मूलए धम्मे ?

सुदसणा विणयमूले धम्मे ।

—ज्ञातासूत्र ५

३ दसणमूलो धम्मो ।

—कुन्दकुन्दाचार्य

रहेगा कि धम का मूल वस्तुत सम्यग् दशन ही है क्यो कि सम्यग दर्शन के अभाव मे दया सही दया नही है और विनय सही विनय नही है।

सम्यग्दशन का अथ है विशुद्धदृष्टि। पाश्चात्य विचारक आर विलियम्स के शब्दो मे—जिन द्वारा बताए गए माक्ष माग म श्रद्धा सम्यक्त्व है।[५] आचाय वसुनन्दिन् क अनुसार आप्त आगम और तत्त्व—पदाथ इन तीनो म श्रद्धा रखना सम्यकत्त्व है। पूण ज्ञानी और पूण वीतराग पुरुष आप्त कहलाता है। उसकी वाणी आगम और उसके द्वारा उपदिष्ट पदाथ-तत्त्व है।

श्रावकपचाचार वृत्ति के अनुसार—तीथकरो के द्वारा उपदिष्ट सत्यो मे श्रद्धा सम्यकत्त्व है।

आचाय हेमचन्द्र के अनुसार– सुदेव सुगुरु और सुधम मे श्रद्धा सम्यकत्त्व है।

आचाय कुन्दकुन्द के शब्दो मे व्यवहार नय से जीवादि तत्त्वो का

---

४ नादसणिस्स नाण नाणण विना न हु ति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण।
—उत्तराध्ययन २८।३

५ आर विलियम्स जन योग प्रकाशक ओ यू प्रेस लन्दन १९६३ पृ ४१।

६ अत्तागमतच्चाण ज सद्दहण सुणिम्मल होइ।
सकाइदोसरहिय त सम्मत्त मुणयव्व॥
—वसुनन्दिश्रावकाचार गा ६

७ सव्वाइ जिणसरभासिआइ वयणाइ नन्नहा हु ति।
इअ बुद्धि जस्स मणे सम्मत्त निच्चल तस्स।
—श्रावक पचाचार वृत्ति गा ३

या देवे देवताबुद्धि गुरौ च गुरुतामति।
धम च धमधी शुद्धा सम्यक्त्वमिदमुच्यते॥
—योगशास्त्र प्र २।२ श्लोक

का श्रद्धान करना सम्यकत्व है किन्तु निश्चय नय से आत्मा का श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।

उमास्वाति के शब्दो मे तत्त्वरूप पदार्थों की श्रद्धा अर्थात् दृढ प्रतीति सम्यग्दर्शन है।[1]

आधारभूत तथ्य को तत्त्व कहते है। स्थानाङ्ग[1] और उत्तराध्ययन[12] आदि मे तत्त्व के नौ भेद किये है—(१) जीव (२) अजीव (३) पुण्य (४) पाप (५) आस्रव (६) सवर (७ निजरा (८) बध (९) मोक्ष।

उमास्वाति व आचाय हेमचन्द्र ने तत्त्व के सात भेद किये हैं[3]—(१) जीव (२) अजीव (३) आस्रव (४) बन्ध (५) सवर (६) निर्जरा (७) और मोक्ष। पुण्य और पाप को उन्होने आस्रव के अन्तर्गत गिना है।

---

९ जीवादीसद्दहण सम्मत्त जिणवरेंहि पण्णत्त।
ववहाराणिच्छयदो अप्पाण हवइ सम्मत्त ॥

—दर्शन पाहुड २

१ तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यगदर्शनम्।

—तत्त्वार्थ सूत्र १।२

(ख) उत्तराध्ययन २८।१५

११ स्थानाङ्ग ६६५

१२ जीवा जीवा य बधो य पुण्ण पावाऽसवो तहा।
सवरो निज्जरा मोक्खो सतेए तहिया नव ॥

—उत्तराध्ययन २८।१४

(ख) जीवाजीवा भावा पुण्ण पाव च आसव तेसि।
सवरणिज्जरबधो मोक्खो य हव ति त अट्ठा ॥

—पचास्तिकाय २।१ ८

१३ जीवाजीवास्रवबन्धसवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्।

—तत्त्वार्थसूत्र १।४

(ख) जीवाजीवाश्रवाश्चव सवरो निर्जरा तथा।
बधो मोक्षश्चेति सप्त तत्त्वान्याहुर्मनीषिण ॥

—सप्ततत्त्वप्रकरणम्-आचार्य हेमचन्द्र

सक्षेप दृष्टि से तत्त्व के दो भेद है। एक जीव और दूसरा अजीव।[१४] जीव का लक्ष्य शिव है किन्तु उसका बाधक तत्त्व अजीव है। जीव शिव बनना चाहता है पर अजीव तत्त्व जीव मे पय पानीवत् घुल मिल जाने के कारण जीव अपना शुद्ध स्वरूप पहचान नही पाता। वह अनादि अनन्त काल से अपने अशुद्ध रूप को ही शुद्ध रूप समझने की भयकर भूल कर रहा है। अपने आपको शुद्ध चतन्यस्वरूप न मान कर शरीर से इद्रियो से मन से कर्मोदयजनित मनुष्यपर्याय आदि से अभिन्न समझना मिथ्या है।

इसे ही जन दार्शनिको ने मिथ्यात्व कहा है। रात्रिसबधी अन्ध कार को दूर किये विना जसे सहस्ररश्मि सूय उदित नही होता वैसे ही मिथ्यात्व रूपी अधकार को नष्ट किये विना सम्यग्दशन उत्पन्न नही होता। जब आत्मा म सम्यग्दर्शन का प्रादुर्भाव होता है तब वह आत्मा जीव और अजीव का पृथकत्त्व समझता है। मै जड नही चेतन हूँ। मेरा स्वरूप शुद्ध चेतना है। मुझ मे राग द्वेष आदि की जो विकृति है वह जड के ससग से हैं। मैं सम्प्रति कर्मों से बद्ध हूँ कि तु कर्मों को

---

१४ (क) जीवरासी चेव अजीवरासी चेव।

—स्थानाङ्ग २।४।९५

(ख) दुवे रासी पन्नत्ता त जहा जीवरासी चेव अजीवरासी चेव।

—समवायांग २।१४९

(ग) जीवा चेवा अजीवा य एस लोए वियाहिए ॥

—उत्तराध्ययन

(घ) पन्नवणा दुविहा पन्नत्ता–त जहा
जीवपन्नवणा य अजीवपन्नवणा य ॥

—पन्नवणा १

१५ मिथ्या विपरीता दृष्टिर्यस्य स मिथ्यादृष्टि

—कमग्रन्थ टीका २

१६ अनिद्ध य तमो नश यथा नोदयतऽशुमान्।
तथानुदभिद्य मिथ्यात्वतमो नोदेति दशनम् ॥

—महापुराण, ११९।९।२०

नष्ट कर एक दिन मैं अवश्य ही मुक्त बनूंगा। इस प्रकार की निष्ठा उसके अन्तर्मानस मे जागृत होती है।

सम्यग्दशन प्राप्ति के दो कारण हैं–एक नैसर्गिक और दूसरा आधिगामिक।[1] निसग का अथ स्वभाव है। जब कर्मों की स्थिति कम होते होते एक कोटाकोटी सागरोपम से भी कम रह जाती है और दशनमोह की तीव्रता मे कमी आ जाती है तब परोपदेश के विना ही जो तत्त्वरुचि उत्पन्न होती है—यथाथ दशन होता है—वह नैसर्गिक सम्यग्दशन है।

श्रवण मनन अध्ययन या परोपदेश स सत्य के प्रति जो निष्ठा जागृत होती है वह आधिगमिक सम्यग्दशन है। प्रस्तुत भेद बाह्य निमित्तविशेष के कारण ही है। दशनमोह का विलय जो अन्तरग कारण है वह दोनो प्रकार के सम्यग्दर्शन मे अनिवाय है।

एक यात्री यात्रा के लिए चला। पथभ्रष्ट हो गया इतस्तत परिभ्रमण करता हुआ स्वत पथ पर आगया यह नसर्गिक पथ लाभ हुआ।

दूसरा यात्री यात्रा के लिए चला। पथभ्रष्ट होकर इधर उधर भटकता रहा। पथदर्शक से पथ पूछ कर पथ पर आरूढ हुआ यह आधिगमिक पथ-लाभ हुआ। ठीक इसी प्रकार नसर्गिक और आधिगमिक सम्यग्दशन है।

आचाय जिनसेन के अभिमतानुसार दशनालब्धि और काललब्धि सम्यग्दशन की उपलब्धि के बहिरग कारण है तथा करण लब्धि अन्तरग कारण है। जब दोनो की प्राप्ति होती है तभी भव्य जीव सम्यग्दशन का धारक होता है।

---

१७ तन्निसर्गादधिगमाद्वा।

—तत्त्वाथ सूत्र १।३

१ देशनाकाललब्ध्यादि बाह्यकारणसम्पदि।
अन्त करणसामग्र्या भव्या मा स्याद् विशुद्धिकृत्॥

—महापुराण जिनसेन ११६।६।१६६

जब दशन मोह के परमाणुओ का पूण उपशमन होता है तब औप शमिक सम्यक्त्व होता है। केवल विपाकोदय रुक कर प्रदेशोदय होने पर क्षायोपशमिक सम्यकत्व होता है और पण विलय (क्षय) होने पर क्षायिक सम्यकत्व होता है।

यद्यपि प्राप्ति-क्रम के सम्ब ध म कोई निश्चित मत नही है तथापि यह स्पष्ट है कि सद्धा तिक दृष्टि से सव प्रथम क्षायोपशमिक सम्यग् दशन उत्प न होता है। महापुराण और कमग्र थ के अनुसार औप शमिक सम्यग्दशन होता है। कितने ही आचाय दोनो विकल्पो को मा य करते है और कितने ही आचार्यो का यह भी अभिमत है कि क्षायिक सम्यकदशन भी पहले पहल प्राप्त हो सकता है। सम्यग्दशन का सादि अन त विकल्प इसका आधार है।

तत्त्वो के सही श्रद्धान से मिथ्यात्व का नाश होता है और सम्यकत्व की उपल धि होती है। जो आत्मविकास का प्रथम सोपान है जिससे श्रावक धर्म या श्रमण धम को ग्रहण करने के लिए कदम आगे बढते है।[२१]

सम्यग्दशन जीवन की अमूल्य निधि है। जिसे यह अमूल्य निधि प्राप्त हो जाती ह वह भगी भी देव है। तीथङ्करो ने उसे देव कहा

---

१६ क्षयाद् दशनमोहस्य सम्यकत्वादानमादित ।
जन्तोरनादिमि यात्वकलङ्ककलिलात्मन ॥

—महापुराण ११७।६।२ ०

२ मोख महल की परथम सीढी या विन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहै सो दशन जानो भव्य पवित्रा ॥

—प दौलतराम छहढाला

(ख) दशन ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते
दशन कणधार त मोक्षमाग प्रचक्षते ।

—समन्तभद्र रत्नकरण्डश्रावकाचार

२१ नत्थि चरित्त सम्मत्तविहूण दसणे उ भइयव्व ।
सम्मत्तचरित्ताइ जुगव पुव्व व सम्मत्त ॥

—उत्तराध्ययन अध्य २८ गा २९

है। राख से आच्छादित अग्नि का तेज तिमिर नही बनता वह ज्योतिपुञ्ज ही रहता ह।[22] मानवता का सार ज्ञान है और ज्ञान का आधार सम्यग्दशन है।[23]

कहा जाता है कि श्रीकृष्ण के पास सुदशन चक्र था जिससे सम्पूर्ण शत्रुओ को पराजित करके त्रिखण्ड के अधिपति बन गये। आत्मारूपी कृष्ण के पास भी यदि सम्यग्दशनरूपी सुदशन चक्र है तो वह भी कषाय रूपी शत्रुओ को पराजित कर एक दिन त्रिलोकीनाथ बन सकता है।

महापुरुषो के विचारो का यह निथरा हुआ निचोड है—धर्मरूपी मोती सम्यग्दशन रूपी सीपी मे ही पनपता है।



---

२२ सम्यगदर्शनसम्पन्नमपि मातगदेहजम्।
देवा देव विदुर्भस्म-गूढागारान्तरौजसम्॥

—रत्नकरण्डश्रावकाचार २८

२३ नाण नरस्स सार सारो वि नाणस्स होइ सम्मत्त।

—दशन पाहुड–गा ३१

छह | साधना का मूलाधार

अध्यात्मसाधना मे सम्यग्दशन सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र – इन तीनो का गौरवपूण स्थान ह। दष्टि की विशुद्धि से ज्ञान विशुद्ध होता ह और ज्ञान की विशद्धि से ही चारित्र निमल होता ह। अत स त-सस्कृति के प्राण प्रतिष्ठापक भगवान् महावीर ने साधना के कठोर कण्टकाकीण महामाग पर बढने के पूव दृष्टि विशुद्धि की प्रबल प्रेरणा प्रदान की है। साधना की दाष्ट से सम्यग्दशन का प्रथम स्थान ह सम्यग्ज्ञान का द्वितीय और सम्यक चारित्र का तृतीय ह।

सम्यग्दशन

आत्मा को आत्मविस्मृति के गहन अ धकार से निकालकर

---

१ तिविहे सम्मे पण्णत्त त जहा-णाणसम्मे दसणसम्मे चरित्तसम्मे।

—स्थानाङ्ग ३।४।११४

२ नादसणिस्स नाण

—उत्तराध्ययन २८।३

३ नाणेण विना न हु ति चरणगुणा।

—उत्तराध्ययन २८।३

४ जेयाऽबुद्धा महाभागा वीरा असमत्तदसिणो।
असुद्ध तेसि परक्कत सफल होई सव्वसो॥

—सूत्रकृताङ्ग अ ८ गा २२

५ सम्मद्द सण पढम सम्मनाण बिइज्जिय
तइय च स मचारित्त एगभूयमिम तिग।

—महानिशीथ २

आत्म भाव के आलोक से आलोकित करने वाली विवेकयुक्त दृष्टि ही True Faith सम्यग्दशन है। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो आत्म विकास की दृष्टि से किया गया जीव अजीव पुण्य पाप आस्रव सवर निजरा बध और मोक्ष आदि तत्त्वो का यथाथ श्रद्धान[6] सम्यग्दशन है। श्रद्धा जीवन का सम्बल है। व्यावहारिक दृष्टि से जिन की वाणी म जिनके उपदेश मे जिसको दृढ निष्ठा है वही सम्यग्दर्शी है।

धम का मूल सम्यग्दशन है। यदि मूल मे भूल है सम्यग्दशन का अभाव है तो सभी क्रियाए ससार का क्षय न कर अभिवृद्धि ही करती है। सम्यग्दर्शी पाप का अनुबन्धन नही करता। जो सम्यग्दशन से सपन्न है वह कम से बद्ध नही होता और जो सम्यग्दशनविहीन है वही ससार मे परिभ्रमण करता है। चारित्र

---

६ स्थानाङ्ग ६

७ (क) तहियाण तु भावाण सब्भावे उवएसण।
भावेण सद्दहतस्स सम्मत्त त वियाहिय॥

—उत्तराध्ययन २८।१५

(ख) तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम्।

—तत्त्वार्थ सूत्र १।२

तमेव सच्च णीसक ज जिणेहि पवेइय।

—आचारांग ५।१६३ उद्द ५

(ख) णिग्गथे पावयणे अठटे अय परमठटे सेसे अणटठ।

—भगवती २।५

९ दसणमूलो धम्मो।

—दशन पाहुड

१ नत्थि चरित्त सम्मत्तविहूण।

—उत्तराध्ययन अ २८ गा २९

११ सम्मत्तदसी न करेइ पाव।

—आचारांग १।३।२

१२ सम्यग्दर्शनसम्पन्न कर्मभि न निबद्धयते।
दर्शनेन विहीनस्तु ससार प्रतिपद्यते॥

—मनुसहिता ६।७४

से भ्रष्ट व्यक्ति का निर्वाण सम्भव है पर सम्यग्दर्शन से चलित आत्मा का निर्वाण असम्भव है। [3]

आध्यात्मिक क्षेत्र मे सम्यग्दशन की अपार महिमा गाई गई है। ज्ञातृ धमकथा मे इसे रत्न की उपाधि प्रदान की गई है। जिस साधक को इस चितामणि दिव्यरत्न की समुपलब्धि हो जाती है वह चाण्डाल भी देव है। तीथङ्करो ने उसे देव माना है। राख स आ छादित आग की तरह उसके अन्तरतर मे ज्योतिपुञ्ज जाज्ज्वल्यमान रहता है।

सम्यग्दर्शी साधक आत्म अभ्युदय के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता रहता है। वह कभी परिश्रान्ति का अनुभव नही करता। वह यथाथ द्रष्टा होता है। उसके अन्तर्मानिस मे सत्य की जगमगाती ज्योति निरन्तर जलती रहती है। सत्य ही लोक मे सारभूत है [६] सत्य ही भगवान् है। सत्य भगवान् की आराधना साधना ही उसके जीवन का ध्यय होता है। सत्य की पर्युपासना करने वाले सम्यग्दृष्टि के लिए मिथ्याश्रुत भी सम्यक श्रुत बन जाते हैं। [१] सत्य

---

१३ दसणभट्ठा भट्ठा दसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाण।
सिज्झति चरियभट्ठा दसणभट्ठा ण सिज्झति ॥

—षट्प्राभृत

१४ अपडिलद्धसम्मत्तरयणपडिलभेण

—ज्ञातृ धमकथा अ १ सू ४५

१५ सम्य दशनसम्पन्नमपि मातगदेहजम्।
देवा देव विदुभस्मगूढागारान्तरौजसम् ॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार २८

१६ सच्च लोगम्मि सारभूय।

—प्रश्नव्याकरण सूत्र

१७ सच्च खु भगव।

—प्रश्नव्याकरण सूत्र

१ सम्मदिट्ठिस्स सुअ सुयनाण
मिच्छादिट्ठिस्स सुअ सुअ अन्नाण

—नन्दीसुत्त

साधक राग द्व षात्मक ससार से पार हो जाता है।[१९] वह देवगति के सिवाय अन्य किसी भी गति का आयु बन्ध नही करता।[२०] वह अवर्णनीय और अचिन्त्य आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव करता है। एक आचार्य के शब्दो मे सम्यग्दर्शन यथार्थ मे बहुत सूक्ष्म है और वह वाणी से परे है।[२१]

सम्यग्दर्शन शब्द मे विराट अर्थ सन्निहित है। सम्यक्त्व सच्चाई हकीकत रास्ती ट्रथ ऋत समत्व योग श्रद्धा आदि शब्दो से जो आशय निकलता है उस सबका समावेश इसमे हो जाता है। प्राय सभी दर्शनो और विचारको ने सम्यग्दर्शन को अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार महत्त्व प्रदान किया है और उसे मुक्ति का मुख्य कारण माना है। समन्वयदृष्टि से चिन्तन करने पर सूर्य के उजाले की भाँति स्पष्ट परिज्ञान होता है कि भाषा मे अन्तर होने पर भी उनका भाव समान ही है।

गीता ने योग[२२] को सम्यग्दर्शन कहा है तो न्यायदर्शन[२३] ने तत्त्वज्ञान को। सांख्यदर्शन[२४] ने भेदज्ञान को सम्यग्दर्शन माना है तो योगदर्शन[२५] ने विवेकख्याति को। बौद्धदर्शन ने क्षणभगुरता और चार आर्य सत्यो का ज्ञान सम्यग्दर्शन स्वीकार किया है[२६] तो वेदो ने ऋत को।

---

१९ सच्चस्स आणाए उवट्ठिओ मेहावी मार तरइ।

—आचारांग

२० भगवती ३०।१

२१ सम्यक्त्व वस्तुत सूक्ष्ममस्ति वाचामगोचरम्।

२२ समत्व योग उच्यते।

—गीता २।४८

२३ न्यायसूत्र ४।१।३ ६

२४ सांख्य कारिका ६४

२५ योग दर्शन १।१३

२६ बौद्ध दर्शन

सम्यग्दर्शन जीवन की श्रेष्ठ कला है। आत्मा की सहज अभिव्यक्ति है। एतदर्थ ही जैन संस्कृति के इस मौलिक तत्त्व को सभी विचारकों ने अपने यहाँ स्थान दिया है।

सम्यग्ज्ञान

ज्ञान आत्मा का निज गुण है। ज्ञान के अभाव में आत्मा की कल्पना करना संभव नहीं। न्याय वैशेषिक दर्शन की तरह जैन दर्शन ने ज्ञान को औपाधिक या आगन्तुक नहीं माना किन्तु आत्मा का मौलिक गुण माना है। ज्ञान आत्मा ही है आत्मा से अभिन्न है।[२] जो आत्मा है वह विज्ञाता है और जो विज्ञाता है वह आत्मा है।[२] व्यवहार नय से ज्ञान और आत्मा में भेद है किन्तु निश्चयनय से आत्मा और ज्ञान में कोई भेद नहीं है। अनन्त ज्ञानशक्ति आत्मा में स्वभाव से ही विद्यमान है किन्तु ज्ञानावरण कर्म से आच्छादित होने के कारण उसका पूर्ण प्रकाश प्रकट नहीं होने पा रहा है। ज्यों ज्यों आवरण हटता जाता है त्यों-त्यों ज्ञानप्रकाश भी बढ़ता जाता है पर आत्मा की ऐसी अवस्था कभी नहीं होती कि उसमें किंचित् भी ज्ञान का आलोक न हो। किन्तु सम्यग्दर्शन सहचरित न होने से वह ज्ञान अज्ञान अर्थात् मिथ्याज्ञान कहलाता है।

आत्मा क्या है? कर्म क्या है? बंधन क्या है? कर्म आत्मा के साथ क्यों बद्ध होते हैं? आदि विषयों का यथार्थ रूप से परिज्ञान ही T e k wl dg सम्यग्ज्ञान है। अयथार्थ बोध मिथ्याज्ञान है।

---

२७ णाणे पुण णियमं आया।

—भगवती १२।१

२ जे आया से विण्णाया जे विण्णाया से आया।

—आचारांग ५।५।१६६

२९ समयसार–६।७

३ सव्वजीवाणंपि य णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडियो।

—नन्दी सूत्र ४३

३१ द्रव्य संग्रह

दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो प्रत्येक द्रव्य का उनकी अनन्त गुण पर्यायो सहित और अपने विशुद्ध आत्मस्वरूप का यथार्थ ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।[32]

ज्ञान उस तृतीय नेत्र के समान है जिसके अभाव मे जीव शिव नही बन सकता आत्मा भवबन्धनो से विमुक्त नही हो सकता। महान् विचारक शेक्सपियर के शब्दो मे ज्ञान वह पख है जिससे हम स्वर्ग मे उडते हैं।[33] कन्फ्यूशियस ने ज्ञान को आनन्दप्रदाता माना है।[3] वस्तुत सम्यग्ज्ञान ही सच्चे सुख का कारण है। जब तक सम्यग्ज्ञान नही होता तब तक विकारो का विनाश होकर विचारो का विकास नही होता।

वैदिक दार्शनिको ने भी सम्यग्ज्ञान को महत्त्व दिया है[3] और उसे ब्रह्मविद्या कहा है। अध्यात्मविद्या ही समस्त विद्याओ की प्रतिष्ठा है।[6] वही उन सब मे प्रमुख है। उनको दीपक के समान आलोक दिखाने वाली है। और परिपूर्णता प्राप्त करानेवाली है।

---

३२ ज जह थक्कउ दव्व जिय त तह जाणइ जोजि।
अप्पह केरउ भावडउ णाणु मुणि जहि सोजि॥

—परमात्म प्रकाश २।२६

३३ ज्ञानगगा अयोध्याप्रसाद गोयलीय

३४ अमर वाणी

३५ सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

—मुण्डकोपनिषद्

३६ ब्रह्मविद्या सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्।

—मुण्डकोपनिषद् १।१।१

३७ सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञान परं स्मृतम्।
तद्ध्यग्र्य सर्वविद्याना प्राप्यते ह्यमृत तत॥

— मनुस्मृति १२–८५

३८ प्रदीप सर्वविद्यानामपाय सर्वकर्मणाम्।
आश्रय सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता॥

—कौटिलीय अर्थशास्त्र १।२

यही सर्वोत्कृष्ट धर्म है और ज्ञानों में श्रेष्ठ ज्ञान है। इस एक का परिज्ञान होने पर कुछ भी ज्ञातव्य नहीं रह जाता। इस आत्मविद्या के द्वारा राग-द्वेष की प्रहाणि की जाती है और यही सर्वोत्तम राजविद्या है।[४२] न्यायदर्शन मिथ्याज्ञान मोह आदि को संसार का मूल मानता है[४३] और सांख्य दर्शन विपर्यय को। बौद्ध दर्शन अविद्या राग-द्वेष को संसार का प्रधान कारण स्वीकारता है।[४५] जैन दृष्टि से साधना के क्षेत्र में सम्यग्ज्ञान का वही महत्त्व है जैसा सम्यग्दर्शन का है। ज्ञान प्रकाशक है। प्रथम ज्ञान और फिर चारित्र प्रादुर्भूत होता है।

सम्यक् चारित्र

आत्मस्वरूप में रमण करना और जिनेश्वरदेवों के वचनों पर

---

३६ (क) अयं तु परमो धर्मं यद्योगेनात्मदर्शनम्।

—याज्ञवल्क्य १।१।८

(ख) आत्मज्ञानं परं ज्ञानम्।

—महाभारत शान्तिपर्व

४० यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यत् ज्ञातव्यमवशिष्यते।

—गीता ७।२

४१ आन्वीक्षिक्यात्मविद्या स्यादीक्षणात् सुखदुःखयोः।
ईक्षमाणस्तया तत्त्वं हर्षशोकौ व्युदस्यति॥

—शुक्रनीति १।१५२

४२ राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।

—गीता ६।२

४३ न्यायसूत्र ४।१ ३ ६

४४ सांख्य कारिका ६४।३

४५ बुद्ध वचन

४६ णाणं पयासयं।

—महानिशीथ ७

४७ पढमं णाणं तओ दया।

—दशवैकालिक ४

पूर्ण आस्था रखते हुए अच्छी तरह उन्ही के अनुरूप आचरण करना True Conduct सम्यक चारित्र है।

ज्ञान नेत्र है चारित्र चरण है। पथ का अवलोकन तो किया पर चरण उस ओर नही बढे तो अभीप्सित लक्ष्य की प्राप्ति असभव है। स्विनांक ने लिखा है— विना चारित्र के ज्ञान शीशे की आंख की तरह है सिर्फ दिखलाने के लिए और एक दम उपयोगितारहित। ज्ञान का फल विरक्ति है। ज्ञान होने पर भी यदि विषयो मे अनुरक्ति बनी रही तो वह वास्तविक ज्ञान नही है।

सम्यक चारित्र जन साधना का प्राण ह। विभावगत आत्मा को पुन शुद्ध स्वरूप मे अधिष्ठित करने के लिए सत्य के परिज्ञान के साथ जागरूक भाव से सक्रिय रहना आचार-आराधना है। चारित्र एक ऐसा चमकता हीरा ह जो हर किसी पत्थर को घिस सकता ह। जीवन का लक्ष्य सुख नही चारित्र ह। उत्तम व्यक्ति शब्दो से सुस्त और चारित्र से चुस्त होता है।[५] बौद्ध साहित्य मे सम्यक चारित्र को ही सम्यक व्यायाम कहा है।

समन्वय

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र—ये साधना के तीन अग है। अन्य दर्शनकार केवल साधना के एक एक अग को प्रमुखता देते है—किन्तु जैन दर्शनकार तीनो के समन्वय को। भगवान् श्री महावीर ने चार प्रकार के पुरुष बताए हैं—

एक शीलसम्पन्न ह श्रुतसम्पन्न नही।
दूसरा श्रुतसम्पन्न ह शीलसम्पन्न नही।
तीसरा शील सम्पन्न ह और श्रुत सम्पन्न ह।
चौथा न शील सम्पन्न ह न श्रुत सम्पन्न है।

---

४८ ज्ञानस्य फलं विरति

४९ बीचर

५ कन्फ्यूशियस

प्रथम व्यक्ति मोक्षमाग का देश आराधक ह। दूसरा देश विराधक ह। तीसरा सव आराधक ह[४] और चौथा सर्व विराधक ह।

इस चतुभङ्गी मे भगवान् ने बताया कि कोरा शील कल्याण की एकागी आराधना ह। कोरा ज्ञान भी इसी प्रकार का है। शोल और ज्ञान दोनो ही नहो है तो वह कल्याण की आराधना है ही नही। शील और ज्ञान दोनो की सगति ह तो वह कल्याण की सर्वाङ्गीण आराधना ह।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति चतुथ गुणस्थान मे हो जाती है। सातव गुणस्थान तक वह अवश्य ही वह पूर्णता प्राप्त कर लेता है। सम्यग्ज्ञान की पूर्णता तेरहव मे और सम्यक चारित्र की पूर्णता चौदहव गुणस्थान म होती है। जब तीनो पूर्ण होते है तभी साध्य की सिद्धि होती है अचिन्त्य अविनाशी मोक्ष पद की प्राप्ति होती है।[६] पूर्ण विद्या और चारित्र का समन्वय ही मोक्ष है।



---

५१ भगवती ।१

५२ भगवती ।१

५३ भगवती ८।१

५४ भगवती ८।१

५५ भगवती ।१

५६ सद्दृष्टिज्ञानचारित्रत्रय य सेवते कृती।
रसायनमिवातक्य सोऽमृत पदमश्नुते ॥

—महापुराण पर्व ११ श्लोक ५९

५७ आहसु विज्जाचरण पमोक्ख।

—सूत्रकृताङ्ग १।१२।११

सात | श्रमणसस्कृति और तप

श्रमण सस्कृति तप प्रधान सस्कृति है। तप श्रमण सस्कृति का प्राण-तत्त्व है। जीवन की कला है। आत्मा की अन्त स्फूत पवित्रता है जीवन का आलोक है। तप की महिमा और गरिमा का जो गौरव गान श्रमण सस्कृति ने गाया है वह अनूठा है अपूव है।

श्रमण सस्कृति का आधार श्रमण है। जनागमो मे अनेक स्थलो पर समण शब्द व्यवहृत हुआ है जिसका अर्थ साधु है। श्रमण शब्द के तीन रूप होते है—श्रमण समन और शमन। श्रमण शब्द श्रम धातु से निष्पन्न होता है जिसका अथ है—श्रम करना।

दशवकालिक वृत्ति मे आचाय हरिभद्र ने तप का अपर नाम श्रम भी दिया है। श्रमण का अथ तपस्या से खिन्न[2] क्षीण काय तपस्वी किया है। जो व्यक्ति अपने ही श्रम से उत्कष की प्राप्ति करता है वह श्रमण है।

---

१ श्राम्यन्तीति श्रमणा तपस्यन्तीत्यर्थं।

—दशवैकालिक वृत्ति १।३

२ श्रम तपसि खेदे।

३ श्राम्यति तपसा खिद्यत इति कृत्वा श्रमण।

—सूत्रकृताङ्ग १।१६।१ शीलाङ्क टीका पत्र २६३

श्रमण सस्कृति ने तप को धम माना है। स्थानाङ्ग समवायाङ्ग[6] मे दश विध धम का जो उल्लेख है उसम तप भी एक है। मोक्ष माग की साधना करने वाले साधक के लिए तप की साधना अनिवाय है।

आगम साहित्य का पयवक्षण करने पर ज्ञात होता है कि श्रमण मस्कृति का श्रमण श्रमणत्व को स्वीकार कर तप कम का आचरण करता है। सभी तीथकर तप के साथ ही प्रव्रज्या लते है। क्याकि

४ धम्मा मगलमुक्कि अहिंसा सजमो तवो।
—दशवकालिक १।

५ खती मुत्ती अ जव मद्दवे लाघवे सच्चे।
सजमे तवे चियाए बभचेरवासे ॥
—स्थानाङ्ग ७१२

६ खती य मद्दवज्जव मुत्ती तव सजमे य बोद्धव्वे।
स च सोय आकिचण च बभ च जइ धम्मो ॥
—समवायाङ्ग १

७ नाण च दसण चेव चरित्त च तवो तहा।
एय म गमणुप्पत्ता जीवा गच्छन्ति सोग्गइ ॥
—उत्तराध्ययन २ ।३

जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवाग छइत्ता एव जहा उसभदत्तो तहेव पव्वइओ णवर पचहि पुरिससएहि सद्धि तहेव जाव सामाइयमाइयाइ एक्कारसअगाइ अहि जइ अहि जइत्ता बहूहि चउ थ छट्ठट्ठ मजाव मासद्धमासक्खमणेहि विचित्त हि तवोकम्मेहि अप्पाण भावेमाणे विहरइ।
—भगवती ६।३३

(ख) भगवती २।१।६ ६

६ सुमइ थ णिच्चभत्त ण णि गओ वासुपु ज चोत्थेण।
पासो म ली य अट्ठमेण सेसा उ छट्ठ ण ॥
—समवायाङ्ग सूत्र १६८

(ख) सुमइ थ निच्चभत्त ण नि गतो वासुपुज्ज जिण चउ थेण।
पासो म लीवि य अट्ठमेण सेसा उ छटठेण ॥
—आवश्यक नियु क्ति गा २५

तप मगल ही नही उत्कृष्ट मगल है।[1] भगवान् श्री ऋषभदेव ने एक हजार वष तक छद्मस्थावस्था मे तप की साधना की।[11] भगवान् श्री महावीर ने भी बारह वष और तेरह पक्ष तक उग्र तप तपा।[12] इस लम्बी अवधि म उन्होने केवल तीन सौ उनपचास दिन आहार ग्रहण किया।[13] शेष दिन वे निजल और निराहार रहे। आचाराग आवश्यक नियुक्ति आवश्यक चूणि आवश्यक हारिभद्रीयावत्ति आवश्यक मलयगिरिवत्ति त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्र महावीर चरिय प्रभति ग्रन्थो मे भगवान् श्री महावीर के उग्र तप का जो रोमाचकारी वणन किया है उसे पढकर पाठक विस्मित हो जाता है। आचाय भद्रबाहु के शब्दो मे अन्य तीथङ्करो की अपेक्षा महावीर का तप कम अत्युग्र था।

दिगम्बर आचाय गुणभद्र के अभिमत से सुमतिनाथ ने भी बेला के तप से दीक्षा ग्रहण की थी —

दीक्षा षष्ठोपवासेन सन्हेतुकवनेऽगृहीत ।
सिते राज्ञा सहस्रेण सुमतिनवमोदिने ॥

—उत्तर पुराण पर्व ६१ श्लो ७ प ३

१ दशवकालिक १।१

११ उसभेण अरहा कोसालए एग वाससहस्स निच्च वोसट्ठकाये चियत्तदेह जाव अप्पाण भावेमाणस्स एक्क वाससहस्स विइक्कत ।

—कल्पसूत्र सू १९६ प ५८
(पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित)

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सू ४ –४१ पृ ४।

१२ आवश्यक नियुक्ति गा ५२६ से ५३५

(ख) आवश्यक हारिभद्रीयावत्ति प २२७–२२९

(ग) त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्र १ ।४।६५२–६५७

(घ) महावीर चरिय गुणचन्द्र ७।१–८ प २५

१३ तिण्णि सए दिवसाण अउणापन्ने य पारणाकालो ।

—आवश्यक नियुक्ति ५३४

१४ उग्ग च तवो कम्म विसेसओ वद्धमाणस्स ।

—आवश्यक नियुक्ति गा २४०

भगवान् महावीर के जीवन का तलस्पर्शी अध्ययन करने पर नि सकोच कहा जा सकता है कि वे तपोविज्ञान के अद्वितीय आचार्य थ। उन्होने अपने समय मे प्रचलित देहदमनरूप बहिमुख तप का आन्तरिक साधना के साथ सामजस्य स्थापित किया और उसे आन्तरिक एव व्यापक स्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार वे तप साधना के महान् सस्कर्त्ता और साथ ही पुरस्कर्त्ता भी हुए। उनकी अनेक बहुमूल्य देनो म तपविषयक देन भी कम महत्त्व की नही है।

जनागमो की तरह बौद्ध वाङमय मे भी अनेक स्थलो पर महावीर के शिष्यो के लिए निगठ के साथ तपस्सी दिग्घ तपस्सी विशेषण प्रयक्त हुए है। इससे भी स्पष्ट है कि महावीर स्वय कितने उग्र तपस्वी रहे होगे। अनुत्तरोपपातिक अन्तकृत् दशा[१] भगवती आदि आगमो मे महावीर के शिष्य और शिष्याओ का वरान है। उन्होने रत्नावली कनकावली मुक्तावली लघुसिंहनिष्क्रीडित भिक्ष प्रतिमा लघु सवतोभद्र महासवतोभद्र भद्रोत्तर प्रतिमा आयबिल वधमान गुणरत्न सवत्सर, चन्द्र प्रतिमा सलेखना आदि महान तप करके देह को जजरित बनाया था।[२] तवसूरा अणगारा + अनगार तप मे शूर होते है यह जन परम्परा का प्रसिद्ध वाक्य है।

---

१५ उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे ओराले घोरे घोरगुणे घोर तवस्सी।

—भगवती शतक १ उद्द १

१६ मज्झिमनिकाय ५६ उपालिसुत्त २।१।६

१७ अनुत्तरोपपातिक वग ३

१८ अन्तकृत्दशा वग ६ अ ३ वग अ १-१

१९ भगवती २।१

२ अन्तकृत्दशा।

+ खतिसूरा अरिहन्ता तवसूरा अणगारा।
दाणसूरे वेसमणे जुद्धसूरे वासुदेवे॥

—ठाणाङ्ग ४।३।३१३

जैन श्रमण के लिए जहाँ ज्ञान-दर्शन-चारित्रसम्पन्न विशेषण प्रयुक्त हुए है वहाँ उसे तपसम्पन्न भी कहा गया है।[२१]

तप जीवनोत्थान का प्रशस्त पथ है। तप की उत्कृष्ट आराधना साधना से तीथङ्कर पद प्राप्त होता है। सभी तीथङ्करो ने अपने पूव भवो मे तप की साधना की। श्रमण भगवान् श्री महावीर के जीव ने न दन के भव मे एक लक्ष वष तक निरन्तर मासखमण की तपस्या की।[२२] उन मासखमणो की सख्या ग्यारह लाख साठ हजार थी।

वदिक सस्कृति ने भी साधक के लिए तप की साधना आवश्यक मानी है। योग दशन ने तप को क्रियायोग मे स्थान दिया है।[२]

---

२१ भगवती।

२२ सयसहस्स सव्वत्थ मासभत्तण।

—आवश्यक नियु क्ति गा ४५

(ख) एक्कारस अगाइ अहिज्जित्ता तत्थ मास मासेण खममाणो एग वाससहस्स परियाग पाउणित्ता—

—आवश्यक चूर्णि प २३५
जिनदासगणी महत्तर

(ग) सयसहस्स त्ति वषशतसहस्र यावदिति। कथ? सवत्र मासभक्तेनेति अनवरतमासोपवासेनेति।

—आवश्यक मलयगिरिवत्ति प २५२

(घ) तत्र वषलक्ष सवदा मासक्षपणेन तपस्तप्त्वा।

—समवायाङ्ग अभयदेव वत्ति १३६

(ङ) मासोपवास सतत श्राम य स प्रकषयन्।
व्यहार्षीद्गुरुणा साध ग्रामाकरपुरादिषु॥

—त्रिषष्ठि १।१।२२१

२३ शौचसन्तोषतप स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमा।

—योगदशन २।३२

२४ तप स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोग।

—योगदशन २।१

उपनिषद्[२] गीता[२] और मनुस्मृति ने भी तप और स्वाध्याय पर पर बल दिया है। किन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि वैदिक संस्कृति की तप साधना में और जैन संस्कृति की तप साधना में महान् अन्तर है।

जैन संस्कृति ने तप को दो भागों में विभक्त किया है—एक बाह्य तप और दूसरा आभ्यन्तर तप।

---

२५ स तपोऽतप्यत।

—बृहदारण्यक १।२।६

(ख) तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राणि।

—बृहदारण्यक ३।८।१

(ग) यज्ञेन दानेन तपसा।

—बृहदारण्यक ४।४।२२

(घ) तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च

—तैत्तिरीय उपनिषद् १।९।१

२६ श्रद्धया परया तप्तं तपः

—गीता १७।१७

२ क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेनाऽकार्यकारिणः।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः॥

—मनुस्मृति ५।१०६

(ख) अद्भिर् गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

—मनुस्मृति ५।१०८

(ग) तपश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम्।

—मनुस्मृति ६।७५

(घ) तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्।
तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

—वहीं १२।१०४

२ सो तवो दुविहो वुत्तो बाहिरब्भन्तरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो एवमब्भन्तरो तवो॥

—उत्तरा ३०।७

जिस तप मे शारीरिक क्रिया की प्रधानता होती है और जो बाह्य द्रव्यो की अपेक्षायुक्त होने से दूसरो को दृष्टिगोचर होता है वह बाह्य तप है। और जिस तप म मानसिक क्रिया की प्रधानता होती है अ तरवृत्तियो की परिशुद्धि मुख्य होती है और जो मुख्य रूप से बाह्य द्र यो की अपेक्षा न रखने के कारण दूसरा को भी नही दीखता है वह आभ्यन्तर तप है।

बाह्य तप के छह भेद हैं —

(१) अनशन—आहार जल आदि का एक दिन या अधिक दिन अथवा जीवन पय त के लिए त्याग करना अनशन है। इत्वरिक—अ पकालिक और यावत्कथिक याव‌जीवित ये मुख्य रूप से दो भेद

---

२६ बाह्यतप —बाह्यशरीरस्य परिशोषणेन कमक्षपणहेतु वादिति
आभ्य तर—चित्तनिरोधप्राधा यन कमक्षपणहतु वादिति।

—समवायाङ्ग सम ६ की अभयदेव वृत्ति

(ख) अ भतरए—अभ्य तरम्—आ तरस्यव शरीरस्य तापना सम्यग्दृ टभिरेव तप तया प्रतीयमानत्वा च बाहिरए त्ति बाह्यस्यव शरीरस्य तापनामि यादृष्टिभिरपि तपस्तया प्रतीयमानत्वाच्चेति।

—औपपातिक सूत्र ३ की अभयदेव वृत्ति

(ग) बाह्यद्रव्यापेक्ष वा परप्र यक्ष वा च बाह्य वम् कथमस्याभ्यन्तर वम् ? मनोनियमनाथत्वात्।

—तत्त्वाथसूत्र ६।१६-२ सर्वार्थसिद्धि

३ अणसणमूणोयरिया भिक्खायरिया य रसपरि चाओ।
कायकिलेसो सलोणया य ब झो तवो होइ॥

—उत्तराध्ययन ३ ।

(ग) अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसख्यानरसपरि यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्य तप।

—तत्त्वाथसूत्र अ ६ सू १६

(ग) मूलाचार—वट्टकेर ३४६

(घ) ठाणाङ्ग ६। सू ५११

(ङ) प्रवचनसारोद्धार गाथा २७ -२७२

है। इत्वरिक तप अवकाक्षासहित होता है और यावत्कथिक अवकाक्षा रहित होता है।[31] इन दोनो के भी अनेक भेद प्रभेद हैं।

(२) ऊनोदरिका—आगम साहित्य मे ऊनोदरिका[32] अवमोदरिका[33] और अवमौदय[34] ये तीन नाम उपलब्ध होते हैं। आहार की मात्रा से कम खाना कुछ भूखा रहना कषायो को कम करना उपकरणो को कम करना ऊनोदरिका है। मुख्य रूप से ऊनोदरिका तप के तीन भेद है—(१) उपकरण अवमोदरिका (२) भक्त पान अवमोदरिका (३) और भाव अवमोदरिका। इन तीनो के भी अनेक भेद प्रभेद प्रतिपादित किये गये है।

(३) भिक्षाचर्या—स्थानाङ्ग भगवती उत्तराध्ययन और औपपातिक मे प्रस्तुत नाम प्राप्त है और समवायाग व तत्त्वाथ सूत्र[3] मे

---

३१ इत्तरिय मरणकाला य अणसणा दुविहा भव।
इत्त रय सावकखा निरवकखा उ बिइ जिया॥
—उत्तराध्ययन ३ ।६

३२ समवायाङ्ग सम ६
(ख) भगवती २५।७
(ग) उत्तराध्ययन ३।

३३ (क) स्थानाङ्ग ३।३।१ २
(ख) औपपातिक ३
(ग) भगवती २५।७

३४ (क) उत्तराध्ययन ३ ।१४ २३
(ख) तत्त्वाथ सूत्र ६।१६

३५ तिविहा ओमोयरिया प त उवगरणोमोयरिया भत्तपाणोमोदरिता भावोमोदरिता। —स्थानाङ्ग ३।३।१८२

३६ औपपातिक ३
(ख) भगवती २५।७
(ग) ठाणाङ्ग ३।३।१८२
(घ) उत्तराध्ययन ३

३७ समवायाङ्ग सम ६

३८ तत्त्वाथ सूत्र १६।१६

इसे वृत्ति संक्षेप और वत्तिपरिसख्यान कहा है। अभिग्रह पूर्वक भिक्षा का कम करना वृत्तिसंक्षेप है।[3] अर्थात् जीवन निर्वाह के साधनो का सयम करना। औपपातिक और भगवती[४१] मे इसके तीस भेदो का उल्लेख है। स्थानाङ्ग[२] मे उनके अतिरिक्त दो भेदो का और उल्लेख किया है तथा उत्तराध्ययन[३] मे भी अन्य भेदो का निरूपण है।

(४) रसपरित्याग—घत दूध दही मक्खन आदि रसो का परित्याग करना तथा प्रणीत पान भोजन का वर्जन करना। उमास्वाति ने मद्य मास मधु और मक्खन आदि जो रस विकृतियाँ है उनका प्रत्याख्यान तथा विरस आदि का अभिग्रह रस

(ख) दशवकालिक नियु क्ति गा ४७

३९ भिक्षाचर्या सव तपो निर्जराङ्गत्वादनशनवद् अथवा सामान्योपादानेऽपि विशि टा विचित्राभिग्रहयुक्तत्वेन वृत्तिसंक्षपरूपा सा ग्राह्या।

ठाणाङ्ग ५।३।५१ वत्ति

४ औपपातिक सम ३

४१ भगवती २५।७

४२ ठाणाङ्ग ५।१।३९६

४३ अट्ठविहगोयरग्ग तु तहा सत्तव एसणा।
अभि गहा य जे अन्ने भिक्खायरियमाहिया ॥

—उत्तरा ३ ।२५

४४ खीरदहिसप्पिमाई पणीय पाणभोयण
परिवज्जण रसाण तु भणिय रसविवज्जण।

—उत्तरा ३ ।२६

(ख) घृतादिवष्यरसपरित्यागश्चतुर्थ तप ।

—तत्त्वार्थ ९।१९ सर्वार्थसिद्धि

परित्याग तप माना है इसके भी औपपातिक में नौ भेद बताये है।[६]

(५) कायक्लेश—आसन आतापना विभूषा वर्जन और परिकर्म के द्वारा शरीर को स्थिर करना कायक्लेश तप है। इसके आगमो में कहा पर सात कहा पर दस और कहीं पर बारह भेद निरूपित किये गये हैं।

(६) प्रतिसंलीनता—मन और इन्द्रियों को अपने विषयो से हटाकर अन्तर्मुख करना अनुदीर्ण क्रोधादि कषायो का निरोध करना तथा उदय में आये हुए को विफल करना और स्त्री पशु नपुंसक रहित एकान्त शान्त स्थान में निवास करना प्रतिसंलीनता तप है।

यह (१) इन्द्रिय प्रतिसंलीनता (२) कषाय प्रतिसंलीनता ( ) योग

---

४५ रसपरित्यागोऽनेकविध । तद्यथा—मासमधुनवनीतादीना मद्यरस विकृतीना प्रत्याख्यान विरसरूक्षाद्यभिग्रहश्च ।

—तत्त्वार्थ ९।१९ भाष्य

४६ से किं त रसपरिच्चाए ? अणेगविहे पण्णत्ते । त जहा—निव्वीइए पणीयरसपरिच्चाए ( ) आयबिलिए (४) आयामसित्थभोई (५) अरसाहारे (६) विरसाहारे (७) अन्ताहारे ( ) पन्ताहारे (९) लूहाहारे ।

—औपपातिक सूत्र ३

४७ ठाणा वीरासणाईया जीवस्स उ सुहावहा ।
उग्गा जहा धरिज्जन्ति कायकिलेस तमाहियं ॥

—उत्तरा ३ ।२७

४ ठाणाङ्ग ७।३।५५४

४९ ठाणाङ्ग ५।१। ९६

५ औपपातिक सूत्र

(ख) भगवती २५।७ में भी कायक्लेश के अनेक भेद बताये है।

प्रतिसलीनता (४) विविक्तशयनासनसेवनता के रूप मे चार प्रकार का है। और इनके भी अनेक उपभेद है।[५१]

आभ्यन्तर तप के भी छह भेद हैं—[२]

(७) प्रायश्चित्त—पूर्वकृत दोषो की आलोचना कर आत्मविशुद्ध यथ प्राय। चत ग्रहण करना। प्रायश्चित्त पाप का छेदन करता है और चित्त को विशुद्ध करता है।[५]

प्रायश्चित्त तप के भी दस भेद है—(१) आलोचनाह (२) प्रति क्रमणाह ( ) तदुभयाह (४) विवकाह (५) व्युत्सर्गाह (६) तपाह (७) छदा (८) मूलाह (९) अनावस्था याह (१) पाराचिताह।[५]

५१ इदियकसायजोगे पड च सलीणया मुणेयव्वा।
त जा विवित्तचरिया पन्नत्ता वीयरागेहि॥
—उत्तरा ३ ।२८ नेमिचन्द्रीय टीका मे उद्धृत

५२ पायच्छित्त विणओ वेयावच्च तहेव सज्झाओ।
झाण च विउस्सग्गो एसो अभितरो तवो॥
—उत्तराध्ययन ३ ।३

(ख प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्।
तत्त्वार्थ सूत्र अ ९ सू २

(ग) स्थानाङ्ग ६ सू ५५१

(घ) मूलाचार वट्टकेर गा ३६

(ङ) प्रवचन सारोद्धार गा २७ ७९

५३ आलोयणारिहाईय पायच्छित्त तु दसविह।
ज भिक्खू वहई सम्म पायच्छित्त तमाहिय॥
—उत्तरा ३

५४ पाप छिनत्ति यस्मात् प्रायश्चित्तमिति भण्यते तस्मात्
प्रायेण वापि चित्त विशोधयति तेन प्रायश्चित्तम्।
—दशवकालिक १।१ हारिभद्रीया वृत्ति मे उद्धृत

५५ आलोयणपडिक्कमणे मीसविवेगे तहा विउस्सग्गे
तवछेअमूलअणवट्टया य पारचिए चेव।
—दशवकालिक १।१ हारिभद्रीया वृत्ति मे उद्धृत

(८) विनय—ज्ञान दर्शन चारित्र आदि सद्गुणों मे बहुमान रखना विनय है। विनय के सात प्रकार है—(१) ज्ञान का विनय (२) श्रद्धा का विनय (३) चारित्र का विनय (४) मन विनय (५) वचन विनय (६) काय विनय और (७) लोकोपचार विनय।[५६] इनके भी फिर अनेक भेद प्रभेद है।

(९) वयावत्य—आचार्य उपाध्याय तपस्वी शक्षक ग्लान गण कुल सघ साध आदि की आहार आदि के द्वारा सेवा करना।

(१) स्वाध्याय—विधिपूर्वक आत्म विकासकारी अध्ययन

(ख) औपपातिक सम ३
(ग) स्थानाङ्ग ७३३
(घ) भगवती शतक २५ उ ७
(ङ) व्यवहार भाष्य गा ५३ पृ २

५६ (क) भगवती २५।७
(ख) ठाणाङ्ग–५८५
(ग) औपपातिक
(ग) धम सग्रह अध्ययन ३ व्रतातिचार प्रकरण
(ङ) णाणे दसणचरणे मणवइकाओवयारिओ विणओ।
णाण पचयगारो मइणाणा ण सद्दहण ॥
भत्ती तह बहुमाणो तद्दिट्ठ थाण स मभावणया।
विहिगहण भासोवि अ एसो विणओ जिणाभिहिओ ॥
—दशवकालिक १।१ हारिभद्रीया वृत्ति मे

५७ (क) भगवती २५।७
(ख) ठाणाङ्ग ७।३।५ ५
(ग) दशव हारि वृत्ति १।१

५ विशष विवरण के लिए देख लेखक का सेवा एक विश्लेषण लेख।

स्वाध्याय है।[५९] इसके पाँच प्रकार हैं—(१) वाचना (२) पृच्छा (३) परिवर्तन—स्मरण (४) अनुप्रेक्षा—चिन्तन (५) धर्म-कथा।[६०]

(११) ध्यान—अध्यवसाय को स्थिर करना ध्यान है। चचल चित्त का किसी एक विषय मे स्थिर हो जाना ध्यान है।[६१] ध्यान के चार प्रकार हैं—(१) आर्त्त (२) रौद्र (३) धर्म (४) शुक्ल।[६२] आर्त्त और

---

५९ अज्झयणमि रओ सया अज्झयण सज्झाओ भण्णइ तमि सज्झाए सदा रतो भविज्जति।

—दशवैकालिक जिनदास चूर्णि २८७

(ख) स्वाध्याये वाचनादौ

—दशवैकालिक हारिभद्रीयटीका २३५

६० वायणा पुच्छणा चेव तहेण परियट्टणा।
अणुप्पेहा धम्मकहा स ज्झाओ पचहा भव ॥

—उत्तरा ३ ।३४

(ख) पचविहे सज्झाए प त वायणा पुच्छणा परियट्टणा अणुप्पेहा धम्मकहा।

—स्थानाङ्ग ५।३।४६५

(ग) तत्त्वार्थ सूत्र ९।२५

(घ) भगवती २५।७ २

(ङ) औपपातिक ३

६१ (क) एगग्ग मणसन्निवेसणाए ण भते! जीवे किं जणयइ? एगग्गमणसन्निवेसणाए ण चित्तनिरोह करेइ।

—उत्तराध्ययन २९।२५

(ख) उत्तमसहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम्।

—तत्त्वार्थ सूत्र ९।२७

(ग) ज थिरमज्झवसाण त झाण।

(घ) ठाणाङ्ग ५।३।५११ टीका

६२ चत्तारि झाणा पं त अट्ट झाणे रोद्द झाणे धम्मे झाणे सुक्के झाण।

—ठाणांग ४।१।३०८

रौद्र ये दो ध्यान अप्रशस्त है। धम और शुक्ल ये दो ध्यान प्रशम्त है। अप्रशस्त ध्यान को त्यागकर प्रशस्तध्यान म मन को स्थिर करना वस्तुत ध्यान है।

इन चारो ध्याना के भी अनेक भद प्रभद है।

(१) व्युत्सग—शरीर सहयोग उपकरण और खान पान का त्याग करना और कषाय ममार और कम का त्याग करना व्युत्सग है।

व्युत्सग तप दो प्रकार का है—(१) द्रव्य व्युत्सग (२) और भाव व्युत्सग। द्रव्य युत्सग—(१) शरीर व्युत्सग (२) गण व्युत्सर्ग (३) उपधि व्युत्सग (४) और आहारव्युत्सग रूप म चार प्रकार का है। भाव युत्सग—(१) कषाय युत्सग (२) ससार युत्सग (३) और कमव्युत्सर्ग रूप मे तीन प्रकार का है।

इस प्रकार तप के दो प्रकार बताये ह। बाह्य तप म शरीर सम्बन्धी सभी साधना नियम समा जात ह और आभ्यन्तर तप म

(ख) आर्तरौद्रधमशुक्लानि।

—तत्त्वार्थ ९। १

६३ परे मोक्षहेतू।

—तत्त्वार्थ ९।३

६४ अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता झाएज्जा सुसमाहिए।
धम्मसुक्काइ झाणाइ झाणं तं तु बुहा वए॥

—उत्तरा ३०।३५

६५ स्थानाङ्ग ४।१।२

६६ औपपातिक तपोऽधिकार।

६७ बाह्याभ्यन्तरोपध्यो।

—तत्त्वार्थ ९।२६

६८ सयणासणठाणे वा जे उ भिक्खू न वावरे।
कायस्स विउस्सग्गो छट्ठो सो परिकित्तिओ॥

—उत्तरा ३०।३६

हृदय को विशुद्ध बनाने वाले आचारो का समावेश हो जाता है। अनशन और ध्यान दोनो का सु दर सम वय प्रस्तुत क्रम मे किया गया है। इस क्रम मे न केवल कष्ट सहन का विधान है और न कष्ट से पालयन कर चित्त को एकाग्र करने का प्रयत्न ही है। साधक के लिए सहिष्णुता और एकाग्रता दोनो पेक्षित है। दानो का सुमेल इस साधना क्रम मे है। पर अ य परम्पराओ मे ऐसा सुनियोजित क्रम नही है। अ य परम्पराओ ने जहाँ केवल काय क्लेश और देह दमन को महत्त्व दिया है[७०] वहाँ जन परम्परा ने कायक्लेश और देहदमन के साथ ही आभ्य तर तप को महत्त्व दिया है। जन सस्कृति का यह वज्र आघोष रहा है कि बाह्य तप के साथ यदि आभ्य तर तप का मेल नही है तो व बाह्य तप मिथ्या है। धन्य अनगार की तरह ही

---

६६ दव्वे भावे अ तहा दुहा विसग्गो चउ विहो दव्वे।
गणदेहोवहिभत्त भावे कोहादि चाओ त्ति।
काल गणदेहाण अतिरित्तासुद्धभत्तपाणाण।
कोहाइयाण मयय कायव्वो होई चाओ त्ति॥

—दशवकालिक १-१ हारिभद्रीया वत्ति

७ लोकप्रतीत वात् कुतीर्थिकश्च स्वाभिप्रायेणाऽ से यमानत्वात् बाह्य तदितर चाऽऽभ्यन्तरमुक्तम्।

—उत्तराध्ययन ३ ।७ नेमिचन्द्राचाय वृत्ति

(ख) बाह्यद्रव्यापेक्षत्वाद् बाह्य वम् ।१७
परप्रत्यक्ष वात् १
ती यग्रहस्थकार्य वा व ।।१६।। अनशनादि हि तीथ्यगृ हस्थश्च क्रियते ततोऽप्यस्य बाह्य वम्।

—त वाथ सूत्र ६।१६ राजवार्तिक

७१ खुह पिव स दुस्से ा सीउ ह अरई भय।
अहियासे अव्वहिओ देहे दुक्ख महाफल॥

—दशवकालिक ८।गा ७

७२ अनुत्तरोपपातिक वर्ग ३

तामली तापस[73] और पूरण तापस[74] ने उग्र तप किया था किन्तु आभ्यन्तर तप के अभाव मे उनके विपुल तप को भगवान् महावीर ने अज्ञानतप कहा है। करोड़ो वर्षों तक अज्ञान-तप करने पर अज्ञानी जितने कर्मों को नष्ट कर पाता है उतने कर्मों को ज्ञानी कुछ ही समय मे नष्ट कर देता है।[75] एतदर्थ ही साधक को बाह्य तप करने के पूर्व आगमो का अध्ययन करना आवश्यक माना है।[76] बाह्य तप क्रिया योग का प्रतीक है और आभ्य तर तप ज्ञानयोग का। ज्ञान और क्रिया का समन्वय ही मोक्ष का मार्ग है।[77] उपाध्याय यशोविजय जी ने एतदथ ही मुनि को बाह्य और आभ्य तर तप करने की प्रेरणा दी है।

महा मा बुद्ध ने मज्झिम निकाय प्रान्ि मे जन सस्कृति के तप

७३ भगवती शतक ३। उद्द श १

७४ भगवती शतक ३ उद्द २

७५ ज अन्नाणी कम्म खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहि।
त नाणी तिहि गुत्ता खवइ ऊसासमि ोण ॥

—सथार पइन्ना

(ख) उ गतवणण्णाणी ज कम्म खवदि भवहि बहुएहि।
त णाणी तिहि गुत्तो खवइ अतोमुहुत्त ए॥

—मोक्ष पाहुड कुन्दकुन्द ५३

७६ तए ण से धन्न अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाण थेराण अतिए सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहि जइ अहिज्जित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भाव माण विहरइ।

—अनुत्तरौपपातिक वर्ग ३

७७ दोहि ठाणेहि अणगारे सपन्न अणाइय अणवदग्ग दीहमद्ध चाउरतससारकतार वीइवए जा त जहा वि जाए चेव चरणेण चेव।

—स्थानांग २।१

(ख) ज्ञान क्रियाभ्या मोक्ष।

७८ मूलोत्तरगुणश्रेणि प्राज्यसाम्रा यसिद्धये।
बाह्यमाभ्यन्तर चेत्थ तप कुर्यात महामुनि॥

—ज्ञानसार तपअष्टक ६

७९. मज्झिमनिकाय उपालिसुत्त ५६

का उपहास किया है और उसकी निरर्थकता बताई है। पर ज्ञात होता है कि उन्होने केवल बाह्यतप को ही असली तप समझा आभ्यन्तर तप की ओर उनका ध्यान ही नही गया। यदि गया होता तो भूलकर के भी वे जन परम्परा के तप का उपहास नही कर सकते थे। जैन परम्परा मे स्पष्ट कहा गया है—कायक्लेश और देहदमन तभी तक साधक हैं जब उनका उपयोग आध्यात्मिक शुद्धि के लिए होता है। जो बाह्य तप आध्यात्मिक कलुषता पदा करता है वह तप नही ताप है उपवास नही लघन है। उपवास का अथ है—पापो से निवत्त होकर सद्गुणो मे रमण करना। [२]

महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर की तप साधना मे यही मुख्य अ तर रहा है। महात्मा बुद्ध ने छह वष तक उग्र तप किया तप से देह को जजरित बनाया पर आभ्य तर तप के अभाव मे बाह्य तप उन्हे शा ति प्रदान नही कर सका। अन्त मे उन्होने बाह्यतप का त्याग किया। कि तु भगवान् श्री महावीर बाह्यतप के साथ सदा आभ्य तर तप करते रहे। अनशन के साथ आसन और ध्यान की स्पर्धा सी चलती रही। उन्होने अपने साधना काल मे ऊकडू आसन निषद्या कायोत्सर्ग प्रतिमाए एक बार नही अपितु शताधिक बार

---

८० तदेव हि तप कार्यं दुर्ध्यानं यत्र नो भवत।
यत्र योगा न हीय ते क्षीयन्ते नेन्द्रियाणि च ॥
—ज्ञानसार तपअष्टक उपा यशोविजय

८१ कषायविषयाहार त्यागो यत्र विधीयते।
उपवास स विज्ञेय शेष लघनक विदु ॥

८२ उपावृत्तस्य पापेभ्य सहवासो गर्णैर्हि य।
उपवास स विज्ञेयो न शरीरस्य शोषणम् ॥

८३ इहासने शुष्यतु मे शरीर त्वगस्थिमास प्रलय च यातु।
अप्राप्य बोधि बहुक पदुलभा नवासनात कायमिद चलिष्यति ॥
—दशन और चिन्तन प सुखलाल जी द्वि खण्ड
—पृ ६३ मे उद्धृत

८४ मज्झिम निकाय १२ महासीहनाद सूत्र दण्डिका २० से २६ तक।

की। बारह बार उन्होने एक रात्रि की प्रतिमा अगीकार की।[६] जब भगवान् दृढभूमि के पेढाल ग्राम मे विचरण कर रहे थ तब उन्होने पोलाश चैत्य मे तीन दिन का उपवास किया। कायोत्सर्ग मुद्रा की। उनका तन आगे की ओर कुछ झुका हुआ था। एक पुद्गल पर दृष्टि केन्द्रित थी। आँख अनिमष थी। तन प्रणिहित था इन्द्रियाँ गुप्त थी। दोनो पर सटे हुए थ और दोनो हाथ प्रलम्बित थ। प्रस्तुत मुद्रा मे भगवान् ने एक रात्रि की महाप्रतिमा की।

भगवान ने सानुलष्टि ग्राम मे भद्रा महाभद्रा और सवतोभद्रा प्रतिमा नामक तपश्चर्या की। चारो दिशाओ मे चार चार प्रहर तक कायोत्सर्ग करना भद्रा प्रतिमा है। इस प्रतिमा की आराधना करन वाला प्रथम दिन पूवदिशा की ओर मुख कर कायोत्सग करता है रात्रि

---

८५ तिन्नि सए दिवसाण अउणापन्न य पारणाकालो।
उक्कुडअनिसि जाए ठियपडिमाण सए बहुए॥

—आवश्यक नियु क्ति गा ५३४

६ दस दो अ किर महप्पा ठाइ मणी एगराइय पडिम।
अट्ठमभत्तण जई इक्किक्क चरमराई अ॥

—आवश्यक नियु क्ति गा ५३१

७ ततो भयव बहुमच्छ दढभूमि गतो तस्स बहिं पोलास नाम चेइय तत्थ अट्ठमेण भत्त ण अपाणएण ईसिपब्भारगएण काएण इसीप भारगतो नाम ईसि ओणतो कातो एगपोग्गलनिरुद्धदिट्ठी अणिमिसनयणे तत्थवि ज अचित्ता पो गला तेसु दिट्ठि निवेसेइ सचेत्तहि दिट्ठी अ पाइ जह जहा दुब्बाए अहापणिहिएहिं गत्त हि सव्विदिएहि त्त हिं दोवि पाए साहट्ट वग्घारियपाणी एगराइय महापडिम ठितो। एतदेवाह—
दढभूमी बहुमि छा पेढाल गाममागओ भयव।
पालासचेइयम्मि ठिएगराइ महापडिम॥

—आवश्यक नियु क्ति गा ४९७ मलयगिरि वृत्ति पत्र २८८

पूर्वादिदिकचतुष्टये प्रत्येक प्रहरचतुष्टय—
कायोत्सगकरणरूपा अहोरात्रद्वयमानेति।

—स्थानाङ्ग सूत्र सटीक प्र भा पत्र ६५-२

मे दक्षिण दिशा की ओर मुख कर कायोत्सग करता है। द्वितीय दिन पश्चिम दिशा की ओर मुख कर कायोत्सग करता है और रात्रि मे उत्तर की ओर मुख कर कायोत्सग करता है। भगवान् ने भद्रा के पश्चात् ही महा भद्रा प्रतिमा प्रारम्भ कर दी। उसमे चारो दिशाओ मे एक दिन रात कायोत्सर्ग किया जाता है। भगवा ने चार दिन तक इसकी आराधना की। इसके पश्चात् सवतोभद्रा प्रतिमा का प्रारम्भ किया इसमे दस दिन रात लगे। दशो दिशाओ मे क्रमश अहोरात्र कायोत्सर्ग किया जाता है। इस प्रकार भगवान सोलह दिन रात तक सतत ध्यानरत और उपवासी रहे।[1]

---

८९ महाभद्रापि तथव नवरमहोरात्रकायो सगरूपा अहोरात्रचतुष्टयमाना।
—स्थानाङ्ग वृ ि प्र भा पत्र ६५–२

९ सर्वतोभ । तु दशसु दि । प्र येकमहोरात्र—
कायो सगरूपा अहोरात्रदशकप्रमाणेति ॥
—वही पत्र ६५–२

९१ तदन तर सानुल टग्राम गत । तत्थ बाहि भद्दपडिम ठितो। केरिसिया भद्दा पडिमा ? भन्नइ पु वाभिमुहो दिवस अ च्छइ प छा रत्ति दाहिणहुत्तो ततो बीए अहोरत्त अवरेण दिवम उत्तरेण रत्ति एव छट्ठ ए भत्तए निट्ठिया तहवि न चेव पारेइ ततो अपारिता चेव महाभद्द पडिम ठाइ सा पुण एव पुव्वाए दिसाए अहोरत्त एव चउसु वि दिसासु चत्तारि अहोरत्ता एवमसा दसमेण निट्ठिआ तहावि न पारेइ ताहे अपारितो चेव सव्वतोभद्द पडिम ठाइ सा पुण सव्वतोभद्दा एव इ दाए अहोरत्त एव अ गईए जम्माए नेरईए वारुणीए वाय वाए सोमाए ईसाणीए विमलाए (तमाए) त य जाइ उड्ढलोइयाइ दव्वाइ ताइ नि भायइ तमाए हेट्ठि लाइ एयमेसा दसहि दिसाहि बावीसइमेण समप्पइ एव च प्रथमाया प्रतिमाया चत्तारि यामचतष्काणि तद्यथा एक पूवस्यामेकमपरस्यामेकदक्षिणस्यामेकमत्तरस्या द्वितीयस्यामष्टौ यामचतष्काणि तद्यथा द्व यामचतष्के पूर्वस्यामेव यावत द्व यामचतष्के उत्तरस्या तृतीयस्या विंशतिर्यामचतुष्कानि तद्यथा द्व यामचतुष्के पवस्यामव यावत द्व यामचतुष्क तमायामिति

जब भगवान् को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ था तब भी वे ऊकडू आसन से बठे थे। दो दिन का उपवास था।[२] और ध्यानान्तरिका मे वर्तमान थ। उनके जीवनदशन से स्पष्ट है कि वे तप से कभी भी ऊबे नही। इस उग्र तपश्चरण की बदौलत उनमे असाधारण सहिष्णुता उत्पन्न हो गई थी। यही कारण है कि घोर से घोर अनुकूल और प्रतिकूल उपसग एव परीषह उन्हे अपने ध्येय से विचलित नही कर सके। भगवान् ने अत्यन्त वीरता के साथ उन्हे सहन करके एक आदश उपस्थित कर दिया।

उपाध्याय श्री यशोविजय जी कहते है— जसे धनार्थी मनुष्य को शीत ताप क्षधा आदि स्सह प्रतीत नही होता वसे ही तत्त्व ज्ञान के अर्थी साधक को भी किसी प्रकार का देहकष्ट दुस्सह नही होता।

पडिमाभद्द महाभद्द सव्वओभद्द प मिया चउरो।
अट्ठ य वीसाऽऽणदे बहुलिय त उज्झिया दिव्वा॥
—आवश्यक नियु क्ति गा ४९६ मलय वृत्ति २

९२ जभिय बहि उजुवालिय तीरवियावत्त सामसाल अहे।
छट्ठ गुक्कुडयस्स उ उप्पन्न केवल नाण॥
—आवश्यक नियु क्ति गा ५२५

९३ झाणंतरियाए वट्टमाणस्स। —आवश्यक नियु क्ति ५२४ वृ प २६

९४ धली पिवीलिआओ उद्दसा चव तह य उण्होला।
विच्छुअ नउला स पा य मूसगा चेव अट्ठमया॥
हत्थी हत्थिणियाओ पिसाअए घोररूव वग्घो य।
थेरा थेरी सूओ आगच्छइ पक्कणो अ तहा॥
खरवाय कलकलिया कालचक्क तहेव य।
पाभाइयमुवसग्गो बीसइमे होति अणुलोमे॥
सामाणियदेविड्ढि देवो दाएइ सो विमाणगओ।
भणइ वरेह महरिसि! निप्फत्ती सग्गमोक्खाण॥
—आवश्यक नियु क्ति गा ५ २–५ ५

(ख) त्रिषष्ठि १ ।४।१८९–२८१

९५ आचाराग श्र २ अ १५ सू ११

९६ धनार्थिनां यथा नास्ति शीततापादि दुस्सहम्।
तथा भव विरक्ताना तत्व-ज्ञानार्थिनामपि॥ —ज्ञानसार-तपाष्टक

अपितु ध्येय के माधुर्य का अनुभव हो जाने पर और उसमें गहरी लगन लग जाने पर देहदमन भी आनन्द की वृद्धि करने वाला होता है।[९७]

जैन संस्कृति ने तप का मुख्य ध्येय आत्माभ्युदय स्वीकार किया है। आचार्य जिनदास गणी महत्तर के शब्दों में तप वह है जो अष्ट प्रकार की कर्म ग्रन्थियों को तपाता है उन्हें भस्म करता है।[९८] भगवान् महावीर ने तप का फल व्युदान बताया है[९९] व्युदान का अर्थ संचित कर्म मल को साफ कर देना है। एक आचार्य ने तप का अर्थ इच्छाओं को रोकना किया है।[१००] आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—जैसे सदोष स्वर्ण प्रदीप्त अग्नि द्वारा शुद्ध होता है वैसे ही आत्मा तप अग्नि से विशुद्ध होता है। बाह्य और आभ्यन्तर तपस्याग्नि के प्रज्वलित होने पर यमी दुर्जर कर्मों को तत्क्षण भस्म कर देता है।[१०१]

---

९७ सदुपाय प्रवृत्तानामुपेयमधुरत्वत ।
ज्ञानिना नित्यमान दवृद्धिरेव तपस्विनाम् ॥

—ज्ञानसार तपाष्टक

९८ तवो णाम तावयति अट्ठविहं कम्मगंठि नासेतित्ति वत्त भवइ।

—दशवैकालिक जिनदास चूर्णि प १५

९९ तवेण भंते जीवे किं जणयइ ?
तवेणं वोदाणं जणयइ ॥

—उत्तराध्ययन अ २९।२७

(ख) तवे वोदाणफले।

—भगवती शतक २। उद्द ५

१०० इच्छानिरोधनम् तप ।

१०१ सदोषमपि दीप्तेन सुवर्णं वह्निना यथा
तपोऽग्निना तप्यमानस्तथा जीवो विशुध्यति ।
दीप्यमाने तपोवह्नौ बाह्ये चाभ्यन्तरेऽपि च
यमी जरति कर्माणि दुर्जराण्यपि तत्क्षणात ।

—नवतत्त्वसाहित्य संग्रह श्री हेमचन्द्र सूरि रचित सप्ततत्त्व प्रकरण गा १२९।१३२

उत्तराध्ययन मे बताया है कोटि भवो के सचित कम तप द्वारा जीए होकर नष्ट हो जाते है।[1] आचाय श्री शय्यभव ने तप के ध्येय पर प्रकाश डालते हुए बताया— (१) इहलोकसबधी लाभ के निमित्त तप नही करना चाहिए (२) परलोक सबधी अभ्युदय के निमित्त तप नही करना चाहिए (३) कीर्ति वरग [लोक व्यापी यश] श द [लोक प्रसिद्धि] और श्लोक [स्थानीय प्रशसा] के लिए तप नहा करना चाहिए। निजरा के अतिरिक्त अ य किसी भी उद्द श्य से तप नही करना चाहिए।

आचार्य अकलक देव कहते है – जस किसान का खेती स अभीष्ट धा य के साथ साथ पयाल भी मिलता हे उसी तरह तप त्रिया का प्रधान प्रयाजन कमक्षय ही है। अभ्युदय की प्रा ति तो पया न की तरह आनुपगिक है।

तप स्वरूपत एक है कि तु तपस्वी की भावना के भद के कारण उसे सकाम और निष्काम इन दो भागो मे विभक्त कर सकते है। लोकेषणा या लौकिक ऋद्धि सिद्धि के उद्द श्य से किया जाने वाला तप सकाम तप कहलाता है और आत्म उत्थान के लिए या कम निजरा के अथ जो तप किया जाता है वह निष्काम तप है।

---

१ २ भवकोडि मचिय कम्म तवसा नि जरि जइ।

— उत्तरा ३।८

१ ३ चउ विहा खलु तवसमाहा भव तजहा—
(१) ना इहलागट्ठयाए तवमहिट्ठ जा
(२) ना परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठ जा
(३) ना कित्तिव णमद्दसिलाग ठयाए तवमहिट्ठ जा।
(४) नन्न त्थ नि जरट्ठयाए तवमहिट्ठ जा।

—दशवकालिक अ ९।उ ४।४

१ ४ गुणप्रधानफलोपपत्त वा कृषीवलवत । अथवा यथा कृषीवलस्य कृषिक्रियाया पलालशस्यफलगुणप्रधानफलाभिसम्ब ध तथा मुनेरपि तपस्क्रियाया प्रधानोपसजनाभ्युदयनि श्र यसफलाभिसम्ब धोऽभिसन्धिव शाद्व दितव्य ।

—त वाथसूत्र ९।३ राजवार्तिक ५

आगम साहित्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि लौकिक कामना से तप करने वालो को लौकिक सिद्धियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति मे चक्रवर्ती सम्राट भरत का वर्णन है। उन्होंने समग्र षटखण्ड भारतवष को प्रशासनिक दृष्टि से एक सूत्र म ग्रथित करने के लिए साथ ही आदिनाथ ऋषभ द्वारा स्थापित कल्याणकारी मर्यादाओ और व्यवस्थाओ को सवत्र लागू करने के लिए जो विराट अभियान किया था उसकी सफलता के लिए तेरह बार अष्टम तप की साधना की।[१५] श्री कृष्णवासुदेव अपने लघुभ्राता गजसुकुमार को प्राप्त करने के लिए तप करते है।[१६] गर्भवती रानी धारणी के दोहद को पूर्ण करने के अर्थ दैवी सहायता प्राप्त करने के लिए अभयकुमार तप करते हैं। तप के प्रभाव से देव वर्षाकाल न होने पर भी वर्षा काल का मनोहर दृश्य उपस्थित करता है।[१७] इत्यादि उदाहरणो से स्पष्ट है कि तप से लौकिक कामनाए भी पूर्ण होती है। पर जैन सस्कृति ने इस प्रकार के तप को आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से कोई महत्त्व नही दिया है। यही नही भोगो की लालसा से किये जाने वाले तप को मोक्षप्राप्ति म बाधारूप माना है। दशाश्रुत स्कध म स्पष्ट निर्देश है कि परभव मे अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के हेतु किया जाने वाला तप निदान है जो साधना के लिए शल्य रूप है।[१८]

गाधी जी कहते है— तप से जीवन निखरता है मन मजता है और काया कचनमय होती है।[१९] काया के कचनमय हो जाने का

---

१५ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति भरतचक्रवर्ती अधिकार।

१६ अन्तकृतदशाङ्ग तृतीय वर्ग

१७ ज्ञातृधर्मकथाङ्ग १।१६

१८ दशाश्रुतस्कध अ १ निदान वर्णन

(ख) स्थानाङ्ग ३।१ २

(ग) समवायाङ्ग सम ३

१९ गाधी जी की सूक्तियाँ

आशय यही है कि तप से शुष्क शरीर मे एक अनूठा तपस्तेज दमक उठना है। तप एक प्रकार से शुद्ध की हुई रसायन है। कहा जाता है कि आज के वज्ञानिको ने वायोकेमिष्ट औषधियो की शोध की है। उनका मन्तव्य है कि शरीर मे बारह प्रकार के तत्त्व होते है। उन तत्त्वो मे से किसी भी एक तत्त्व की न्यूनता होने से शरीर रुग्ण होता है। बारह प्रकार के क्षार तत्त्वो से रोगो को नष्ट कर शरीर को पूर्ण स्वस्थ और मस्त बनाया जा सकता है। तप के भी जो बारह प्रकार हैं वे वायो केमिष्ट औषधियो के समान हैं। इन तपो का शरीर के किस तत्त्व पर कसा प्रभाव पडता है यह अनुस धान का विषय है। तथापि निस्सन्देह कहा जा सकता है कि इनके आचरण से कम रूपी रोग नष्ट होत है और आत्मा पूर्ण स्वस्थ होना है।

तप श्रमण सस्कृति की आत्मा है तप और श्रमण सस्कृति के द्वत की मान्यता को मैं मानस की सिकुडन मानता हूँ। तप सयम की पौध का फलना फूलना ही श्रमण सस्कृति का विकास है।



आठ | अहिंसा और सर्वोदय

भारतीय चिन्तकों ने जितनी गहराई से अहिंसा के सम्बन्ध में चिंतन किया है उतना विश्व के अन्य विचारकों ने नहीं। अहिंसा आत्मा का आलोक है, जीवन की पवित्रता है, मन का माधुर्य है, मैत्री का मूलमन्त्र है। स्नेह, सौहार्द्र और सद्भावना का सूत्र है। धर्म, संस्कृति, समाज का प्राण है। साधना का पथ है।

हिंसा शब्द हननार्थक हिंसि धातु से बना है। हिंसा का अर्थ है—प्रमत्त योग से दूसरों के प्राणों का अपहरण करना[1]—दुष्प्रयुक्त मन, वचन या काया के योगों से प्राण व्यपरोपण करना[2]। और अहिंसा का अर्थ है—प्राणातिपात से विरति।[3]

जैन साहित्य में हिंसा के लिए प्राणातिपात शब्द का प्रयोग हुआ है। इन्द्रियाँ, मन, वचन, काया, श्वासोच्छ्वास और आयु ये प्राण हैं। प्राणातिपात का अर्थ है प्राणी के प्राणों का अतिपात करना—जीव से प्राणों का पृथक करना। जीवों को समाप्त करना

---

१ प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।

—तत्त्वार्थ सूत्र ७।१३

२ मणवयणकाएहि जोएहिं दुप्पउत्तेहिं जं पाणववरोवणं कज्जइ सा हिंसा।

—दशवैकालिक जिनदास चूर्णि प्र० अध्य०

३ अहिंसा नाम पाणातिवायविरती।

—दशवैकालिक जिनदास चूर्णि पृ० १५

ही केवल अतिपात नही है किन्तु उनको किसी भी प्रकार का कष्ट देना भी प्राणातिपात है।

उक्त व्याख्याओ मे दया और करुणा का पयोधि उछाल मार रहा है। स्थूल मे लेकर सूक्ष्म तक किसी भी प्राणी को मन वचन और काया मे क ट न पहुँचाना और उनके प्रति मत्री भाव रखना अहिंसा है। अहिंसा हम आत्मवत् सवभूतपु का पाठ पढाती है।

अहिंसा का महत्व प्रतिपादित करते हुए भगवान् महावीर ने अहिंसा को भगवती कहा है। और आचार्य समन्तभद्र ने अहिंसा को परम ब्रह्म कहा है। महाभारतकार व्यास ने अहिंसा को परम धर्म परम तप परम सत्य परम सयम परम दान परम यज्ञ परम फल परम मित्र और परम सुख कहा है।

---

४ (क) पाणातिवाता [ता] अतिवातो हिंसण ततो एसा पचमी अपादाण भयहेतुलक्खणा वा भीतार्थाना भयहेतुरिति।

—दशव अगस्त्यसिंह चूर्णि

(ख) पाणाइवाओ नाम इदिया आउप्पाणादिणो छव्विहो पाणा य जेसि अत्थि ते पाणिणो भण्णति तेसि पाणाणमइवाओ तेहि पाणेहि सह विसजोगकरणत्ति वुत्त भवइ।

—दशवकालिक जिनदास चूर्णि प १४६

(ग) प्राणा इन्द्रियादय तेषामतिपात प्राणातिपात —जीवस्य महादुखोत्पादन न तु जीवातिपात एव।

—दशवकालिक हारिभद्रीयावृत्ति प १४४

५ एसा सा भगवती अहिंसा

—प्रश्नव्याकरण

६ अहिंसा भूताना जगति विदित ब्रह्म परमम्।

—बृहद् स्वयभू स्तोत्र

७ अहिंसा परमो धमस्तथाऽहिसा पर तप।
अहिंसा परम सत्य यतो धम प्रवतते॥
अहिंसा परमो धमस्तथाऽहिसा परो दम।
अहिंसा परम दानमहिंसा परम तप॥

आगम साहित्य का पर्यवेक्षण करने पर ज्ञात होता है कि महाव्रतो की त्रिविध परम्परा रही है। आचाराग मे अहिंसा सत्य और बहिर्धादान इन तीन का उल्लेख है स्थानाङ्ग उत्तराध्ययन' प्रभृति मे अहिंसा स य अचौर्य और बहिर्धादान इन चार याम [महाव्रतो] का उल्लेख है। उत्तरा यन दशवकालिक' आदि आगमो मे अनेक स्थानो पर अहिंसा स अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच महाव्रतो का वर्णन है।

स्थानाङ्ग आदि के अनुसार भगवान् श्री ऋषभदेव ने तथा भगवान् श्री महावीर ने पाच महाव्रता मक धर्म का प्ररूपण

अहिंसा परमो यज्ञ तथाऽहिंसा पर फलम्।
अहिंसा परम मित्रमहिंसा परम सुखम्॥

—महाभारत अनुशासन पर्व ११५–२३।११६।२ –२८

८ जामा तिण्णि उदाहिया।

—आचाराग ७।१।४

९ स्थानाङ्ग २६६

चाउज्जामो अ जो धम्मो जो इमो पच सिक्खओ।
देसिओ वद्धमाणेण पासेण च महामुणी॥

—उत्तरा २३।२३

११ बहिद्धादाणाओ त्ति बहिद्धा-मथुन परिग्रहविशेष आदान च परिग्रहस्तयोद्व द्व कत्वमथ वा आदीयते इ यादान परिग्राह्य वस्तु तच्च धर्मोपकरणमपि भवतीत्यत आह बहिस्तात धर्मोपकरणाद् बहिरिति। इह च मथुन परिग्रहेऽन्तभवति न ह्यपरिगृहीता योषिद् भुज्यत इति।

—स्थानाङ्ग वृत्ति २६६

१२ अहिंस सच्च च अतेणग च
तत्तो य बभ चऽपरिग्गह च।
पडिवज्जिया पच महव्वयाइ
चरिज्ज धम्म जिणदेसिय विऊ।

—उत्तराध्ययन २१।२२

१३ दशवैकालिक अ ४

किया और अन्य बाईस तीर्थङ्करों ने चातुर्याम धर्म का निरूपण किया।[१४]

पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि सर्वत्र अहिंसा को प्रथम स्थान दिया गया है। अहिंसा की विशद व्याप्ति में ही सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि व्रतों का समावेश हो जाता है। जहाँ अहिंसा है वहाँ पाँचों महाव्रत हैं।

जैन दर्शन के मनीषी आचार्यों ने स्पष्ट किया है कि सत्य आदि जितने भी व्रत हैं वे सभी अहिंसा की सुरक्षा के लिए हैं।[१६] अहिंसा धान है और सत्य आदि उसकी रक्षा करने वाले बाड़े हैं। अहिंसा यदि पानी है तो सत्य आदि उसकी रक्षा करने वाली पाल हैं।

१४ मज्झिमगा बावीस अरहंता भगवंता चाउज्जामं धम्मं पण्णवंति तं जहा सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं एवं मुसावायाओ वेरमणं सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं।

—स्थानाङ्ग २६६

१५ अहिंसा गहणे पंच महव्वयाणि गहियाणि भवंति। संजमो पुण तीसे चेव अहिंसाए उवग्गहे वट्टइ संपुण्णाय अहिंसाय संजमो वि तस्स वट्टइ।

—दशवैकालिक चूर्णि प्र० अ०

१६ एक्कं चिय एक्क वयं निद्दिट्ठं जिणवरेहिं।
सव्वेहिं पाणाइवायविरमण सव्वसत्तस्स रक्खट्ठा।

—पञ्चसंग्रह

(ख) अहिंसैषा मता मुख्या स्वर्गमोक्षप्रसाधनी।
एतत्संरक्षणार्थं च न्याय्यं सत्यादिपालनम्।

—हारिभद्रीयाष्टक १६।५

(ग) अवसेसा तस्स रक्खट्ठा।

१७ अहिंसाशस्यसंरक्षणे वृत्तिकल्पत्वात् सत्यादिव्रतानाम्।

—हारिभद्रीयाष्टक १६।५

१८ अहिंसापयसः पालिभूतान्यन्यव्रतानि यत्।

—योगशास्त्र प्रकाश—२

योग साधना के आठ सोपान हैं।[1] उनमे प्रथम सोपान का प्रथम चरण है अहिंसा। अहिंसा की मजिल को पूरी किये बिना योग मे गति और प्रगति नही हो सकती। अहिंसा की साधना से ही स्नेह सौहाद और प्रेम का समुद्र ठाठें मारने लगता है। यहाँ तक कि अहिंसक के सन्निकट पहुँचकर हिंसक से हिंसक का भी वर विस्मृत हो जा ा है।[2] यही कारण है कि तीर्थङ्करो के समवसरण मे शेर और बकरी एक स्थान पर बठते है।

देवर्षि नारद भक्तों को प्रेरणा देते है कि भगवान् के चरणो मे अहिंसा इन्द्रियनिग्रह दया क्षमा ग्रान्ति तप ध्यान और सत्य ये आठ प्रकार के पुष्प अर्पित करो। इनमे भी सवप्रथम पुष्प अहिंसा है।[2]

जिस प्रकार हाथी के पर मे सब प्राणियो के पर समा जाते है उसी प्रकार अहिंसा मे सब धर्मों के अथ व तत्त्व समा जात है। ऐसा जानकर समझकर जो अहिंसा का प्रतिपालन करत है वे नित्य अमृत मोक्ष म वास करत है।

---

१६ यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावगानि।

—पतजलि योगदशन २।२६

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा।

—पतजलि योगदशन २।३

२१ अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वरत्याग।

२२ अहिंसा प्रथम पुष्प पुष्प इन्द्रियनिग्रह॥
सर्वभूतदया पुष्प क्षमा पुष्प विशेषत।
शान्ति पुष्प तप पुष्प ध्यानपुष्प तथव च।
सत्य अष्टविध पुष्प विष्णो प्रीतिकर भवत।

—पद्मपुराण

२३ यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम्।
सर्वाण्येवापि धार्यन्ते पदजातानि कौञ्जरे॥
एव सर्वमहिंसायां धर्मार्थमपि धीयते।
अमृत स नित्य वसति योऽहिंसा प्रतिपद्यते॥

—महाभारत १२।२३७।१८।१९

अभिप्राय यह है कि सभी धर्मों ने पन्थो ने सन्तो और महर्षियो ने एक स्वर स अहिंसा के महत्व का स्वीकार किया है। अहिंसा धर्म संस्कृति समाज और राष्ट्र के योगक्षेम का मूलाधार है। अहिंसा के अभाव मे धर्म संस्कृति समाज और राष्ट्र का कोई भी मूल्य नही है।

अहिंसा एक अमृतकलश के समान है जिसका स्वाद सभी के लिए मधुर है मधुरतम है।

अहिंसा और सर्वोदय का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अहिंसा ही सर्वोदय की जन्मभूमि है। जो अहिंसक है उसके विराट हृदय म ही सबके उदय सबके उत्कर्ष सबके विकास और सबके कल्याण की मंगलमय भावना उद्बुद्ध होती है। सबके जीवनोत्थान की प्रशस्त भावना को प्राचीन भारतीय मनीषियो ने अहिंसक भावना कहा है। उसे ही आज के चिन्तको ने सर्वोदय कहा है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि महात्मा गांधी सर्वोदय के उपदेष्टा थे पर सर्वोदय शब्द के स्रष्टा नही थे। सर्वोदय शब्द का प्रयोग जैनाचार्य समन्तभद्र ने बहुत ही पहले किया है। उन्होने तीर्थङ्कर के शासन को सर्वोदय तीर्थ कहा है। तीर्थङ्कर का शासन एक ऐसा विशिष्ट और विलक्षण शासन है जिसमे प्राणीमात्र का उत्कर्ष है सभी का विकास है। सभी का उदय होता है। वह समस्त आपदाओ का अन्तकर है।

सर्वोदय भारतीय चिन्तन का मूलस्वर है। सब सुखी रहे सब स्वस्थ रहे सब कल्याणभागी बन कोई कभी दुखी न हो।[२६] सब

---

२४ परम धर्म श्रुतिविदित अहिंसा।

—सन्त तुलसीदास

२५ सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।

—समन्तभद्र

२६ सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:खभाग् भवेत्।

जीव मुझे क्षमा कर मै भी सबको क्षमा करता हूँ सबके साथ मेरी मित्रता है किसी पर भी मेरा वर भाव नहो है।[२७] सम्पूण संसार का कल्याण हो प्राणी एक दूसर के हित मे सदा रत रहे हमारे समग्र दोष नष्ट हो सवत्र जीव सुखो रहे।[२८]

विश्वात्मवाद सर्वोदय का आद' है और सम वय उसकी नीति है। विश्वात्मवाद के द्वारा वह मानवनिर्मित समस्त विषमताओ को समता मे परिवर्तित करना चाहता है। एक यक्ति सुख के सागर पर तरता रहे और दूसरा यक्ति दु ख की भटटी मे झुलसता रहे यह अनुचित है। वणव्यवस्था समाजकृत है यह कृत्रिम है स्वाभाविक नही अत सर्वो'य सभी वर्गों का उत्कष चाहता है। पर उत्कष मे ही स्व उत्कष निहारता है। सर्वोदय की निष्ठा राजनीति मे नही लोकनीति मे ह शासन मे नही अनुशासन मे है। अधिकार मे नही कतव्य मे ह। विषमता मे नही समता मे ह। भेद म नही अभेद मे है अनेक'व मे नही एक व मे ह।

जहाँ अहिंसा ह मत्री ह करुणा ह दया ह स्नेह ह सौहाद है सद्भावना है वही सर्वोदय ह और जहाँ सर्वोदय ह वही शान्ति ह सुख ह।

---

२७ खामेमि सव्वे जीवा सव्व जीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु वेर म'झ न केणइ॥

—आवश्यक सूत्र

२८ शिवमस्तु सवजगत
परहित निरता भव'तु भूतगणा।
दोषा प्रयान्तु नाश
सर्वत्र सुखी भवतु लोक।

नौ | सेवा एक विश्लेषण

भारतवष का चिन्तन मानव को सदा से यह सदेश प्रदान कर कर रहा है कि सेवा जीवन है सेवा परम तप है सेवा प्रधान धम है। सेवा से बढकर कोई धम नही तप नही।

सेवा यह दो अक्षरो का लघु शब्द अपने आप म एक विराट अथ गरिमा को सजोये हुए है। आज सेवा के अथ मे सहयोग शब्द व्यवहृत होता है किन्तु सहयोग और सेवा मे बहुत बडा अन्तर है। सहयोग विनिमय की भावना रहती है। सेवा में समपण होता है सहयोग मे अलगाव का भाव निहित है। सहयोग के अन्तस्तल म अहकार हो सकता है जब कि सेवा मे नम्रता के अतिरिक्त अन्य कोई भावना नही होती। वह विवेक पर आश्रित है अत सेवा के अर्थ मे सहयोग शब्द का प्रयोग करना सेवा की महान् अथसम्पदा को कम करना है।

---

१ पायच्छित्त विणओ वयावच्च तहेव सज्झाओ
झाण च विउसग्गो एसो अब्भिन्तरो तवो।

—उत्तराध्ययन ३ गा ३

(ख) औपपातिक तपोधिकार।

(ग) प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्।

—तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ९ सू २

२ There is No greater religion than Service

जैनागमो मे सेवा के अर्थ मे वेयावडिय[3] और वेयावच्चं[4] ये दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिनका सस्कृत रूप क्रमश वैयापृत्य और वैयावृत्य है। वेयावत्य का अर्थ है—जिस व्यक्ति को जिस प्रकार

---

३ (क) वयावडिय करेह।

(ख) वयावडिय करति।

—भगवती शतक ५ उद्दे शा ४ सू १८७

(ग) एयाइ तीसे वयणाइ सोच्चा
पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइ।
इसिस्स वयावडियट्ठयाए
जक्खा कुमारे विणिवाडयन्ति॥

—उत्तराध्ययन अ १२ गा २४

(घ) पुव्वि च इहिं च अणागय च
मणप्पदोसो न मे अत्थि कोई।
जक्खा हु वयावडिय करेन्ति
तम्हा हु एए निहया कुमारा।

—उत्तराध्ययन १२।३२

(ङ) गिहिणो वेयावडिय।

—दशवकालिक अ ३ गा ६

(च) गिहिणो वेयावडिय न कुज्जा।

—दशवकालिक दूसरी चूलिका गा ६

४ (क) वेयावच्च तहेव सज्झाओ।

—उत्तराध्ययन अ ३ ।३

(ख) उत्तराध्ययन अ २९–४३

(ग) वयावच्च वावडभावो इह धम्मसाहणणिमित्त
अण्णाइयाण विहिणो सपायणमेस भावत्थो।

—स्थानाङ्ग ५।३।५११। टी प ३४६

(घ) भगवती २५।७। पृ २८

(ङ) औपपातिक सूत्र ३। पृ २६

की आवश्यकता हो उस का उसी प्रकार उचित सत्कार करना।[5] श्रमणों को शुद्ध आहार आदि से सहारा पहुँचाना।[6] अथवा द्रव्य और भाव से अपना स्वय का तथा पर का उपकार करना। संयमी की आपत्तियो को दूर कर सयम मे अपना अनुराग करना।

५ आसेवण जहाथाम वयावच्च तमाहिय।

—उत्तराध्ययन अ ३ ।३३

६ (क) व्यावृत्तस्य भाव कम्म वा वयावृत्य भक्तादिभिरुपष्टम्भ ।

—स्थानाङ्ग ३।३।१८८ टी प १४५

(ख) व्यावृत्तभावा वयावृत्य धम साधनाथ अन्नादि-दानमित्यर्थ ।

—स्थानाङ्ग ५।३।५११ टी प ३४६

(ग) वआवच्चे त्ति वयावृ्य भक्तपानादिभिरुपष्टम्भ ।

—औपपातिक टी प १

(घ) भगवती २५ ७ पृ २

(ङ) यावृत्तभावो वयावृ्यम् उचित आहारादिसम्पादनम् ।

—उत्तराध्ययन ३ ।३३ बृहद्वृत्ति प ६ ८

(च) वयावच्च वावडभावा तह धम्मसाहणनिमित्त ।
अन्नाइयाण विहिणा सम्पायणमेम भाव थो ।।

—उत्तराध्ययन ३ ।३३ की नेमिचन्द्र टीका

(छ) व्यावृत्तभावो वयावृत्य ।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प ११६

(ज) व्यावृत्तस्य भावो वैयावृ्य साधना मुमुक्षूणा प्रासुकाहारो पधि्यास्तथा भेषजविश्रामणादिष पूवत्र च व्यावृत्तस्य मनोवाक्कायै शुद्ध परिणामो वयावृत्यमु्यते ।

—तत्त्वार्थभाष्य सिद्धसेन टीका

७ दव्वण भावण वा ज अप्पणो परस्स वा
उवका करण त सव्व वेयावच्च ।।

—निशीथ चूर्णि ४।३७५

व्यापत्तिव्यपनोद पदयो सवाहन च गुणरागात् ।
वयावृ्य यावानुपग्रहोऽन्योपि संयमिनाम् ।

—रत्नकरण्ड श्रावक चार ११२

वैयावृत्य के दस प्रकार हैं—(१) आचार्य (२) उपाध्याय (३) शैक्ष (४) ग्लान (५) तपस्वी (६) स्थविर (७) साधर्मिक (८) कुल (९) गण और (१०) संघ की वैयावृत्य करना।

आचार्य उपाध्याय स्थविर प्रभृति के प्रति हार्दिक श्रद्धा रखना उनकी आज्ञा के अनकूल प्रवृत्ति करना सेवा है। तपस्वी को तप मे सहयोग प्रदान करना और नव दीक्षित श्रमण को श्रामण्य धम के विधानों से परिचित कराना व सहधार्मिको को धम पथ पर अग्रसर करना उनकी जीवन विधि के प्रत्येक चरण मे सहायता देना। कुल गण सघ के उत्कष के लिए सतत सन्नद्ध रहना रुग्ण यक्तियो को रोग के उपादानो से परिचित कराना तथा औषधोपचार स स्वस्थ

---

९ वयाव चे दसविहे पण्णत्त त जहा—आयरिय वआवच्चे उव भायवआवच्चे सेहवआव चे गिलाणवआवच्चे तवस्सिवेआव च थेरवआव चे साहम्मिवेआव च कुलवेआव चे गणवेआवच्चे सघवेआवच्चे।

—भगवती शतक २५ उद्द ७ सू २

(ख) वेआव चरतिबहु वेयावच्च दसविह त जहा—
आयरियउव भाते थेर तवस्सी गिलाण-सेहाण।
साहम्मिय कुल गण सघमगय तमिय कायव्व ॥१॥

—आवश्यक चूर्णि जिनदास प १३४

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प ११९

(घ) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति।

(ङ) आचार्योपाध्याय तपस्विशक्षग्लानगणकुलसघसाधुमनोज्ञानाम्।

—तत्त्वार्थ सूत्र अ ९ सू २४

(च) नवत व प्रकरण साथ पृ २९

(छ) नवतत्त्वप्रकरण सुमगला टीका पत्र ११२–१

(ज) औपपातिक सूत्र।

(झ) स्थानाग।

(ञ) आयरिय उव झाए थेर तवस्सी गिलाण सेहाण।
साहम्मिय कुल गण सघसगय तमिह कायव्व ॥

—उत्त ३।३३ नेमिच द्रीय टीका

करना सेवा है। इनकी सेवा करने वाला श्रमण निग्रन्थ महानिर्जरा और महापर्यवसान करता है।[1]

पूर्वोक्त दस मे से प्रत्येक की तेरह प्रकार से वैयावृत्य की जा सकती है। अतएव वैयावृत्य के १३ भेद होते है। भाष्यकार[11] व चूर्णिकार[12] ने उसके तेरह प्रकार यो बतलाए हैं—(१) भक्त (२) पान (३) शय्या (४) सस्तारक—आसनादि प्रदान करना (५) क्षेत्र की प्रतिलेखन करना (६) परो का मार्जन करना (७) ग्लान रुग्णावस्था मे औषध का लाभ देना (८) मार्ग में थकावट आदि होने पर उसका निवारण करना (९) राजादि के कोप भाजन बनने पर निस्तार करना (१) शरीर उपधि आदि का सरक्षण करना (११) अतिचार विशद्धि के लिए प्रायश्चित्त लेना ११, ग्लान को समाधि उत्पन्न करना (१३) तथा उ चारप्रस्रवण आदि के पात्रों की व्यवस्था करना। ये सभी सेवा के विभिन्न प्रकार है।

---

१ पचहि ठाणेहि समणे निग्गथे महानिज्जरए महापज्जवसाणे भवइ त जहा—अगिलाए आयरिय वेयावच्च करेमाणे एव उवज्झाय वेयावच्च थेरवेयावच्च तवस्सिवेयावच्च गिलाणवेयावच्च करेमाणे।

पचहि ठाणहि समणे निग्गथे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ त जहा—अगिलाए सेहवेयावच्चकरेमाणे अगिलाए कुलवयावच्च कारेमाण अगिलाए सघवेयावच्च करेमाण अगिलाए साहम्मिय वयावच्च करेमाण।

—स्थानाग ५ सू १३ ।उ १

११ भत्त पाणे सयणासणे य पडिलेह पायमच्छिमद्धाण
राया तेण दण्ड गहे य गेलण्ण मत्ते य।

—व्यवहार भाष्य

१२ त एक्केक्क तेरसविह त जहा (१) भत्त (२) पाणे (३) आसण (४) पडिलेहा (५) पाद (६) अच्छि (७) भेसज्ज ( ) अद्धाण (९) दुट्ठ (१) तेणे (११) दडग (१) गेलन्न (१३) मत्तति

— आवश्यक चूर्णि जिनदास प० १३४

भगवती सूत्र में मानसिक वाचिक और कायिक दृष्टि से सेवा के तीन भेद किये गए हैं।

स्व-सेवा पर सेवा और स्वपर सेवा के रूप मे सेवा के तीन प्रकार और भी है।+ सेवा का अथ आज्ञा का पालन भी है। जब यक्ति आज्ञा की आराधना करता है तब वह अपनी सेवा करता है। आत्म गुणो का विकास करना स्वय की सेवा करना है। दूसरे के आत्म गुणो के विकास मे सहायता करना तथा उन्हे समाधि प्रदान करना पर सेवा है। स्वय के सद्गुणो का विकास कर मानसिक समाधि प्राप्त करना और दूसरो को समाधि देना यह स्वपर सेवा है।

वयावत्य जन श्रमण की साधना का प्रमुखतम अग रहा है। स्वाध्याय भी उसकी साधना का अङ्ग है पर स्वाध्याय स भी वैयावत्य को प्रमुखताप्रदान की गइ है। शिष्य प्रभात के पुण्य पलो मे सवप्रथम वस्त्र पात्रादि का प्रतिलेखन करता है और उसक पश्चात् गुरु के चरणारविन्दो म प्रणिपातकर नम्र निवेदन करता है—गुरुदेव! अब मुझे क्या करना चाहिए? आप चाहे तो मुझे वयावत्य मे सलग्न कर दीजिये या स्वाध्याय मे। गुरु शिष्य को यदि वैयावत्य मे नियुक्त कर देते है तो वह ग्लानिभाव का परित्याग कर सेवा करता है।

जन सस्कृति का श्रमण शरीर के प्रति ममत्वभाव से प्रेरित होकर आहार नही करना। शरीर का पालन पोषण करना उसका

---

१३ तिविहाए प जुवासणाए पज्जुवासति एव वदासी।

—भगवती शतक २ उद्देश ५

+ (ख) स्थानाङ्ग ठा ३ सू १ ।

१४ पुब्बिल्लमि चउब्भागे आइच्चमि समुट्ठिए।
भडय पडिलहित्ता वदित्ता य तओ गुरु ॥
पुच्छिज्जा पजलिउडो किं कायव्व मए इह।
इच्छ निओइउ भते वेयावच्चे व सज्झाए ॥
वेयावच्चे निउत्तण कायव्वमगिलायओ।

—उत्तराध्ययन अ० २६ गा ।८।९

लक्ष्य नही है। वह छह कारणो से आहार ग्रहण करता है उनमे द्वितीय कारण वयावत्य है। वयाव य करने के पवित्र उद्दश्य से वह आहार ग्रहण करता है[1] क्योकि आहार के अभाव मे शरीर वैयावत्य करने मे असमर्थ हो जाता है।

मेवा करने वानो के लिए आगमसाहित्य म विशेष विधान किये गये है।

कल्पसूत्र के ममाचारी प्रकरण म एक विधान है कि वर्षावास स्थित श्रमण को गृहस्थ के घर पर एक बार जाना कल्पता है। पुन पुन गृहस्थ के घर जाना नहा कल्पता। किन्तु आचाय उपाध्याय तपस्वी बानक रुग्ण आदि श्रमणो की सेवा का प्रसग उपस्थित होने पर सेवानिष्ठ मुनि को अनेकबार गृ स्थ के यहाँ भिक्षा के लिए जाना कल्पता है।[6]

श्रमण सस्कृति के श्रमणा के लिए आचाराग[1] वहत्कल्प और

---

१५ वेयण वेयाव चे इरियट्ठाए सजमट्ठाए।
तह पाणवत्तियाए छट्ठ पुण धम्मचि ताए॥

—उत्तराध्ययन २६।३

१६ वासावास प जोसवियाण नि चभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एग गोयरकाल गाहावइकुल भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पवेमित्तए वा न ऽन्न थ आयरियवेयावच्चे। वा उव झायवेयावच्चेण तवस्सिगिलाणव खुडएण वा अवजणजायएण।

—कल्पसूत्र स २४ प ७१ पुण्यविजय जी सम्पादित

१७ अ भुगत खल वासावासे अभिपवुट्ठ बहव पाणा बहुबीया सभूया बहवे बीया अणु भिन्ना अतरा से म गा बहुपाणा बहुबीया जाव ससताणगा अणोक्कता पथा णो वि णाया म गा सेव णच्चा णो गामाणुगाम दइज्जेज्जा तओ सजयामेव वासावास उवल्लिएज्जा।

—आचारांग

१ नो कप्पइ निग्गथाण निग्गथीण वा वासावासासु चरित्तए।

—बहत्कल्प उद्द १ सू ३६ ३७

निशीथ[19] आदि आगम साहित्य मे यह स्पष्ट विधान है कि वह वर्षावास मे जीवो की दया के लिए रक्षा के लिए एक स्थान पर स्थिर होकर सयम साधना करे। वर्षाऋतु मे ग्रामानुग्राम विहार न करके पवन रहित स्थान मे रहे। आगमिक भाषा म उसे प्रतिसलीनता तप कहा है— वासासु पडिसलीणा।[2] श्रमण प्रस्तुत विधान का उल्लघन कर यदि ग्रामानुग्राम विहार करता है तो उसे चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।[2]

स्थानाङ्ग सूत्र म उपयुक्त विधान स भिन्न द्वितीय विधान यह है कि श्रमण वर्षावास मे भी पाँच कारणो से विहार कर सकता है। उसमे एक कारण आचाय उपाध्याय प्रभृति की सेवा है। आचार्य उपाध्यायादि का अन्यत्र वर्षावास है। उन्हे सेवा के लिए आवश्यकता है तो श्रमण विहार कर उनकी सेवा के लिए जा सकता है या वे जहाँ आदेश द सेवा के लिए वहाँ जा सकता है। सेवा के लिए

---

१६ निशीथ सूत्र उद्देशा २ सू ४१।

२ (क) सदा इन्दियनोइन्दियपरिसम लीणा विसेसेण सिणहसघट्ट परिहरण थ णिवातलतणगता वासासु पडिसलोणा नो गामाणुगाम दूतिज्जति।

—दशवकालिक अगस्त्यसिह चूर्णि

(ख) वासासु पडिसलीणा नाम आश्रयस्थिता इत्यर्थ तवविसेसेसु उज्जमति नो गामनगराइसु विहरति।

—दशवकालिक जिनदास चूर्णि प ११६

(ग) वषाक लेषु सलीना सलीना इत्येकाश्रम या भवन्ति।

—दशवकालिक हारिभद्रीया वृत्ति प ११६

२१ जे भिक्खु पढमपाउससि गामाणुगाम दूइज्जइ दूइज्जत वा साइज्जइ।

—निशीथ उद्द २ सू ४१

२२ कप्पइ पचहि ठाणेहि णिग्गथाण णिग्गथीण वा पढमपाउससि गामाणुगाम दूइज्जत्तए तजहा णाणट्ठयाए दसणट्ठयाए चरित्तट्ठयाए आयरियउवज्झायाण वा से वीसु भेज्जा आयरिय उवज्झायाण वा बहिया वेयावच्च करणयाए।

—स्थानाङ्ग ५ स्थान

यदि श्रमण वर्षावास म विहार करता है तो उसे प्रायश्चित्त नहीं आता। हाँ सेवा का प्रसग समुपस्थित होने पर भी यदि वह विहार नही करता है तो प्रायश्चित्त का भागी है। कितना गहरा है सेवा का महत्त्व। आचार्य जिनसेन ने ता सेवा को तप का हृदय माना है।[२]

परिहार विशुद्ध चारित्र को आराधना और साधना भी बिना वयावत्य के सभव नही है। आगम साहित्य म परिहार विशद्ध चारित्र की विधि इस प्रकार है— नौ पूर्वो तक या दशव पूर्व की तृतीय आचार वस्तु तक अध्ययन करने वाले नौ साध अध्ययन के पश्चात् तीर्थङ्कर या जिन्होने तीथङ्कर के सानिध्य म परिहारविशुद्ध चारित्र की साधना की है उन विशिष्ट साधको के सानिध्य मे परिहार विशद्ध चारित्र को स्वीकार करत है। उन नौ श्रमणो म स प्रथम चार श्रमण यदि उष्ण काल हुआ तो उत्कृष्ट अष्टम भक्त की आराधना करते है। यदि शीत काल हुआ तो जघ य षष्ट भक्त मध्यम अष्टम भक्त और उत्कृष्ट दशम भक्त की आराधना करते हैं। यदि वर्षा काल हुआ तो जघन्य अष्टम भक्त मध्यम दशम भक्त और उत्कृष्ट द्वादश भक्त की तपश्चर्या करते है। अवशेष पाच श्रमणो मे से एक श्रमण प्रवचन करता है और चार श्रमण पाँचो की सेवा करते है। तप करने वाले श्रमण पारिहारिक कहलाते है और वयावृत्य करने वाले अनुपारिहारिक कहलाते है। प्रवचन करने वाला साध जो

---

२३ स वयावृत्यमातेने व्रतस्थेष्वामयादिषु।
अना मतरको मूवा तपसो हृदय हि तत्॥

—महापुराण ७२।११।२३३

२४ से कित परिहारविसुद्धिय चरित्तारिया? परिहार विसुद्धि चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता त जहा—निव्विस्समाण परिहार विसुद्धिय चरित्तारिया। निव्विट्ठकाइयपरिहारविसुद्धियचरित्तारिया य। सेत्त परिहार विसुद्धिय चरित्तारिया।

—पन्नवणा पद १ प १ ५

त दुविगप्प निव्विस्समाण निव्विट्ठकाइयवसेण।
परिहारियाऽणुपरिहारियाण कप्पट्ठियस्सवि य॥

गुरुस्थानीय होता है कल्पस्थित कहलाता है। प्रस्तुत क्रम छह माह तक चलता है। उसके पश्चात् चारो तप करने वाले श्रमण वैयावृत्य करते हैं वैयावत्य करनेवाले तप तपते है। प्रवचन करने वाला श्रमण पूववत् ही प्रवचन करता है। छह माह पग होने पर प्रवचन करने वाला तप करता है और आठ श्रमणो म से एक प्रवचन करता है शेष सातो श्रमण सेवा करते है।[२५] छह मास तक तप कर चुकने वाले निर्विष्टकायिक कहलाते है और जो तप कर रहे हो वे निविश्यमानक कहे जाते हैं।

भागम साहित्य मे अनेक स्थलो पर कडाई स्थविर का वरण है। कडाइ स्थविर सेवा क जीते जगाते सजग प्रहरी होत थे। सेवा करना उनवे जीवन का प्रमुख ध्यय होता था। वे सवा की प्रशस्त भावना से प्रेरित होकर सथारा और सलेखना करने वाले के साथ पवतादि पर जाते थ। कहा जाता है कि जब तक सथारा करने वाल का सथारा पूर्ण नही होता था तब तक वे स्वय भी आहारादि ग्रहण नही करते थे और अग्लान भाव से उसकी सेवा करते थ।[२६]

परिहारो पुण परिहारियाण सो गिम्ह सिसिर-वासासु।
पत्त यतिविगप्पो चउत्थयाई तवो नेओ॥
गिम्ह सिसिर-वासासु चउत्थयाईणि बारसताइ।
अड्ढोपक्कतिए जहण्ण मज्झिमुक्कोसयतवाण॥
सेसा उ नियमभत्ता पाय भत्त च ताणमायाम।
होइ नवण्हवि नियमा न कप्पए सेसय सव्व॥
परिहारिया ऽणुपरिहारियाण कप्पट्ठियस्स वि य भत्त।
छ छम्मासा उ तवो अट्ठारसमासिओ कप्पो।

—विशषावश्यक भाष्य प्रथम भाग गा १२७१ से १२७५ प ४५८ ४६
प्रकाशक—आगमोदयसमिति

२५ पन्नवणा सूत्र पृ १ २ १ ३ अमोलक ऋषि जो।

२६ तहारुवेहि कडाइहि थरेहि सद्धि विउल पव्वय सणिय सणियं दूरुहइ दूरुहित्ता तएण ते थेरा भगवतो मेहस्स अणगारस्स अगिलाए वेयाविडय करति।

—ज्ञातासूत्र अ १ सू० ४१

ओघनियुक्तिकार ने श्रमणो के लिए विधान किया है कि जब श्रमण शारीरिक दृष्टि मे सक्षम हो जाय भिक्षा लेने के लिए आने म समथ हो जाय तो सवप्रथम उस साधक का कत व्य है कि ग्लान श्रमण की मन लगाकर सेवा करे।

नियुक्तिकार ने स्पष्ट कहा है कि चरण करण में प्रमाद का आचरण करने वाल सयमीय सद्भाव से विमुख पाश्वस्थ अवसन्न कुशील निग्र था की भी कारण वशात् सेवा की जा सकती है तो फिर विवेकी जितेन्द्रिय मन वचन और काया को गोपन करने वाले उद्यतविहारी मोक्षाभिलाषी की तो हर प्रयत्न से सेवा करनी ही चाहिए।

वद्धो की सेवा करने वाल पुरुषो को ही चारित्र आदि सम्पदा प्राप्त होती है और क्रोधादि कषायो से कलुषित बना मन भी निमल हो जाता है।

गणधर गौतम के प्रश्न के उत्तर मे भगवान श्री महावीर ने कहा—वयावत्य से जीव तीथङ्कर नाम गोत्र का बध करता है।[3] केवल ज्ञान तो कोई भी विशिष्ट साधक प्राप्त कर सकता है पर तीर्थङ्कर बनने क लिए लम्बी साधना करनी पडती है। साधना के जितने भी पथ है उन सभी म सेवा का पथ सवश्रेष्ठ है। यद्यपि सेवा

---

२७ कु जा गिलाणगस्स उ पढमालिअ जाव बहिगमण।

—ओघनियुक्ति ग्लान द्वार

२८ जइता पास थोसण्ण कुसीलनि हवगाणपि देसिअ करण।

चरणकरणालसाण स भावपरमुहाण च ॥

—ओघनियुक्ति ४८

२९ वृद्धानुजीविनामेव स्युश्चारित्रादिसम्पद।

भवत्यपि च निलप मन क्रोधादिकश्मलम्॥

—ज्ञानाणव प्र १५ श्लोक १९

३ वेयावच्चण भते! जीवे किं जणयई?

वेयावच्चेण जीवे तित्थयरनामगोत्त कम्म निबधइ।

—उत्तराध्ययन अ २९ प्रश्न ४३

धम परम गहन माना गया है उस पर चलते समय योगियो के कदम भी लडखडा जाते हैं किन्तु यह विस्मरग नही होना चाहिए कि सुमनो की सुमधर सौरभ वही प्राप्त होती है। कहावत भी है करे सेवा पावे मेवा।

अ य सभी गुण प्रतिपाती हैं वे मानवजीवन के प्रा त तक ही साथ रहते हैं पर वयावृत्य अप्रतिपाती है। वह दूसरे ज म में भी साथ रहता है। सयम साधना से भ्र ट होने पर अथवा मृत्यु प्राप्त होने पर चारित्र की चारु-चद्रिका नष्ट हो जाती है। स्वाध्याय के अभाव म पठित शास्त्र भी विस्मृति के अचल म छिप जाते है किन्तु वयावत्य से प्रा त शभ फल कभी भी नष्ट नहा होता। वह अवश्य ही प्राप्त होता है।

महात्मा बुद्ध ने भी कहा है एक तरफ मानव सौ वर्षों तक जगल में अग्नि की परिचर्या करे और दूसरी तरफ पुण्यात्मा की क्षणभर भी सेवा करे वह सेवा सौ वष तक किये गये यज्ञ से कही उत्तम है।

सदा वद्ध महानुभावो की सेवा करने वाले और अभिवादनशील पुरुष की आयु सौन्दय सुख और बल ये चार वस्तुए वद्धि को प्राप्त

---

३१ सेवाधम परमगहनो योगिनामप्यगम्य ।

—पचतत्र विष्णुशर्मा

३२ वेयावच्च नियय करेह उत्तरगुण धरिताण।
सब्ब किल पडिवाई वेयाव च अपडिवाइ ॥
पडिभ गस्स मयस्स वा नासइ चरण सुय अगुणणाए।
न हु वयाव च चिय सुहोदय नासए कम्म ॥

—ओघनियुक्ति ५३२।५३३

३३ यश्च वषशत जन्तुरग्नि परिचरे वने।
एक च भावितात्मान मुहूतमपि पूजयेत ॥
तदिद पूजन श्रेयो न तु वषशत हुतम् ॥

—धम्मपद (सस्कृत छाया) १ ७

होती है।[34] अत प्रत्येक साधक का कर्त्तव्य है कि वह श्रेष्ठ सद्गुणों के धारक महापुरुषो की निरन्तर सेवा करे।

हिन्दी साहित्य के एक सन्त कवि ने भी बडी सुन्दरता से कहा है कि सन्त की सेवा करने से परमात्मा भी प्रसन्न होता है।

सेवा से ही ज्ञान का अखण्ड प्रकाश प्राप्त होता है। आगम साहित्य का मन्थन करने वाला प्रत्येक जिज्ञासु यह जानता है कि गणधर गौतम और जम्बू आदि ने जो ज्ञान की निर्मल ज्योति प्राप्त की थी उसके अन्तस्तल मे उनकी सेवा ही प्रमुख थी। सेवा से प्राप्त ज्ञान शतशाखी के रूप मे विस्तृत हो सकता है।[36]

ग्लान श्रमण की सेवा करना स्वय भगवान् की सेवा करने के समान है। गौतम महावीर से प्रश्न करते हैं—भगवन्! जो मनुष्य ग्लान की सेवा कर रहा है वह धन्य है अथवा जो मनुष्य दर्शन के द्वारा आपको स्वीकार कर रहा है वह धन्य है?

---

३४ अभिवादनसीलस्स निच्च वड्ढापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुख बलम्॥

—धम्मपद १ ६

(ख) अभिवादनशीलस्य नित्य वृद्धोपसेविन।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।

—मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १२१

३५ सन्तन की भक्ति किया प्रभु रीझत है आप।
जाका बाल खेलाइये ताका रीझ बाप॥

(ख) ज्ञातासूत्र अ १ सू ३

(ग) भगवती श ५ उ ४ सू ५

३६ जे आयरिय उवज्झायाण सुस्सूसा वयण करे।
तेसिं सिक्खा पवड्ढाति जल-सित्ता इव पायवा॥

—दशवैकालिक अ० ९ २ गा १२

उत्तर मे भगवान् कहते हैं—गौतम ! जो मनुष्य ग्लान की सेवा रहा है वह धन्य है ।[3]

गौतम की जिज्ञासा ने पुन वाणी का रूप लिया भगवन् ! आप यह किस हेतु से कह रहे है ?

समाधान की भाषा मे उत्तर मिला—गौतम ! जो ग्लान की सेवा कर रहा है वह मेरी सेवा कर रहा है और जो मेरी सेवा कर रहा है वह ग्लान की सवा कर रहा है। अरिहन्त का दर्शन अरिहंत की आज्ञा का पालन करना है। अर्थात् अरिहत के दशन का सार है—अरिहन्त की आज्ञा का पालन करना। अत हे गौतम ! मैंने ऐसा कहा कि जो मनुष्य ग्लान की सवा कर रहा है वह दर्शन से मुझे स्वीकार कर रहा। वही मेरा सच्चा उपासक है।

महात्मा बुद्ध ने भी एक रुग्ण भिक्षु को दर्द से छटपटाते देखकर आनन्द आदि प्रधान श्रमणो को सम्बोधितकर कहा था—आनन्द सर्व

---

३७ कि भन्ते ! जे गिलाण पडियरइ से धन्न उदाहु जे तुम दसणेण पडिवज्जइ ?

गोयमा ! जे गिलाण पडियरइ ।

—आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति पृ ६६१

(ख) जो गिलाण पडियरइ सो म पडियरइ।
जो म पडियरइ सो गिलाण पडियरइ ।।

—ओघनियुक्ति सटीक गा २

(ग) जे गिलाण पडियरइ से धण्ण

(घ) उत्तराध्ययन सर्वार्थ सिद्धि परीषह अध्ययन

३ से केणट्ठ ण भन्ते एव वुच्चइ ?

जे गिलाण पडियरइ से म दसणेणं पडिवज्जइ

जे म दसणेण पडिवज्जइ से गिलाण पडियरइत्ति आणाकरणसार खु अरहंताण दसण से तेणटठेण गोयमा ! एव वुच्चइ जे गिलाणं पडियरइ से म पडिवज्जइ जे मं पडिवज्जइ से गिलाण पडिवज्जइ।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति पृ ६६१ ६२

प्रथम रुग्ण भिक्षुओ की सेवा करो। जिनको मेरी सेवा करनी हो वे पीडितो की सेवा कर।

एक पाश्चात्य विचारक ने भी कहा है—गरीबो की सेवा ईश्वर की सेवा है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम की जिज्ञासा का समाधान करते हुए वशिष्ठ ने कहा—जिस किसी भी तरह मन वचन और काय से किसी की सेवा करना ईश्वरपूजा है।

भगवान् का एक नाम दीनबन्धु है। उन्हे दीनानाथ भी कहते है। दीन और रुग्ण की सेवा करना साक्षात् जीवित भगवान् की सेवा करना है। नरसेवा ही नारायणसेवा है।

प्रश्न है कि जब सेवा का इतना गहरा महत्त्व है और जन-साहित्य मे भी सेवा का इतना उल्लेख है तो जन स स्कृति के श्रमण को तो नि सकोच भाव से सभी की सेवा करनी चाहिए चाहे वह गृहस्थ हो या श्रमण हो।

उत्तर है कि जन सस्कृति के श्रमण की अपनी मर्यादा है। उसका अपना कर्मक्षेत्र है। मर्यादा मे रहकर वह गृहस्थ की द्रव्य सेवा नही किन्तु भाव सेवा कर सकता है। भाव सेवा का महत्त्व भी कम नही है। यदि श्रमण अपने श्रमण धर्म की मर्यादा को भूलकर गृहस्थ की द्रव्य सेवा करता है तो वह श्रमण के लिए अनाचार है।[४२]

(ख) जो गिलाण पडियरइ से म भ णाणेण दसणेण चरित्तण पडिवज्जइ —बृहत्कल्प सूत्र लघुभाष्य

(ग) उत्तराध्ययन सर्वार्थ सिद्धि परीषह अध्ययन

(घ) आणाराहण दसण खु जिणाण

३६ विनय पिटक ८।७।६।का साराश

४ Se v ce of poo is the er ce of GOD

४१ येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि देहिन।
सतोष जनयेद् राम। तदेवेश्वरपूजनम्॥

४२ गिहिणो वेयावडिय

—दशवैकालिक अ ३ गा ६

श्रमण का कर्त्तव्य है कि संयमशील श्रमण की सेवा करे। ग्लान साधु की सेवा करने से तीर्थ की अनुवर्तना होती है और तीर्थङ्कर देव की भक्ति होती।[3] आचार्य का भी कर्त्तव्य है कि सहधर्मी के रोगी होने पर उसकी यथा शक्ति सेवा करे।[44] जो संघ सेवा शुश्रूषा की भावना को नहीं जानता है उसे प्रश्रय नहीं देना है जिस संघ के आचार्य अपने संघ के सदस्यों की सुख दुःख निवारण की विधि नहीं जानते रोगी की चिकित्सा से अनभिज्ञ हैं वह संघ छिन्न भिन्न होकर नष्ट हो जाता है।

संघसमुत्कर्ष के लिए अपेक्षित है कि संघ का प्रत्येक सदस्य सेवानिष्ठ हो। नन्दिषेण[6] मेघकुमार बाहु और सुबाहु[47] मुनि

(ख) गिहिणो वेयावडियं न कुज्जा।

—दशवैकालिक दूसरी चूलिका गा ६

(ग) गृहिणो गृहस्थस्य वैयावृत्त्य गृहिभावोपकाराय तत्कर्मस्वात्मनो व्यावृत्तभाव न कुर्यात् स्वपरोभयाश्रय समायोजन दोषात्।

—दशवैकालिक-हारिभद्रीया वृत्ति प २ १

४३ तित्थाणुसज्जणा खलु भत्ती य कया हवइ एव।

—बृहत्कल्पसूत्र लघुभाष्य गा १८७८

४४ साहम्मियस्स गिलायमाणस्स अहाथाम वेयावच्च अब्भुट्ठित्ता भवई।

—दशाश्रुतस्कन्ध चतुर्थदशा

४५ उप्पण्णेण गेलाणे जो गणधारी न जाणई तेगिच्छ।
दीस ततो विणासो सुह दुक्खा तेण ‍‍चना ॥

—व्यवहार भाष्य ५।१२८

४६ उत्तराध्ययन टीका—कथा।

४७ मज्जप्पभिईणं भंते! मम दो अच्छीणि मोत्तण।
अवसेसे काए समणाण निग्गथाण ।सट्ठ।

—ज्ञातृधर्म कथा अ १

४८ आवश्यक चूर्णि पृ १३३

(ख) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प २१६

(ग) त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र १।१।६ ६ आचार्य हेमचन्द्र कृत

की तरह संघ के प्रत्येक सदस्य के जीवन के कण-कण मे सेवा की विराट भावना अठखेलियाँ करती रहे। सेवा का प्रसग उपस्थित होने पर सच्चे सेनानी की तरह सदा तत्पर रहे बगले न झाँके। यदि वह झाँकता है तो प्रायश्चित्त का अधिकारी है।

जो श्रमण श्रमण की ग्लानता सुनकर भी उसकी उपेक्षा करता है तो उसे [सविस्तार] गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त का भागी होना पडता है।

यदि कोई समथ साधु बीमार साध को छोडकर अन्य किसी कार्य मे लग जाय बीमार की सार सभाल न करे तो उसे गुरु चौमासी प्रायश्चित्त आता है।

रास्ते मे जाते हुए गाव मे प्रवेश करते हुए अथवा भिक्षा के लिए परिभ्रमण करते हुए श्रमण को यदि किसी मुनि की ग्लाना वस्था की सूचना प्राप्त हो तो वह आवश्यक काय को छोडकर उसके पास सेवा के लिए पहुँचे। यदि वह नही पहुँचता है तो उसे गुरु चातु र्मासिक प्रायश्चित्त आता है।[२]

एक श्रमण विहार कर जा रहा है। उस जिस स्थान पर पहुँचना है वहाँ स्वगच्छ का अथवा परगच्छ का श्रमण ग्लान है वहाँ पहुँचने

(घ) देखिए लेखक का ऋषभदेव एक परिशीलन ग्रन्थ।

४६ आवश्यक चूर्णि पृ १३३

(ख) आवश्यक नियुक्ति मलयगिरि वृत्ति।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ २११

(च) त्रिषष्ठि १।१।६ ६

५ जो उ उवेह कुज्जा लग्गइ गुरुए सवित्थारे।

—बृहत्कल्प सूत्र भाष्य १८७५

५१ जे भिक्खू गिलाण सोच्चा णच्चा न गवेसइ न गवेसत वा साइज्जइ आवज्जइ चउम्मासिय परिहार ठाणं अणुग्घाइय।

—निशीथ १।३७

५२ सोऊण उ गिलाण पथ गामे य भिक्खवेलाए।
जइ तुरिय नागच्छइ ल गइ गरुय स चउमासे॥

—बृहत्कल्पसूत्र भाष्य १८७२

पर मुझे उनकी शुश्रूषा करनी पड़ेगी इस भावना से यदि वह श्रमण उस स्थान को छोड़कर अरण्य में होकर जाने का मार्ग ग्रहण करता है अथवा जिस मार्ग स आया उसी मार्ग से पुन लौटने का प्रयत्न करता है तो उसे आज्ञा अनवस्था मिथ्यात्व और विराधना आदि दोष लगत हैं।

यदि कोई श्रमण अपने साथी मुनि की अस्वस्थता की उपेक्षा कर तपश्चरण करता है शास्त्र स्वाध्याय करता है तो वह भी प्रायश्चित्त का अधिकारी है। वह सघ मे रहने के अयोग्य है। सेवा से जी चुराना अपने आत्म गुणो का हनन करना है। और साथ ही सघीय मर्यादा की उपेक्षा करना है जो सबसे बडा पाप है।

दशाश्र तस्कन्ध समवायाग और आवश्यक सूत्र मे महामोहनीय कम बन्धन के तीस प्रकार बताये हैं। अष्ट कर्म प्रकृतियो मे मोहनीय कम सबसे अधिक पतन का कारण है। जब दुरध्यवसाय की तीव्रता एव क्र रता अधिक मात्रा मे बढ जाती है तब महामोहनीय कम का बध होता है अर्थात् उत्कृष्ट सत्तर कोडाकोडी सागर तक की स्थिति वाले मोहनीय कम का बध करता है। प्रस्तुत तीस भेदो म बाईसवा और पच्चीसवा भेद सेवा न करने के सम्बन्ध मे है। सेवा न करने से और सेवा के प्रति उपेक्षा रखने से आत्मा का कितना भयकर पतन होता है वह इस से स्पष्ट है।

आचाय और उपाध्याय की जो सम्यक प्रकार से सेवा नही करता वह अप्रतिपूजक और अहकारी होने से महामोहनीय कम की उपाजना करता है।[५४]

---

५३ सोऊण उ गिलाण उम्मग्ग गच्छ पडिवह वावि।
मग्गाओ वा मग्ग सकमई आणमाईणि॥

—बृहत्कल्प नियुक्ति भाष्य १८७१

५४ आयरिय—उवज्झायाण सम्म नो पडितप्पइ।
अप्पडिपूयए थद्ध महामोह पकुव्वइ॥

—दशाश्रु त स्कन्ध ६ दशा गा २२

जो शक्ति होने पर भी दूसरों की सेवा नही करता है और कहता है— जब मैं रुग्ण हुआ था तब इसने भी मेरी सवा नही की थी। मैं क्यो करू ? यदि वह व्यथा स व्यथित है तो भले ही हो मुझे क्या गज है ? ऐसा विचार करने वाला भी महामोहनीय कम का बंधन करता है।

आचाय जिनदास गणी महत्तर ने सवा को ही भक्ति माना है। आचाय के सम्मान म खडा होना दण्ड ग्रहण करना पांव पोछना आमन देना आदि जो सेवा है वही भक्ति है।[६]

राजेन्द्र कोषकार ने सेवा का अर्थ भक्ति और विनय किया है।[७] उमास्वाति ने विनय के ज्ञान दशन चारित्र और उपचार ये चार भेद किये है। इनमे उपचार का अथ आचाय पूज्यपाद ने सर्वार्थ सिद्धि मे आचाय के पीछे चलना सामने आने पर खडा होना अजलिबद्ध होकर

(ख) समवायाग स म ३

(ग) आवश्यक अ ४

५५ साहारणट्ठा जे केइ गिलाणम्मि उवट्ठिए।
पभू न कुणइ किच्च मज्झ पि से न कुव्वइ॥
सढ नियडी-पण्णाणे कलुसाउल—चेयसे।
अप्पणो य अबोहीए महामोह पकुव्वइ॥

—दशाश्रुत स्कन्ध ६ दशा गा २५।२६

(ख) समवायाग सम ३

(ग) आवश्यक अ ४

५६ अब्भुट्ठाणदडग्गहण पायपुछणासणप्पदाणगहणादीहि सेवा जा सा भक्ति।

—निशीथ चूर्णि

५७ सेवाया भक्तिर्विनय।

—राजेन्द्र कोष

५ ज्ञान दर्शन चारित्रोपचारा।

—तत्त्वार्थसूत्र अ ९ सू २३

नमस्कार करना किया है। जो सेवा ही है। आचार्य कौटिल्य ने वयावृत्य का अर्थ परिचर्या किया है।

सेवा आत्म-साधना का अपूर्व उपाय है नर से नारायण बनने की श्र ष्ठ कला है। सवा करने वाला मवा करानेवा ले स महान् होता है। शिर सेव्य है और पैर सेवक है। सेव्य ही सेवक के चरणो मे झुकता है। राम स य थ और हनुमान सवक थे। हनुमान के उपासना गृह (मन्दिर) प्राय प्रत्येक गाँव मे मिलते हैं किन्तु राम के क्वचित् ही। हनुमान की यह लोक प्रियता सिद्ध करती है कि सव्य से भी सवक अधिक जन-मन प्रिय होता है। गाधी जी के शब्दो मे सवा से बढकर व्यक्ति को द्रवित करने वाली और कोई चीज संसार मे नही है।[६]

ज्ञातृधम कथा का एक मधर प्रसग है। सवामूर्ति पथक मुनि की सवानिष्ठा ने शलकराजर्षि के जीवन को आमूलचूल परिवर्तित कर दिया। उन्हे न केवल द्रव्यनिद्रा से बल्कि भावनिद्रा स भी जागृतकर दिया था।[६]

आज सेवा का नारा एक किनारे स दूसरे किनारे तक ग ज रहा है। सवको की भरमार है पर सवा मे जसी चाहिए वैसी चमक पदा नही हो रही है। इसका कारण है प्रेम और तन्मयता का अभाव। कत्तव्य की दृष्टि स जो सवा की जाती है उसमे समपण एव आत्मोत्सग ही प्रमुख होता है। उसमे बदले की चाह नही होती। वह घडी के काटे की तरह निरन्तर चलती रहती है।

---

५९ तद्व यावृत्यकाराणामधदण्ड । व्याख्या—तद्व यावृत्यकाराणां तस्य वयावृत्यकारा विशेषण आसमन्तावलन्त इति। व्यावृत्त परिचारक तस्य कम वयावृत्य परिचर्या तत कुवन्त परिचारका तेषा अधदण्ड।
कौटिलीय अर्थशास्त्र अधिकरण २ प्रकरण २३।२

६ गाँधी जी की सूक्तियाँ पृ १११

६१ णायाधम्मकहाओ श्र त १ अ ५

प्रेम की जिस उर्वर भूमि से कर्त्तव्य का जन्म होता है वह कर्त्तव्य सेवा है। मा पुत्र की सेवा करती है। अपने आपको पुत्र की सेवा मे विस्मृत कर देती है। भूख प्यास भूल जाती है। एतदर्थ ही उसकी सेवा उच्च कोटि की गिनी गई है। जिस सेवा मे आत्म भाव का अभाव होता है उसमे तोलने की बुद्धि रहती है और जहाँ पर तोल है वहाँ हृदय के माधुर्य का मोल कम हो जाता है। अत भारतीय संस्कृति साधक के अन्तर्हृदय मे सेवा की सही ज्योति जगाती है और सेवक के हृदय मे आत्मार्पण की भव्य भावना पैदा करती है। अग्लान भाव से सेवा करने को उत्प्रेरित करती है।[६२]



६२ गिलाणस्स अगिलाए वेयाव च करणयाए अब्भुट्ठेयव्वं भवइ।

—स्थानाङ्ग स्थान ८ सूत्र ६२

दस | धर्म का प्रवेशद्वार दान

दान धर्मरूपी भव्य भवन का प्रवेशद्वार है।[1] हृदय की उदारता का पावन प्रतीक है। मन की विराटता का द्योतक है जीवन के माधय का प्रतिबिम्ब है।

डुदान् धातु से अन् प्रत्य लगकर दान श॰॰ निष्पन्न हुआ है। जो दिया जाता है वह दान है।[2] आचाय शकर ने दान का अथ सविभाग किया है।[3] आचार्य उमास्वाति ने—अपनी आत्मा और पर के अनुग्रह के लिए त्याग करना दान माना है।[4]

उक्त मान्यता द्वारा यह ध्वनित किया गया है कि दाता अपन दान से पर का ही उपकार नही करता वरन् स्वय भी उपकृत होता है। इस प्रकार दाता आदाता को उपकृत करता है तो आदाता भी दाता को उपकृत करता है। आखिर आदाता ही तो दाता को दान धम का

---

१ प्राथना साधक को ईश्वर के माग पर आधी दूरी तक पहुचायगी उपवास महल के द्वार तक ले जायेगा और द न म॰ल मे प्रवेश करायेगा।

—मुहम्मद

२ दीयते इति दान।

३ दान सविभाग।

—आचाय शकर

४ अनुग्रहाथ स्वस्यातिसर्गो दानम्।

—तत्त्वार्थ सूत्र अ ७। सू ३

अवसर प्रदान करता है। दान की इस व्याख्या को हृदयगम कर लेने वाले दाता के मन मे अहकार उत्पन्न न होगा। और यह निरहकार भाव ही दान का आभूषण है। इसी से दान के पूर्ण फल की प्राप्ति होती है।

दान धर्म है। दान शील तप और भावना ये धर्म के चार आधार स्तम्भ है। दान उनमे प्रथम है और सबसे अधिक आसान है। आज दिन तक जितने भी तीर्थङ्कर हुए है वे सभी सयम ग्रहण करने के पूर्व एक वर्ष तक सूर्योदय से लेकर प्रात कालीन भोजन तक एक करोड आठ लाख स्वर्ण मुद्राए दान देते रहे है। वे एक वर्ष मे तीन अरब अठासी करोड और अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राओ का दान

---

५ दान धर्म।

—कौटिल्य

६ सो धम्मो चउभेओ उवइट्ठो सयलजिणवरिंदेहिं।
दाण सील च तवो भावो विअ तस्सिमे भेया॥

(ख) दुर्गतिप्रपतज्जन्तु—धारणाद् धर्म उच्यते।
दान शील तपो भाव—भेदात स तु चतुर्विध॥

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र १।१।१५२

(ग) दान सील च तवा भावो एव चउव्विहो धम्मो।
सव्वजिणेहिं भणिओ तहा दुहा सुअचरित्तहिं॥

—सप्ततिशतस्थान प्रक गा ९६ सोमतिलक सूरि

७ सवच्छरेण होहिति अभिक्खमण तु जिणवरिदाण।
तो अत्थि सपदाण पव्वत्ती पुव्वसूराओ॥
एगा हिरण्णकोडी अट्ठेव अणूणया सयसहस्सा।
सूरोदय-मादीय दि जइ जा पायरासोत्ति॥

—आचारांग द्वि श्रु अ २३ गा ११२।११३

(ख) एगा हिरण्णकोडी अट्ठेव अणूणगा सयसहस्सा।
सूरोदयमाईय दिज्जइ जा पायरासाओ॥

—आवश्यक निर्यु क्ति गा २३६ भद्रबाहु

(ग) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १।३।२३

देते हैं। दान ग्रहण करने के लिए जो भी सनाथ अनाथ पथिक प्रेष्य भिक्षु आदि आजाते हैं उन्हे वे बिना भे भाव के दान देते हैं।[९] सयम लेने के पश्चात् अन्य तीन धर्मों का आराधन हो सकता है पर दान नही दिया जा सकता ह। अत तीथङ्कर प्रथम दान देकर ससार को दान देने का उद्‌बोधन दते है। वदिक ऋषि के शब्दो मे उनका प्रस्तुत आचरण यही प्रेरणा देता ह कि यदि तुम सौ हाथो से इकटठा करते हो तो हजार हाथो से बाँट दो।[१०] दान करने से गौरव प्राप्त होता ह धन का सचय करने से नही। जल का दान करने वाला मेघ सदा ऊपर रहता ह और सग्रह करने वाला समुद्र नीचे रहता है।[११] भतृ हरि ने कहा ः— दान भोग और नाश ये तीन धन की गतियाँ ह। जो न देता ह और न भोगता ही ह उसका धन नष्ट हो जाता ह।[१२] और जब नष्ट हो जाता ह तो धन का स्वामी मधु

---

८ तिण्णेव य कोडिसया अटठासीई अ होनि कोडीओ।
असिय च सयसहस्सा एय सव छरे दिण्ण।।

—आवश्यक नियुक्ति गा २४२

(ख) त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्र १।३।२४ प ६

(ग) आवश्यक भाष्य गा ५ पृ २६

६ तते ण मल्ली अरहा कल्लाकल्लि जाव मागहओ पायरासोति बहूण सणाहाण य अणाहाण य पथियाण य पहियाण य करोडियाण य कप्पडियाण य एगमेग हिरण्णकोडी अटठ य अणूणाति सयसहस्साति इमेयारूव अत्थसपदाण दलयति।

—ज्ञातृधम अ । सू ७६

१ शतहस्त समाहर सहस्र हस्त सकिर।

—अथववेद

११ गौरव प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य सचयात्।
स्थितिरुच्च पयोदाना पयोधीनामध स्थिति।।

१२ दान भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिभवति।।

—नीतिशतक श्लो ४३

मक्खी की तरह हाथ मलकर शिर धुनता हुआ पश्चात्ताप करता है।[13] इसके विपरीत जो उदारमना होते हैं वे कर्ण की तरह देने में ही आनन्द की अनुभूति करते हैं। जिन आत्माओं को नीचे जाना होता वे धन को निम्न कार्यों मे खर्च करते है और जिनको ऊपर जाना होता है वे धन को सन्मार्ग मे व्यय करते हैं।

किसान पहले खेत को रेशम की तरह मुलायम करता है उसके पश्चात् उसमें बीज बोता है। हृदय रूपी खेत को भी दान देकर मुलायम कीजिये फिर अन्य व्रतादि रूपी बीज बोइये।

श्रावक का जीवन उदार होता है हृदय विराट् होता है। उसके घर का द्वार तुङ्गिया नगरी के श्रावकों की तरह सदा खुला रहता है।[14] जो भी अतिथि अभ्यागत उसके द्वार पर आता है उसका वह हृदय से स्वागत करता है और आवश्यक वस्तु प्रसन्नता से प्रदान करता है। देना ही उसके जीवन का प्रधान लक्ष्य है। देने से समाधि उत्पन्न होती है और समाधि के कारण उसे भी समाधि प्राप्त होती है।[15]

आगम साहित्य का अध्ययन करने वाला विद्यार्थी सहज ही जान सकता है कि गणधर गौतम ने जब कभी भी किसी व्यक्ति को विपुल वैभव सम्पन्न देखा तब उन्होंने भगवान् श्री महावीर के समक्ष यह

---

१३ देयं भोज ! धनं धनं सुकृतिभिर्नो सञ्चितं सर्वदा।
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता।
आश्चर्यं मधुदानभोगरहितं नष्टं चिरात् सञ्चितम्।
निर्वेदादिति पाणिपादयुगलं घर्षन्त्यहो मक्षिका॥

—(कालीदास) चाणक्यनीति अ ११

१४ ऊसियफलिहे अवगुयदुवारे।

—भगवती शतक २ उद्दे ५

१५ समणोवासए णं तहारूवं समणं वा जाव पडिलाभेमाणे तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा समाहिं उप्पाएति समाहिकारएणं तमेव समाहिं पडिलभइ।

—भगवती शतक ७ उ १ सू २६३

जिज्ञासा प्रस्तुत की भगवन् ! इस व्यक्ति ने पूर्वभव में क्या दान दिया था जिसके कारण इसे अतुल सम्पत्ति सम्प्राप्त हुई है ?[16] समाधान करते हुए भगवान् उसके दानसम्बन्धी पूर्वभव के सुनहरे संस्मरण सुनाते हैं।[17] दान से जीव साता वेदनीय कर्म का बन्धन करता है। +

दान के दिव्य प्रभाव से ही श्री ऋषभदेव के जीव ने और भगवान श्री महावीर के जीव ने क्रमशः धन्ना श्रेष्ठी के भव में और नयसार के भव में सर्व प्रथम सम्यक्त्व की उपलब्धि की। दान से ही शालिभद्र ने अपरिमित एवं स्वर्गीय सम्पत्ति प्राप्त की।[2]

---

१६ किं वा दच्चा ?

—सुखविपाक अ १

१७ देखिए सुखविपाक।

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य।

—तत्त्वार्थ ६।१३

१८ धणसत्थवाहघोसण जइगमणं अडवि वासठाणं च।
बहु वोलीणे वासे चिंता घयदाणमासि तया।।

—आवश्यक निर्युक्ति गा १६८

(ख) आवश्यक चूर्णि पृ १३३

(ग) आवश्यक मलयगिरिवृत्ति प १५७।१

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प ११५

(ङ) तदानीं सार्थवाहेन दानस्यास्य प्रभावतः।
लेभे मोक्षतरोर्बीजं बोधिबीजं सुदुर्लभम्।।

—त्रिषष्ठि शलाकापुरुष चरित्र १।१।१४३

१९ दाणऽन्न पंथ नयणं अणुकंप गुरुणकहणसम्मत्तं।

—आवश्यक भाष्य गा २

(ख) आवश्यक निर्युक्ति गा १४३ १४४ प १५२

(ग) त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र १०।१।३ २२

२ त्रिषष्ठि शलाका ।१ ।१

दान श्रावक के जीवन का प्रधान गुण है।[२१] द्वादशव्रतो मे अन्तिम व्रत अतिथिसविभाग व्रत है।[२] पण्डित राजमल्ल जी ने उसे सबसे बडा व्रत कहा है।[२३] जो सविभाग नही करता उसकी मुक्ति नही होती।[२] श्रावक प्रतिदिन प्रात तीन मनोरथो का चिन्तन करता है। उनम प्रथम मनोरथ है—जिस दिन मैं अपने परिग्रह को सुपात्र की सेवा म त्याग कर प्रसन्नता अनुभव करूगा ममता के भार से मुक्त बनूगा वह दिन मेरे लिए कल्याणकारी होगा[२५] श्रावको के लिए यह भी विधान है कि भोजन करने के पूर्व कुछ समय तक अतिथि की प्रतीक्षा कर। राजप्रश्नीय सूत्र मे सम्राटप्रदेशी का वर्णन है। सम्राट प्रदेशी के जीवन की तस्वीर केशीश्रमण के उपदेश स बदल जाती है। वह नास्तिक से परम आस्तिक बनता है। श्रमणोपासक बनते ही वह अपनी राज्य श्री को चार भागो मे विभक्त करता है। एक भाग से वह विराट दानशाला खोलता है। जो भी श्रमण ब्राह्मण भिक्ष राहगीर आदि आते है उन्हे वह सहर्ष दान करता है।[२६] इतिहासप्रसिद्ध सम्राट कुमारपाल ने भी

---

२१ (क) धर्मबिन्दु आचार्य हरिभद्र

(ख) धर्मरत्न प्रकरण

(ग) योगशास्त्र हेमचन्द्र

(घ) श्राद्धगुण विवरण

२२ अतिथिसविभागव्रत

—उपासक भाग अ १

२३ अतिथिसविभागाख्य व्रतमस्ति व्रतार्थिनाम्।
सवव्रतशिरोरत्नमि हामुत्र सुखप्रदम्॥

२४ असविभागी न हु तस्स मोक्खो। दश अ ६

२५ स्थानाङ्गसूत्र ३ ४।२१

२६ अह ण सेयवियानगरीपामोक्खाइ सत्त गामसहस्साइ चत्तारि भागे करिस्सामि। एग भाग बलवाहणस्स दलइस्सामि एग भाग कोट्ठागारे छुभिस्सामि एग भाग अतेउरस्स दलइस्सामि एगेण भागेण महई महालय कूडागार साल करिस्सामि। तत्थण बहूहि पुरिसेहि दिन्न

आचार्य श्री हेमचन्द्र के प्रवचनपीयूष का पानकर परमार्हत का विरुद पाया और असहायों के भोजन वस्त्र के निमित्त सत्रागार की स्थापना की। इसी उद्द श्य की पूर्ति के लिए उसने एक मठ का भी निर्माण कराया था।[२] जैन श्रावक भामाशाह जगडूशाह और खेमादेदराणी की दानवीरता किसी से छिपी नही है जिन्होने राष्ट्र के लिए सर्वस्व समपरण कर दिया था। वे श्रमणोपासक आनन्द की तरह ही समाज के लिए मेढी स्तम्भ आधार रूप थे आंख के समान पथ प्रदर्शक थे और भोजन के समान आलम्बन रूप थे।[२] यदि आपका स्वधर्मी बन्धु आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक सकटग्रस्त है उसे समय पर खाने को नही मिल रहा है पहनने को कपडे नही मिल रहे हैं रहने को झोंपडी नसीब नही है उस समय आप यदि उसकी दीनता पर हसत हैं तो आप भी उसी बादशाह के खानदान के है जो नगर को आग मे झुलसता देखकर भी वंशी बजाया करता था। यदि आप उसकी स्थिति को देखकर भी उधर ध्यान नही देत है तो मिट्टी के लौदे के समान हैं यदि आप उसे केवल टुकुर टकुर निहारते है तो पशु के समान है। यदि आप उसे सहायता देत है उस गिरे हुए को ऊपर उठाते है तो मनुष्य हैं श्रावक है। एक पाश्चात्य विचारक ने कहा है—जीवन का अर्थ ही दान है।[२] प्राथनामंदिर मे जाकर प्राथना के लिए सो बार हाथ जोडने के बजाय दान के लिए एक बार हाथ खोलना अधिक महत्त्वपूर्ण है। अत विचार किये बिना देते जाओ।[१] हाथ क

भइभत्त वेयणेहि विउल अस १४ उवक्खडावेत्ता बहूणं समण माहण भिक्खु या । पथियपहिया । पडिलाभेमाणे

—रायपसेणिय

२७ कुमारपाल प्रतिबोध सोमप्रभाचाय

२८ मेढिभूए आहारे आलबणे चक्खुमेढिभू

उपासकदशाग अ १

२९ L fe m a g g

३० One ha d opened in ch ty is w th h d ed n Prayer

३१ Give w thout a thought

शोभा दान देने से है न कि रत्नजटित कंगन पहनने से।[32] भारतीय साहित्य में हाथ को कमल की उपमा दी है।[33] उसे कर कमल कहते है। हाथ तभी कमल बनता है जब उसमे स दान की मन मोहक सुगन्ध निकलती है। देना एहसान नही है यह जीवन का ताना बाना है। ताना बाने म स्थित है और बाना ताने स। यदि दोनो का सहयोग नष्ट हो जायेगा तो दोनो केवल सूत रह जायगे।

भारतवष क ऋषियो का चिन्तन कहता ह कि दान दो पर देने वाले को दीन हीन और दरिद्र समझकर मत दो। यदि दीन हीन और दरिद्र समझ कर दागे तो उसमे अहकार का विष मिल जायेगा जो दान के ओज को नष्ट कर देगा। अत लेने वाले को भगवान् समझ कर दो। भक्त मन्दिर मे पहुँचता ह मूर्ति के सामने मोहनभोग और नवेद्य चढाता ह। वह भगवान् को भूखा और दीन हीन समझकर अपण नही करता किन्तु विश्वम्भर समझकर देता ह। हे प्रभो ! यह सभी तुम्हारा ह और तुम्हे ही समपरण कर रहा हूँ यह कितनी गहरी और ऊची भावना ह। अपण मे कितना आनन्द और उल्लास ह।

पुत्र पिता को भोजन अपण करता ह तो उसमे भी यही भावना ह। भूखे है दो ऐसा सोचकर नहा देता किन्तु पितृदेवो भव समझकर देता ह। वसे ही प्रत्येक आत्मा को परमात्मा समझकर दो बादलो की तरह अपण कर दो। बादल आकाश से पानी नही लाते किन्तु भूमण्डल से ही ग्रहण करते हैं। बादलो के पास जो एक एक बूद का अस्तित्व ह वह इसी भू मण्डल का ह इसी से लिया और इसी को अपण कर दिया। तुम्हारी चीज तुम्हे ही समर्पित ह। इस अपण मे एहसान नही किन्तु प्रेम ह। अहकार नही विनय ह।

यदि आप भाग्यवान् है तो अपन भाग म से भाग देना सीखिए। आपकी सम्पत्ति म समाज का भी भाग ह। यदि भाइयो के हिस्से हो

---

३२ दानेन पाणिन तु कङ्कणेन।

३३ दानामृत यस्य करारविन्दे।

३४ त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्प्यते।

रहे हो और आपको अपना भाग नही मिलता है तो आप कितने बेचैन होते हैं ? किन्तु समाज का भाग जो आपके पास है उसे देने के लिए बेचैन होते हैं या नही ?

भारतीय संस्कृति के एक मननशील मेधावी सन्त ने कहा—'जो अर्पण करता है वह देवता है। देवें सो देवता और लवें सो लवता। सूर्य निरन्तर प्रकाश देता है अतः वह देवता है। जिसमे निरंतर अर्पण करने की शक्ति है वह देव है। मराठी भाषा मे दान को देव कहा है। जिसके अन्तर मे देवत्व विद्यमान है वह दाता है।

प्राचीन युग मे आचार्य दीक्षान्त भाषण मे शिष्य से कहते थे—वत्स ! तुम गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करने के लिए जा रहे हो। तुम्हारे यहाँ कोई अतिथि आये तो श्रद्धा से देना अश्रद्धा से न देना प्रसन्नता से देना नम्रता से देना पर भय से न देना सहानुभूति और प्रेम से देना।[35] पद्मपुराणकार ने कहा—यदि शत्रु भी घर पर आजाय तो उसे भी अर्पण करो। किसी भी वस्तु के लिए इंकार न करो।[36] जो दिया जाता है वह मीठा होता है और जो लिया जाता है वह कडुवा होता है। वृक्ष अपनी इच्छा से जो फल देता है वह कितना मधुर होता ? पर जो बलात् लिया जाता है उसमे मधुरता कहाँ होती है ?

दान एक वशीकरण मन्त्र है जो सभी प्राणियों को मोह लेता है पर को भी अपना बना लेता है। अतः प्रतिदिन दान दीजिए।[37]

---

३५ श्रद्धया देयम् ! अश्रद्धयाऽदेयम् ! श्रिया देयम्।
ह्रिया देयम् ! भियाऽदेयम् ! संविदा देयम्॥

तैत्तिरीय उपनिषद् १।११

३६ शत्रावपि गृहायाते नास्त्यदेयं तु किंचन।

—पद्मपुराण

३७ दानेन सत्वानि वशीभवन्ति दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानात्तस्माद्धि दानं सततं प्रदेयम्॥

—धर्मरत्न

श्रद्धा से अर्पण कीजिए । दान से ही अमरपद प्राप्त होता है ।

दान के विज्ञापन की आवश्यकता नहीं है । किसान खेत म जो बीज बोता है उसे खुला न ी रखता मिट्टी से ढक देता है । यदि बीज मिट्टी मे ढँकता नही है तो उसमे अकुर नही उगता । वह नष्ट हो जाता है । वसे ही दान को भी ढकिए उस गुप्त रहने दीजिए उसका विज्ञापन न कीजिय । एक विचारक ने कहा है जो मानव अपने हाथ से दान देता है वह देता नही पर अपने हाथ से इकट्ठा करता ह । एक अ य पाश्चात्य विचारक ने लिखा ह कि बहुत अधिक देने से उदारता सिद्ध नही होती कि तु आवश्यकता के समय सहायता प्रदान करना ही सच्ची उदारता है । दरिद्रो को दीजिये ऐश्वर्यसम्पन्न व्यक्तियो को देना तो स्वस्थ और प्रसन्न व्यक्ति को औषध प्रदान करने के समान ह । गजे व्यक्ति का जिस प्रकार कघी देना और अ ध व्यक्ति को दपण देना निरथक है वस ही अनावश्यक और अनुपयोगी वस्तुओ का दान भी निरथक ह । ज्ञातधर्म कथा का प्रसंग ह कि नागश्री ने दीघ तपस्वी धम रुचि अनगार को कडुए तुम्बे का शाक दिया और कठोपनिषद् का प्रसग ह कि वाजिश्रवा ऋषि

---

३ दान ददतु सद्धाय सील रक्खन्तु सब्बदा ।
भावनाभिरता होन्तु एत बुद्धान सासन ।। —महात्मा बुद्ध

३६ दक्षिणावन्तो अमृत भजन्ते । —ऋग्वेद

४ Th h nd th t g g th

४१ I ber l ty doe t t gi ng mu h but in g g t th ght m t

४२ दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।
व्याधितस्यौषध पथ्य नीरुजस्य किमौषधम् ?
—हितोपदेश

४३ तएण सा नागसिरी माहणी धम्मरुइ ए अणगार पासइ२ तस्स सालइ यस्स एडणट्ठयाए (निसरणिटठयाए) हट्ठतुट्ठा उट्ठाए उट्ठ इ२ जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ २ त सालइय धम्मरुइस्स अणगारस्स पडिग्गहसि सव्वमेव निस्सिरइ

—ज्ञातृधर्म कथा अध्ययन १६ वाँ

ने वृद्ध गाए ब्राह्मणों को समर्पित की। यह दान था या दान का उपहास था ? इसे ही मरी बछिया बाम्हन के नाम कहते हैं।

दान सुख की कुंजी है। जैन दर्शन ने लाभालाभ की दृष्टि से चित्त वित्त और पात्र की महत्ता पर प्रकाश डाला है। द्रव्य देय और पात्र की शुद्धता से ही दान में चमक पैदा होती है।[४५] तीनों में एक की भी न्यूनता होने पर उत्कृष्ट फल की उपलब्धि नहीं हो सकती। जैन दर्शन की भाँति बौद्ध दर्शन ने भी दान के तीन उपकरण माने हैं—(१) दान की इच्छा (२) दान की वस्तु (३) और दान लेने वाला।

एक समय श्रावस्ती में कौशलराज प्रसनजित ने महात्मा बुद्ध से कहा—भन्ते ! किसे देना चाहिए ? उत्तर में बुद्ध ने कहा—महाराज ! जिसके मन में श्रद्धा हो।[४६] द्वितीय प्रश्न किया भंते ! किसको देने से महाफल होता है ? उत्तर दिया महाराज शीलवान् को दिये गये दान का महाफल होता है।

वैदिक धर्म ने भी देश काल और पात्र की महत्ता स्वीकार की है। जैसे मोदक के निर्माण में घी शक्कर और मेदे की आवश्यकता होती है वैसे ही दान के लिए भी चित्त वित्त और पात्र की आवश्यकता है।

---

४४ कठोपनिषद्

४५ दव्वसुद्धेण दायगसुद्धेण पडिग्गहसुद्धेणं । तिविहं तिकरणसुद्धेण दाणेण

—भगवती श० १५

४६ संयुत्त निकाय इस्सत्थ सुत्त ३।३।४

४७ संयुक्त निकाय इस्सत्थ सुत्त ३।३।४

४८ देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः ।

—गीता अ० १७ श्लो० २०

स्थानाङ्ग मे भावना आदि के भेद की दृष्टि स दान के दश भेद बताये है।

(१) अनुकम्पादान—दीन अनाथ दरिद्र व्यो रोगी शोकग्रस्त प्राणियो पर अनुकम्पा करके देना।

(२) सग्रहदान—अभ्युदय या आपत्ति के अवसर पर सहायता हेतु देना। यह दान अपने स्वाथ के लिए दिया जाता ह अत वह मोक्ष का कारग नही है।

(३) भयदान—राजा मत्री पुरोहित पुलिस प्रभति के भय से देना।[२]

(४) कारुण्यदान—पुत्र आदि स्वजन के वियोग स व्यथित होकर उसके नाम से देना। जिससे उसका परभव सुधर जाय।

---

४६ दसविहे दाणे पण्णत्त त जहा—
अणुकपा सगहे चेव भये कालुणिते ति य।
लज्जाते गारवेण च अधम्मे पुण सत्तमे ॥
धम्मे य अट्ठमे वत्त काहीति त कतति त ॥
—स्थानाङ्ग स्थ १ सू ७४५

५ कृपणेऽनाथदरिद्र व्यसनप्राप्ते च रोगशोकहते।
यद्दीयते कृपार्थादनुकम्पा तद्भवेद्दानम् ॥
स्थानाङ्ग १।३ सू ७४५ टीका

५१ अभ्युदये व्यसने वा यत किञ्चिद्दीयते सहायतार्थम्।
त सग्रहतोऽभिमत मुनिभिर्दान न मोक्षाय ॥
—स्थानाङ्ग १।३ सू ७४५ टीका

५२ राजारक्षपुरोहितमधुमुखमावल्लदण्डपाशिषु च।
यद्दीयते भयार्थात्तद्भयदान बुधर्ज्ञयम्।
—स्थानाङ्ग १।३ सू ७४५ टीका

५३ कारुण्य शोकस्तेन पुत्रवियोगादिजनितेन तदीयस्यैव तल्पादे स जन्मान्तरे सुखितो भवत्विति वासनातोऽ यस्य वा यद्दान तत्कारुण्य दान कारुण्यजन्यत्वाद् वा दानमपि कारुण्यमुक्तम उपचारादिति ॥
स्थानाङ्ग उ ३। सू ७४५ टी

(५) लज्जादान—जनसमूह की बीच बठे हुए व्यक्ति से जब कोई मांगने लगता है उस समय देने की इच्छा न होते हुए भी लज्जा के वशीभूत होकर देना।[५४]

(६) गौरवदान—यश प्राप्ति के लिये नटों को पहलवानो को, अपने स्नेही सम्बन्धियो को गौरवपूवक देना।[५५]

(७) अधर्मदान—अधम की पुष्टि करने के लिए गदी वासनाओ से प्रेरित होकर हिंसा असत्य स्तेय वेश्यागमन आदि दुष्कृत्यो के पोषण हेतु देना।[५६]

(८) धमदान—जिनका जीवन त्याग और वराग्य से परिपूर्ण हो जिनके लिए तृण मणि मुक्ता एक समान हो ऐसे सुपात्र को धमभाव से देना। यह दान कभी व्यथ नही जाता।

(९) करिष्यतिदान—भविष्य मे प्रत्युपकार की दृष्टि से जो दिया जाता है। अर्थात् भविष्य म इनसे मुझे महायता प्राप्त होगी इस अभिप्राय से देना।

---

५४ अभ्यर्थित परेण तु यद्दान जनसमूहगत ।
परचित्तरक्षणाथ ल जायास्तद्भवद्दानम ॥
—वही १ ।३ सू ७४५ प ४९६

५५ नटनत्तमुष्टिकेभ्यो दान सम्बन्धिबन्धुमित्रभ्य ।
यद्दीयते यशोऽर्थं गवण तु तद्भवद्दानम् ॥
—स्थानाङ्ग १ ।३।७४५। प ४९६

५६ हिंसानृतचौर्योद्यतपरदारपरिग्रहप्रसक्तेभ्य ।
यद्दीयते हि तेषा तज्जानीयादधर्माय ॥
—स्थानाङ्ग १ ।३।७४५ प ४९६

५७ समतृणमणिमुक्तेभ्यो यद्दान दीयते सुपात्रभ्य ।
अक्षयमतुलमनन्त तद्दान भवति धर्माय ॥
—स्थानाङ्ग १ ।३।७४५ प ४९६

५८ करिष्यति कञ्चनोपकार ममायमितिबुद्ध या ।
तद्दान तत्करिष्यतीति दानमुच्यते ॥
—स्थानाङ्ग १ ।३।७४५ टीका प ४९६

(१) कृतदान—पूर्वकृत उपकार से उऋण होने के लि देना।[५९]

इन दानो मे कौनसा दान हेय ज्ञेय और उपादेय है यह तो पाठ स्वय समझ सकते है। स्थानाङ्ग की तरह अगुत्तर निकाय मे भी दा के इसी प्रकार के आठ भेद बताये है।[६०]

धर्मदान मे भी देय वस्तु की दृष्टि से तीन चार आठ दश औ चौदह भेद किये गए हैं। तत्त्वार्थ भाष्य मे स्पष्ट निर्देश है कि दे वस्तु न्यायोपार्जित और कल्पनीय होनी चाहिए। जो न्यायोपार्जि और कल्पनीय है वही अन्नपान आदि द्रव्य देय है।[६१] अन्यत्र भाष्य कार ने यह भी लिखा है कि अन्न आदि सारजातीय और गुणो उत्कर्ष करने वाले हो।[६२]

आचार्य अमितगति ने लिखा है कि वही देय वस्तु प्रशस्त जिससे राग का नाश होता है धर्म की वृद्धि होती है सयम साध को पोषण मिलता है विवेक जागृत होता है आत्मा उपशान्त हो है।[६३] वस्त्र पात्र और आश्रयादि भी रत्नत्रय की वृद्धि के लिए दे श्रेयस्कर है।[६४]

---

५९ शतश कृतोपकारो दत्त च सहस्रशो ममानेन।
अहमपि ददामि किंचित्प्रत्युपकाराय तद्दानम्॥
—स्थानाङ्ग १ । उ ३ सू ७

६० अगुत्तर निकाय ।३१।३२

६१ न्यायागताना कल्पनीयानामन्नपानादीना द्रव्याणा दान।
—तत्त्वार्थ सूत्र ७।१६ भ

६२ द्रव्यविशेषोऽन्नादीनामेव सारजातिगुणोत्कर्षयोग ।
—तत्त्वार्थ सूत्र ७।३४ का भ

६३ अमितिगति श्रावकाचार परिच्छेद ९।४६ से

६४ वस्त्रपात्राश्रयादीनि पराण्यपि यथोचितम्।
दातव्यानि विधानेन रत्नत्रितयवृद्धये॥
—अमितिगतिश्रावकाचार परिच्छे

त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र[६५] म धर्मरत्न प्रकरण[६६] में और सर्वार्थसिद्धि में दान के तीन भेद किये हैं। ज्ञानदान अभयदान और धर्मोपग्रहण दान।

आचाय समन्तभद्र[६] आचार्य पूज्यपाद[६] आचार्य अकलक[६] और आचाय विद्यानन्दी ने आहारदान औषधदान उपकरण दान और आवास दान—ये दान के चार प्रकार किये है।

आचार्य कार्तिकेय आचार्य जिनसेन सोमदेव

६५ तत्र तावद् दानधर्मस्त्रिप्रकार प्रकीर्तित ।
ज्ञानदानाऽभयदान धर्मोपग्रहदानत ॥
—त्रिशष्ठि आचार्य हेमचन्द्र १।१।१५३

६६ दाण च तत्थ तिविह नाणययाण च अभयदाण च ।
धम्मोवग्गहदाण च नाणदाण इम त य ॥
—धमरत्न प्रकरण देवेन्द्रसूरि टीका गा ५२ पत्र २२३।

त्यागो दानम । तत्त्रिविधम—आहारदानमभयदान ज्ञानदान चेति ।
—सर्वार्थ सिद्धि

६७ आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन ।
वयावृत्य ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्रा ॥
—समीचीनधमशास्त्र अध्याय ५ श्लो ११७

६८ अतिथये सविभागोऽतिथिसविभाग ।
स चतुर्विध भिक्षोपकरणौषधप्रतिश्रयभेदात ॥
—तत्त्वाथ सूत्र ७।२१ की सर्वार्थ सिद्धि टीका

६९ तत्त्वार्थसूत्र ७।२१ राजवार्तिक टीका

७ तत्त्वार्थसूत्र ७।२१ श्लोकवार्तिक टीका

७१ भोयणदाणेण सोक्ख ओसहदाणेण सत्थदाण च ।
जीवाण अभयदाण सुदुल्लह सव्वदाणाण ॥
—द्वादश अनुप्रेक्षा धर्म अनुप्रेक्षा ३६२

७२ देयमाहारभषज्यशास्त्राभयविकल्पितम् ।
—महापुराण पव २ श्लो १३८ प ४५७
—प्र भारतीय ज्ञानपीठ काशी

७३ अभयाहारभषज्यश्रतभेदात् चतुर्विधम् ।
—यशस्तिलक आश्वास ८

देवसेन वसुनन्दि[७५] और गुणभद्र ने[६] आहार दान औष दान शास्त्र दान और अभयदान—ये दान के चार किये हैं।

उपदेश माला[७७] तथा दान प्रदीप मे दान के (१) वसति दा (२) शयनदान (३) आसनदान (४) भक्त दान (५) पानी दा (६) भैषज्य दान (७) वस्त्र दान (८) पात्र दान ये आठ किये हैं।

आवश्यक चर्णि मे दान के (१) यथा प्रवत्तदान (२) अन्नदा (३) पानदान (४) वस्त्रदान (५) औषध दान (६) भषज्यदान (पीठ दान (८) फलकदान (९) शय्यादान (१) सस्तारक दान—इ प्रकार दस भेद कहे गए है।

---

७४ अभयपयाण पढम विदिय तह होइ स थदाण च।
तइय ओसहदाण आहार चउ थ च॥
—भावसग्रह ४

७५ आहारोसह-सत्थाभयभेओ ज चउव्विह दाण।
त कुच्चइ दायव्व णिद्दिट्ठमुवासय भयणे॥
—वसुनन्दि श्रावकाचार २

७६ आहाराभयभैष यशास्त्रदय चतुर्विधम्।
—गुणभद्रश्रावकाचार १

७७ (१) वसही (१–३) सयणासण (४) भत्त (५) पाण (६) भेसज (७) वत्थ (८) पत्ताइ।
— उपदेशमाला दो घटटी टीका गा २४ प ४२

७ दानप्रदीप सटीक पत्र ६४।२

७९ जो अहापवत्ताण अ नपाणवत्थओसहभेस जपीठफलगसेज्जासथा गादीणां सविभागो सो अहासविभागो भवति।
—आवश्यक चूर्णि प ३

आवश्यक सूत्र उपासक दशांग [1] सूत्रकृताङ्ग भगवती आदि मे (१) अशन (२) पान (३) खादिम (४) स्वादिम (५) वस्त्र (६) प्रतिग्रह (७) कम्बल (८) पादपोछन (९) पीठ (१०) फलक (११) शय्या (१२) सस्तारक (१३) औषध (१४) भैषज्य इन चौदह देय वस्तुओं का निर्देश करके प्रकारा तर से दान के चौदह भेद कहे गए हैं।

बौद्ध साहित्य मे भी विविध दृष्टियो से दान के भेद निरूपित किये गये है।

महा मा बुद्ध ने (१) आमिषदान [इन्द्रियो के विषयो का दान] (२) और धमदान ये दो भेद किये है। इन दोनो दानो मे धमदान मुख्य है। [2]

फलदान की दृष्टि मे दान के तीन भेद है (१) दृष्ट धम वेदनीय (२) परिपक्व वेदनीय (३) और अपरापर्या वेदनीय।

पात्र भेद की दृष्टि से भी दान के तीन प्रकार है—(१) पुद्गल दान (२) सघदान (३) और उद्द श्यदान।

दान देने वाले के तीन प्रकार है (१) दानदास (२) दान सहाय (३) और दानपति।

दायक और दानपात्र की उत्कृष्टता व निकृष्टता के कारण दान की विशद्धता भी चार प्रकार की है—

---

८ समण निग्गथे फासुएण एसणि जेण असणपाणखाइमसाइमेण वत्थपडि गहकबलपायपु छणेण पाडिहारिएण पीढफलगसि जा सथारएण ओसहभेष जेण य पडिलाभेमाण विहरामि।

—आवश्यक सूत्र

१ कप्पइ मे समण नि ग थे फासुएण समणि जेण अ णपाणखाइम साइमेण व थकम्बलपडिग्गहपायपु छणेण पीढफलगसि जासथारएण ओसहभेस जेण य पडिलाभेमाणस्स विहरित्तए।

—उपासकदशा—१।५८

८२ अगुत्तर निकाय २।१३

(१) दायक द्वारा दान विशुद्धि
(२) दान पात्र द्वारा दान विशुद्धि
(३) दायक और दानपात्र दोनो द्वारा दान विशुद्धि
(४) दायक और दानपात्र दोनो द्वारा दान वि¬ुद्धि।

सिंह सेनापति के प्रश्न के उत्तर मे महात्मा बुद्ध ने कहा—दान से लोक म चार लाभ प्राप्त होते है—(१) दाता लोकप्रिय होता है (२) सत्पुरुषो का ससग प्राप्त होता है (३) कल्याणकारी कीर्ति प्राप्त होती है। (४) किसी भी सभा म वह विज्ञ की तरह जा सकता है और परलोक मे स्वग मे जाता है। यह अदृष्ट लाभ है।

कालन्नान (?) के भी चार भेद बताये है। (१) आग तुक को (२) जाने वाले को (३) ग्लान को (४) दुर्भिक्ष म।

गीता म दान के सात्विक राजस और तामस ये तीन भेद किये हैं। कत्त य बुद्धि से जो दान देश काल और पात्र का विचार करके अपना उपकार न करने वाले यक्ति के लिए दिया जाता है वह सात्विक दान है।

जो दान उपकार के बदल मे अथवा फल पाने की इच्छा से दिया जाता है और जिसके देने से मन म कुछ क्लेश होता है वह राजस दान है।

जो दान विना सत्कार किये अथवा तिरस्कारपूवक

---

८३ अगुत्तर निकाय ५।३४

४ अगुत्तर निकाय ५।३६

५ दातव्यमिति यद्दान दीयते नुपकारिण।
देशे काले च पात्र च तद्दान सात्विक विदु ॥
—भगवद्गीता १७।२

८६ यत्त प्रत्युपकाराथ फलमुद्दिश्य वा पुन।
दीयते च परिक्लिष्ट तद्दान राजस स्मृतम् ॥
—भगवद्गीता अ ११। २१

देश काल का विचार किये विना अपात्र को दिया जाता है वह तामस दान है।[८७]

जैन बौद्ध और वदिक तीनों ही परम्पराओ मे विविध दृष्टियों से दान के अनेक भेद प्रभेद किये गये हैं। विस्तार भय से तथा अनावश्यक होने से उन सभी का उल्लेख यहाँ नही किया जा रहा है। सक्षेप मे तीनो ही परम्पराओ ने एक स्वर से अन्नदान अभयदान और ज्ञानदान के महत्त्व को स्वीकार किया है और उनका विस्तार से निरूपण भी किया है।

अन्नदान

जनागमो की दृष्टि से पुण्य के नौ प्रकारो मे अन्नपुण्य सव प्रथम है। इसका कारण यह है कि क्षधा के समान कोई वेदना नही है।[९] बाईस परीषहो मे क्षुधा परीषह प्रथम है। श्रमणो को दिये जाने वाले दानो मे भी अन्नदान सव प्रथम है। भोजनदान देने से तीनो ही दान दिये हुए हो जाते हैं।+

---

८७ अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञात तत्तामसमुदाहृतम् ॥

—भगवद्गीता १७।२२

८८ णवविहे पुण्णे प त अ ण पुण्णे पाणपुण्णे वत्थपुण्णे लेणपुण्णे सयणपुण्णे मणपुण्णे वयपुण्णे कायपुण्णे नमोक्कारपुण्णे।

—स्थानाङ्ग सूत्र अ ९ सू ६७६

८९ खुहासमा नत्थि वेयणा।

—गौतम कुलक

९ (क) समवायाग २२
(ख) भगवती शतक उ ८ पृ १६१
(ग) उत्तराध्ययन अ २
(घ) तत्त्वार्थसूत्र ९–८।१७

९१ देखिए टिप्पण न ६७ से ८१ तक।

+ भोयणदाणे दिण्णे तिण्णि वि दाणाणि होंति दिण्णाणि।

—कार्तिकेयानुप्रेक्षा ३६३

संयुक्तनिकाय मे महात्मा बुद्ध ने कहा है— एक अन्न ही है जिसे सभी चाहते हैं। दवता हो या मानव भला ऐसा कौन सा प्राणी है जिसे अन्न प्यारा न हो ? जो अन्न का श्रद्धा से दान करते हैं अत्यन्त प्रसन्न चित्त से उन्हीं को वह अन्न प्राप्त होता है। इस लोक मे और परलोक म भी।

महात्मा बुद्ध से पूछा गया भगवन् ! क्या दने वाला बल देता है ? बुद्ध ने कहा—अन्न दने वाला बल देता है ?

अन्यत्र भी महात्मा बुद्ध ने कहा है— जो मनुष्य भोजन देता है वह लेने वाले को चार वस्तुए देता है—वर्ण सुख बल और आयु। उसका फल देने वाल को देवायु दिव्यवर्ण दिव्य सुख और दिव्य बल के रूप म प्राप्त होता है।

वदिक सस्कृति के अमरगायक व्यास कहते है— अन्न ही मनुष्यो का प्राण है उसी से प्राणी उत्पन्न होते है। सारा ससार अन्न के सहारे टिका है। अत अन्नदान सब से अधिक प्रशसनीय है। जो व्यक्ति दुबल विद्वान् जीविकाहीन एव दुखी व्यक्ति को अन्न देकर उसकी क्षुधा मिटाता है उसके समान ससार मे कोई नही। सब दानो म अन्नदान श्रेष्ठ है अत धम की इच्छा रखने वाल मनुष्य को सरल भाव से अन्न का दान करना चाहिए।

---

९२ सयुक्त निकाय प्रथम भाग अन्न सुत्त १।५।३

९३ सयुक्त निकाय प्रथम भाग किं दद सुत्त १।५।२

९४ अगुत्तर निकाय ४।५

९५ प्राणाह्यन्न मनुष्याणा तस्माज्जन्तुश्च जायते।
अन्ने प्रतिष्ठितो लोकस्तस्मादन्न प्रशस्यते ॥
—महाभारत अनुशासन अ ११२ श्लो ११

९६ कृशाय कृतविद्याय वृत्तिक्षीणाय सीदते।
अपहन्यात क्षुधा यस्तु न तेन पुरुष सम ॥
—महाभारत अनुशासन पव अ ५९ श्लो ११

९७ सवषामेव दानानामन्न श्रेष्ठमुदाहृतम।
पूवमन्न प्रदातव्यमजुना धममिच्छता ॥
—महाभारत अनुशासन पव अ ११२ श्लो ११

अभयदान

किसी मरते हुए प्राणी को बचाना संकट मे पडे हुए का उद्धार करना उसे निर्भय बनाना अभयदान है।+ भगवान् श्री महावीर ने कहा—दानो मे श्रेष्ठ अभयदान है। पद्मपुराणकार ने तो कहा है कि अभयदान से बढकर अन्य दान नही है। जो विद्वान् सब जीवो को अभयदान करता है वह इस ससार म नि सदेह प्राणदाता माना जाता है। अभयदान पाकर प्राणी को जो सुख होता है वह अपूर्व है।

वतमान युग मे मानव भय से कांप रहा है। विज्ञान के प्रखर प्रकाश मे भी ससार पथ भ्रष्ट हो रहा है। समर देवता की भयानक जीभ विश्व को निगलने के लिए लपलपा रही है। तीन अरब कण्ठो की आत-वाणी है—मानवता सकटापन्न है शान्ति की मासूम बुलबुल छटपटा रही हैं। अत ऐसे माई के लाल की आवश्यकता है जो मानवो को भय से मुक्त कर अभय प्रदान करे।

\+ ज कीरइ परिरक्खा णिच्च मरणभयभीरुजीवाण।
त जाण अभयदाण सिहामणी सन्वदाणाण।

—वसुनन्दि श्रावकाचार २३८

(ख) भवत्यभयदान तु जीवाना वधवजनम।
मनो वाक्काय करण-कारणाऽनुमतरपि॥

—त्रिषष्ठि १।१।१५७

(ग) वधस्य वजन तेष्वभयदान तदुच्यते।

—त्रिषष्ठि १।१।१६९

६८ दाणाण सेट्ठ अभयप्पयाण।

—सूत्रकृतांग अ ६ गा २३

६९ अभय सवभूताना नास्ति दानमत परम।

—पद्मपुराण

१ सवभूतेष यो विद्वान् ददात्यभयदक्षिणाम।
दाता भवति लोके स प्रजाना नात्र सशय॥

—महाभारत अन अ ११५ श्लो १८

ज्ञानदान

ज्ञान के अभाव मे मानव अधा है। अध को नेत्र मिलने पर जितनी प्रस नता होती है उससे भी अधिक अज्ञानी को ज्ञान प्राप्त होने पर होती है। ज्ञानदान से ही प्राणी हिताहित तथा तत्त्व अतत्त्व को जानता है और व्रत को ग्रहण करता है।[१] पहले ज्ञान है फिर दया है। धर्म अर्थ काम और मोक्ष चारो ही पुरुषाथ ज्ञान के द्वारा सिद्ध होने है। अत ज्ञानदान दने वाला इन चारो को पाने का अधिकारी होता है। जल अन्न गौ भूमि वस्त्र तिल सुवर्ण तथा घत जसे पदार्थों के दान से ज्ञान का दान कही अधिक उत्कृष्ट है।

दान धम का शिलान्यास है। इस शिलान्यास पर ही धम का सुहावना सौध निर्मित हो सकता है। एडीसन के शब्दो मे दान ही धम का पूर्णत्व और उसका आभूषण है।[१५] विक्टर ह्यगो ने कहा है ज्यो ही पर्स (बटुआ) रिक्त होता है हृदय समृद्ध होता है।[१६] दान असख्य पापो का छादन करने वाला है अत इस सनातन नियम को स्मरण रखो कि यदि तुम प्राप्त करना चाहते हो तो अर्पित करना सीखो। दान विजय नही किन्तु ग्रो है। मौसम पर

---

१ १ ज्ञानदानेन जानाति जन्तु स्वस्य हिताहितम।
वेत्ति जीवादितत्वानि विरतिं च समश्नुते॥
—त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र १।१।१५५

१ २ पढम नाण तओ दया।
—दशवकालिक अ ४

१ ३ आचाय अमितगति

१ ४ सवषामेव दानाना ब्रह्मदान विशिष्यत।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम॥
—मनुस्मृति ४।११३

१ ५ ज्ञानगगा।

१ ६ अमरवाणी।

१ ७ पीटर महान्।

१ ८ सुभाषचन्द्र बोस।

कोल्ड स्टोरेज मे आम आदि रख दिये जाते हैं और मौसम बीत जाने पर निकाल लिये जाते हैं। इस प्रकार रक्षित कर रखना प्रिजर्व है। किन्तु आम का बीज बोते है उसमे अकुर फूटते हैं टहनिया आती हैं फूल खिलते हैं फल लगने हैं यह सब सावर्धन ग्रो है। तात्पर्य यह है कि दान वृद्धि का कारण है।

हिरात का शेख अब्दुला अन्सार अपने शिष्यो से कहता था—शिष्यो ! आकाश मे उडना कोई चमत्कार नही ह क्योकि ग दी से गदी मक्खियाँ भी आकाश मे उड सकती हैं। पुल या नाव के बिना भी नदियो को पार कर जाना कोई चमत्कार नही ह क्योकि एक साधारण कुत्ता भी ऐसा कर सकता ह। किन्तु दुखी हृदयो को सहायता देना दान दना एक ऐसा चमत्कार ह जिसे पवित्रात्मा ही किया करते हैं। जो जीवन मे धम की आराधना व साधना करना चाहते हैं उन्हे सव प्रथम दान वृत्ति अपनाना चाहिए।



ग्यारह | महावीर के सिद्धान्त

श्रमण भगवान् श्री महावीर युगप्रवतक क्रान्तिकारी और सूक्ष्म द्रष्टा महापुरुष थे। जिस युग मे वे जन्मे थ उस युग म मानव अविद्या और रूढियो की जजीरो से जकडा हुआ था। भीषण अ याचार पनप रहे थ। मानवता का कोई सम्मान नही था। जातिवाद को खुलकर प्रश्रय प्राप्त था। धर्म के नाम पर हजारो मूक प्राणियो की ही नही अपितु मानवो की भी बलि दी जाती थी। उनके करुण क्रन्दन से भी धमध्वजियो के हृदय द्रवित नही होते थ। अन्धपरम्परा के निबिडतम अन्धकार स लागो की आँख खोलने की शक्ति एकदम क्षीण हो चुकी थी। वे बिलकुल असहाय और विवश थ।

उस विकट वेला म दीघ तपस्वी और साधना के कषोपल पर कसे हुए महावीर एक नूतन स दश लेकर आये। उन्होने भूले भटके जीवनराहियो को प्रशस्त पथ का प्रदशन करते हुए अकारत्रयी अहिंसा अपरिग्रह और अनेका त की दिव्य दशना दी। प्रस्तुत अकारत्रयी म महावीर की समग्र वाणी का सार ह शेष जो कुछ भी ह—इसी का विस्तार ह।

अहिंसा

भगवान् ने कहा—हिंसा ग्रन्थि ह मोह ह मृयु ह नरक ह।[1] एतदथ ही वीर पुरुष अहिंसा के राजपथ पर चल पडे हैं[2] तुम भी

---

१ एस खलु गन्थे एस खलु मोहे एस खलु मारे एस खलु णिरए।
—आचारांग १।३।२१

२ पणया वीरा महावीहि।
—आचारांग अ १ श्र १ उ ३

चलो। प्राण भूत जीव सत्त्व की हिंसा न करो उन पर शासन मत करो उनको पीडित मत करो उन पर प्रहार मत करो।[3] ज्ञानियो के ज्ञान का सार यही है कि वह किसी भी प्राणी की हिंसा न करे।

सभी जीव जीना चाहते हैं मरना कोई नही चाहता अत निर्ग्रन्थ प्राणिवध का वर्जन करते हैं। सभी प्राणियो को अपने प्राण प्रिय हैं सुख अनुकूल है और दु ख प्रतिकूल है।[6] जैसे मुझे दु ख प्रिय नही है वैसे ही सब जीवो को भी दु ख प्रिय नही है। यह समझकर जो न स्वय हिंसा करता है और न दूसरो से हिंसा करवाता है वही श्रमण है।

इस प्रकार हिंसा का निषेध कर उसे नरक ले जाने का प्रमुख कारण बताकर भगवान् ने मानव को अहिंसा के राजमार्ग पर बढने की प्रेरणा दी। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा—मनसा वाचा कर्मणा जो स्वय जीवो की हिंसा करता है दूसरो से करवाता है या जो जीव

---

३ सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता न हन्तव्वा।
न अज्जावेयव्वा न परिघेतव्वा न परियावेयव्वा न उद्दवयव्वा॥
—आचारांग १।४।१

४ एव खु नाणिणो सार ज न हिंसई किंचण।
—सूत्रकृतांग श्र १ अ ११ गा १

५ सव्व जीवा वि इच्छन्ति जीविउ न मरिज्जिउ
तम्हा पाणिवह घोर निग्गथा वज्जयति ण।
—दशवकालिक ६।१

६ सव्वे पाणा पियाउया सुहसाया दुहपडिकूला अप्पियवहा
पिय जीविणो जीविउकामा। सव्वसि जीविय पिय।
—आचारांग १।२।३

७ जह मम न पिय दुक्ख जाणिय एमेव सव्व जीवाण
न हणइ न हणावइ अ सममणइ तेण सो समणो।
—अनुयोग द्वार

८ महारंभयाए महापरिग्गहियाए पचिदिय वहेण कुणिमाहारेण।
—भगवती शतक ८।३।६

हिंसा का अनुमोदन करता है वह वर की वृद्धि करता है। अत प्राणीमात्र को आत्मतुल्य समझो। उन्होने हिंसात्मक यज्ञो के स्थान पर अहिंसात्मक आत्म यज्ञ का निरूपण किया।[1]

अहिंसा का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए भगवान् ने स्पष्ट शब्दो मे कहा—इस विराट विश्व मे अहिंसा ही भगवती है।[2] वह भय भीतो के लिए शरण है पक्षियो के लिए पाँख है पिपासुओ के लिए पानी है भूखो के लिए अन्न है समुद्र यात्रियो के लिए पोत है चतुष्पदो के लिए आश्रम-स्थल है रोगियो के लिए औषध है वन यात्रियो के लिए साथ (काफिला) है अहिंसा सभी के लिए क याणकारी है। अहिंसा उत्कृष्ट मगल है। श्रमणधम और श्रावकधम की

---

९ सयऽतिवायए पाणे अदुव नेहि घाय।
हण त वाणुजाणाइ वर वड्ढइ अ पणो॥

—सूत्रकृतांग १।१।१–३

१ अत्तसमे मन्नि ज छप्पिकाये।

—दशवकालिक १ –५

(ख) आयतुले पयासु।

—सूत्रकृतांग १।१ ।३

११ तवो जोई जीवो जोइठाण जोगा सुया सरीर कारिसग
कम्मेहा सजमजोगसन्ती होम हुणामि इसिण पसत्थ।

—उत्तराध्ययन सूत्र १२।४४

१२ एसा सा भगवती अहिंसा।

—प्रश्न व्याकरण

१३ जा सा भीयाण विव सरण पक्खीण पिव गमण तिसियाण पिव सलिल खुहियाण पिव असण समुद्दम झे व पोतवहण चउप्पयाण व आसमपय दुहट्ठियाण च ओसहिबल अडवीम झे विसत्थगमण तसथावरसव्वभूयखेमकरी एसा भगवती अहिंसा।

—प्रश्न व्याकरण संवरद्वार

१४ दशवकालिक १।१

साधना अहिंसा के बिना सभव नही है। अत महावीर ने महाव्रत[15] और अणु-व्रत[16] मे अहिंसा को प्रथम स्थान दिया।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि श्रमण भगवान् श्री महावीर का अहिंसा सिद्धात केवल निषेधात्मक ही नही अपितु विधयात्मक भी है। प्रश्नव्याकरण मे अहिंसा के जो साठ पर्यायवाची नाम बताये है वे अहिंसा के विराट स्वरूप क या उसके विविध रूपो के निर्देशक हैं। उनमे ग्यारहवाँ नाम दया है।[17] आचाय श्री मलयगिरि ने उसका अथ देह धारी जीवो की रक्षा करना किया है। अहिंसा के जहाँ अनेक नाम निषेधात्मक हैं वहाँ अनेक नाम विधयात्मक भी है जसे रक्षा दया अभय आदि।[19] निष्कष यह है कि भगवान् महावीर के विराट अहिंसातत्त्व को समझने के लिए अहिंसा के दोनो पहलुओ को समझना आवश्यक है। गान्धी जी ने भी कहा है—जहाँ दया नही वहाँ अहिंसा नही[20] अस्तु।

अपरिग्रह

भगवान् श्री महावीर ने अपरिग्रह का सन्देश देते हुए कहा—वस्तु अपने आप मे परिग्रह नही है किन्तु वस्तु के प्रति मूर्च्छा भाव ही वस्तुत परिग्रह है।[21] परिग्रह एक प्रकार का बधन है। ससार के

---

१५ अहिंससच्च च अतेणगं च ततो य बभ च अपरिग्गह च।
पडिवज्जिया पच महव्वयाइ चरिज्ज धम्म जिणदेसिय विऊ॥
—उत्तराध्ययन २१।२२

१६ उपासक दशाग अ १

१७ प्रश्नव्याकरण संवरद्वार

१८ दया-देहिरक्षा।

१९ प्रश्न व्याकरण सवरद्वार।

२० गान्धीवाणी पृ १७

२१ मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इइ वुत्त महेसिणा।
—दशवैकालिक अ ६। गा० २

सभी प्राणियो को परिग्रह न जकड रक्खा है। इससे बढकर अन्य कोई भी बधन नही है।

जो ममत्वबुद्धि का त्याग करता है वही व्यक्ति ममत्व का भी त्याग करता है वही सच्चा और अच्छा साधक है। जिसे किसी भी प्रकार का ममत्व नही है। सच्चा साधक अपने तन पर भी ममत्व नही रखता।

जो व्यक्ति अर्थ को अनर्थ का कारण न मानकर उसे अमृत मानता है और उसे प्राप्त करने के लिए पापकृत्य करता है वह कर्मों के दृढ पाश मे बंध जाता है अनेक जीवो के साथ वैरानुबन्ध कर अन्त मे विराट वैभव को यही छोडकर एकाकी नरक मे जाता है।[25]

पदार्थ ससीम है और तृष्णा असीम है आकाश के समान अनन्त है। सुवर्ण रजत के असख्य पर्वत भी लोभी मानव के दिल मे परितृप्ति उत्पन्न नही कर सकते। विराट वैभव भी उसके मन को प्रमुदित नही कर सकता वह समझता है—यह बहुत ही कम है।[2]

---

२२ नत्थि एरिसो पासो
पडिबंधो अत्थि सव्व जीवाण। —प्रश्नव्याकरण

२३ जे ममाइअ मइं जहाइ से जहाइ ममाइअं।
सेहु दिट्ठभएमुणी जस्स नत्थि ममाइअं॥ —आचारांग

२४ अवि अप्पणो वि देहम्मि
नाऽऽयरंति ममाइयं। —दशवैकालिक

२५ जे पावकम्मेहिं धणं मणूसा
समाययन्ती अमइं गहाय।
पहाय ते पासपयट्टिए नरे
वेराणुबद्धा णरयं उवेंति।
—उत्तराध्ययन अ ४ गा २

२६ सुवण्णरूवस्स उ पव्वया भवे
सिया हु केलाससमा असखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया॥
—उत्तराध्ययन अ ९। गा ४८

आग में कितना ही ईंधन डाला जाय वह कभी तुष्ट नही होती सागर में चाहे कितनी ही सरिताए गिरें उसे तृप्ति नहीं होती। यही अवस्था मानवमन की है। एतदर्थ महावीर ने इच्छाओं के नियन्त्रण पर बल दिया।

धन को ही जीवन का ध्येय समझने वालो को महावीर ने कहा—धन इस लोक और परलोक में तुम्हारी कही भी रक्षा नहीं कर सकता[२] अत धन को नही धम को महत्त्व दो। धम ही सच्चा रक्षक और सही शरण है।[२]

अनेकान्त

श्रमण भगवान श्री महावीर ने अनेकान्त का सन्देश देते हुए कहा—तत्त्व उत्पाद व्यय और ध्रौव्य युक्त है।[२] सत्य का परिज्ञान करने के लिए अपेक्षित है कि वस्तु का सभी दृष्टियो से चिन्तन किया जाय। जो वस्तु नित्य प्रतीत होती है वह अनित्य भी है। जो वस्तु क्षणिक है वह नित्य भी है। जहा नित्यता है वहाँ अनित्यता भी है। अनित्यता के अभाव मे नित्यता की प्रतीति नही हो सकती और नित्यता के अभाव मे अनित्यता की पहचान नही हो सकती है। एक की प्रतीति द्वितीय की प्रतीति से ही सभव है। अनेकानेक अनित्य प्रतीतियो के मध्य जहा एक स्थिर प्रतीति होती है वह ध्रौव्य है।

सब ज्ञानो की विषयभूत वस्तु अनेकान्तात्मक होती है। अत

२७ वित्तण ताण न लभे पमत्त
इमम्मि लोए अदुवा परत्था।
—उत्तराध्ययन अ० ४। गा ५

२८ एको हु धम्मो नरदेव ! ताण
न विज्जए अन्नमिहेह किंचि।
—उत्तरा अ १४।४

२६ उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा।
—स्थानाङ्ग सूत्र ठा १

३ अनेकान्तात्मक वस्तु गोचर सवसंविदाम्।
—न्यायावतार सिद्धसेन

वस्तु को अनेकान्तात्मक कहा है। जिसमे अनेक अथ भाव सामान्य विशेष गुणपर्याय रूप से पाये जाये वह अनेकान्त है।[31] और अनेकान्तात्मक वस्तुतत्त्व को भाषा के द्वारा कथन करना स्याद्वाद है।[32] भगवान् ने अनेका त की दृष्टि से देखा और स्याद्वाद की भाषा मे उसका प्रतिपादन किया। भगवद्वाणी सदा स्याद्वादमयी होती है।[33] स्यात् यह अव्यय अनेकान्त का द्योतक है। अत स्याद्वाद को अनेकान्तवाद भी कहते हैं।[34]

सत्य का समुद्घाटन करने के लिए भगवान ने प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अपेक्षा दृष्टि से दिया। यथा—

जयन्ती—भगवन ! सोना अच्छा है या जागना !

महावीर—कितनेक जीवो का सोना अच्छा है और कितनेक जीवो का जागना अच्छा है।

जयन्ती—भगवन् ! यह कैसे ?

महावीर—जो जीव अधर्मी हैं अधर्मानुग है अधमनिष्ठ हैं अधर्मा ख्यायी हैं अधमप्रलोकी हैं अधमप्ररञ्जन है अधर्मसमाचार हैं अधार्मिक वत्तियुक्त हैं वे सोते रहे यही अच्छा है। क्योकि वे सोते रहेगे तो अनेक जीवो को पीडा नही देंगे। और इस प्रकार स्व पर और उभय को अधार्मिक क्रिया मे सलग्न नही करगे अत उनका सोना श्र ष्ठ है। कि तु जो जीव धार्मिक हैं धर्मानुग है यावत् धार्मिक वत्ति वाले है उनका तो जागना ही श्र ष्ठ है। क्योकि वे अनेक जीवो

३१ अथोऽनेका त। अनेके अन्ता भावा अर्था सामा यविशेषगुणपर्याया यस्य सोऽनेकान्त।

३२ अनेकान्तात्मकार्थकथन स्याद्वाद।

—लघीयस्त्रय टीका ६२ अकलक

३३ स्याद्वाद भगवत्प्रवचनम।

—न्यायविनिश्चय विवरण पृ ३६४

३४ स्यादित्यव्ययमनेकान्तद्योतक तत स्याद्वादोऽनेकान्तवाद।

—स्याद्वाद मजरी का ५

को सुख देते हैं स्व पर और उभय को धार्मिक अनुष्ठान मे सलग्न करते हैं अतएव उनका जागना ही श्र ष्ठ है।

जयन्ती—भगवन् ! बलवान होना श्र ष्ठ है या दुर्बल होना ?

महावीर—कुछ जीवो का बलवान् होना श्र ष्ठ है और कुछ का दुर्बल होना।

जयन्ती—यह कसे ?

महावीर—जो जीव अधार्मिक हैं यावत् अधार्मिक वत्ति वाले हैं उनका दुबल होना श्र ष्ठ है। वे बलवान होगे तो अनेक जीवो को कष्ट दगे। जो जीव धार्मिक है यावत् धार्मिक वत्ति वाले है उनका बलवान् होना श्र ष्ठ है क्यो कि वे बलवान् होने से अधिक जीवो को सुख पहुँचायगे

इस प्रकार अलसत्व और दक्षत्व के प्रश्न का उत्तर भी विभाग करके दिया।

गौतम—भगवन ! आद्र गुड मे कितने वण हैं कितने गध हैं कितने रस है और कितने स्पश है ?

भगवान्—गौतम ! दो नय है—निश्चय नय और व्यवहार नय। व्यवहार नय से आद्र गुड मे मधुरता है और निश्चय नय से पाँच वण है दो गध है पाँच रस है और आठ स्पश हैं।[६]

गौतम—भगवन् ! भ्रमर मे कितने वर्ण हैं ?

भगवान्—गौतम ! व्यवहार नय की दृष्टि से भ्रमर काला है एक

---

३५ भगवती १२।२।४४३

३६ फाणियगुले ण भन्ते ! कइवन्ने कइग धे कइरसे कइफासे पण्णत्त ?

गोयमा ! एत्थण दो नया भवन्ति त जहा निच्छइयनए य वावहारियनए य वावहारियनयस्स गोड्डे फाणियगुले नेच्छइयनयस्स पचवन्ने दुगध पचरसे अटठफासे।

—भगवती शतक १८।६

वर्ण वाला है किन्तु निश्चय नय की दृष्टि से उसमे श्वेत कृष्ण नील आदि पाँचो वर्ण है।[3]

इसी प्रकार राख[3] और शुक पिच्छ[3] के सम्बन्ध मे जिज्ञासा व्यक्त करने पर भगवान् ने व्यवहार और निश्चय नय की दृष्टि से उत्तर प्रदान किये।

महात्मा बुद्ध ने लोक जीव आदि की नित्यता अनित्यता सान्तता और अनन्तता के प्रश्नो को अव्याकृत कहकर टाल दिया। किन्तु भगवान् श्री महावीर ने उन प्रश्नो के उत्तर विविध रूप से प्रदान किये। महात्मा बुद्ध ने आत्मा आदि के सम्बन्ध मे चिन्तन करना साधक के लिए अनुचित माना है। उसे— अयोनिसोमनसिकार— विचार का अयोग्य ढग कहा है। अयोनिसोमनसिकार से आश्रव उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न आश्रव वृद्धिगत होते है।[1] परन्तु भगवान श्री महावीर ने साधना की दृष्टि से जीव लोक आदि का ज्ञान आवश्यक माना है।[2] जब तक इन बातो का ज्ञान नही होता तब तक कोई

---

३७ भमरे ण भन्ते ! कइवण्णे पुच्छा ? गोयमा ! एत्थण दो नया भवन्ति त जहा णिच्छइयणए य वावहारियणए य। वावहारियणयस्स कालए भमरे णिच्छइयणयस्स पचवण्णे जाव अटठ फासे।

—भगवती शतक १ ।६

३ छारियाण भन्ते ! पुच्छा ? गोयमा ! एत्थण दो नया भवन्ति त जहा—णिच्छइयणए य वावहारियणएय। वावहारियणयस्स लुक्खा छारिया णेच्छइयस्स पच वण्णे जाव अटठफासे पण्णत्त।

—भगवती शतक १८।६

३६ सुयपि छेए भन्ते ! कइव णे पण्णत्त ! एव चेव णवर वावहारिय णयस्स नीलए सुअपिच्छे णेच्छइयस्स णयस्स सेसन्त चेव।

—भगवती १ ।६

४ मज्झिमनिकाय चूलमालुक्यसुत्त ६३।

४१ मज्झिमनिकाय—सब्बासवसुत्त २

४२ इहमेगेसि नो सन्ना भवइ त जहा—पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि दाहिणाओ वा अन्नयरीयाओ वा दिसाओ वा अणुदिसाओ

भी जीव आत्मवादी लोकवादी कर्मवादी और क्रियावादी नही हो सकता। अत आत्मा आदि के विषय मे चिन्तन करना संवर और मोक्ष लाभ का कारण माना है।[3]

लोक शाश्वत है या अशाश्वत है ? इस प्रश्न के उत्तर मे महावीर ने कहा—

जमालि ! लोक शाश्वत भी है और अशाश्वत भी है। त्रिकाल मे एक भी ऐसा समय नही मिल सकता जब लोक न हो अतएव लोक शाश्वत है। वह अशाश्वत भी है क्योंकि लोक हमेशा एकरूप नही रहता। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल मे अवनति और उन्नति होती रहती है। कालक्रम से लोक म विविधरूपता आती रहती है अत लोक अनित्य है अशाश्वत है।

लोक सान्त है या अनन्त है ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान महावीर ने कहा— स्कन्दक ! लोक को चार प्रकार से जाना

वा आगओ अहमसि। एवमेगेसि नो नाय भवइ—अत्थि मे आया उववाइए नत्थि मे आया उववाइए के अह आसी के वा इओ चुओ इह पेच्चा भविस्सामि ?

से ज पुण जाए जा सहस मइयाए परवागरणाए अन्नेसि वा अन्तिए सो चा। त जहा—पुरत्थिमाओ एवमेगेसि नाय भवइ—अत्थि म आया उववाइए जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ वा अणु सचरइ सव्वाओ दिसाआ अणुदिसाओ सोह—स आयावाई लोगावाई कम्मावाई किरियावाई।

—आचाराग १ १।१ २–३

४३ इह आगइ गइ परिन्नाय अच्चेइ जाइमरणस्स वट्टमग विक्खायरए।

—आचाराग १।५।६

४४ सासए लाए जमाली जन्न कयावि णासी णो कयावि ण भवति ण कयावि ण भविस्सइ भुवि च भवइ य भविस्सइ य धुवे णितिए सासए अक्खए अव्वए अवटिठए णिच्चे। असासए लोए जमाली ! जओ ओसप्पिणी भवित्ता उसप्पिणी भवइ।

—भगवती सूत्र ६।३ ३।३८७

जाता है—द्रव्य से क्षेत्र से काल से और भाव से। द्रव्य की अपेक्षा से लोक एक है और सान्त है। क्षेत्र की अपेक्षा से लोक असख्यात योजन कोटाकोटि विस्तार और असख्यात योजन कोटाकोटि परिक्षेप प्रमाण वाला है अत क्षेत्र की अपेक्षा से लोक सा त है। काल की अपेक्षा से कोई काल ऐसा नही जब लोक न हो अत लोक ध्र व है नियत है शाश्वत है अक्षय है अ यय है अवस्थित ह नित्य है। उसका कभी अ त नही ़ । भाव की अपेक्षा से लोक के अन त वर्ण पर्याय गंधपर्याय रसपर्याय और स्पशपर्याय है। अनन्त सस्थान पर्याय हैं अन त गुरुलघुपर्याय है अन त अगुरुलघुपर्याय हैं। उसका कोई अ त नही। अत लोक द्र य दृष्टि से सा त ह क्षत्र दष्टि से सान्त है काल ़ष्टि से अन त है भावदृष्टि से अन त ह।[४५]

जीव शाश्वत है या अशाश्वत ह प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् ने कहा—गौतम। जीव किसी दष्टि से शाश्वत ह किसी दष्टि से

---

४५ एव खलु मए ख दया। चउव्विहे लोए पण्णत्त त जहा दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ।

दव्वओ ण एगे लोए सअते।

खेत्तओ ण लोए असखे जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयामविक्ख भेण असखेज्जाओ जोयण कोडाकोडीओ परिक्खेवण पन्नत्त अत्थि पुण सअते।

कालओ ण लोए न कयावि न आसि न कयावि न भवति न कयावि न भविस्सति। भविसु य भवति य भविस्सइ य धुवे णितिए सासते अक्खए अव्वए अवटिठए णि चे णत्थि पुण से अते।

भावओ ण लोए अणता वण्णप जवा गधपज्जवा रसप जवा फासप जवा अणता सठाणप जवा अणता गरुयलहुयपज्जवा अणंता अगरुलहुयपज्जवा नत्थि पुण से अन्त।

से त खन्दगा। दव्वओ लोए सअते खेत्तओ लोए सअन्ते कालतो लोए अणन्ते भावतो लोए अणन्ते।

—भगवती २।१।९

अशाश्वत हैं । द्रव्यार्थिक दृष्टि स शाश्वत है और भावार्थिक पर्यायार्थिक दृष्टि से अशाश्वत ह । [४६]

द्रव्य दृष्टि का अथ है अभेदवादी दृष्टि और पर्यायदृष्टि का अथ है भेदवादी दृष्टि । द्रव्यदृष्टि से जीव मे जीवत्वसामान्य का कभी अभाव नही होता वह किसी भी अवस्था मे हो जीव ही रहना है अजीव नही होता । अत वह नित्य ह । पर्याय दृष्टि से जीव किसी न किसी पर्याय मे रहता ह । एक पर्याय का परित्याग कर अन्य पर्याय को ग्रहण करता रहता है अत अनित्य है ।

जीव सान्त ह या अनन्त ह इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् ने कहा—

जीव सा त भी ह और अन त भी ह । द्रव्य की दृष्टि से एक जीव सान्त ह । क्षत्र की अपेक्षा से भी जीव असख्यातप्रदेशयुक्त होन से सा न ह । काल की दष्टि से जीव भूतकाल म था वतमान म है और भविष्यत् काल म रहेगा अत अनन्त ह । भाव की अपेक्षा से जीव के अनन्त ज्ञानपर्याय अनन्त दर्शन पर्याय अनन्त चारित्र पर्याय और अनन्त अगुरुलघु पर्याय है अत अनन्त है । तात्पय यह है कि द्रव्य और क्षत्र की दृष्टि से जीव सान्त है और काल तथा भाव की दृष्टि से अनन्त ह ।

---

४६ जीवा ण भन्ते ! कि सासया असासया ?
गोयमा ! जीवा सिय सासया सिय असासया ।
गोयमा द वटठयाए सासया भावटठयाए असासया ।।

—भगवती ७।२।२७३

४७ जे वि य खन्दया ! जाव सअन्ते जीव तस्स वि य ण एयमटठे एव खलु जाव दव्वओ ण एगे जीव सअन्ते खेत्तओ ण जीव असखेज्ज पएसिए असखेज्जपएसोगाढे अत्थि पुण से अन्त कालओ ण जीव न कयावि न आसि जाव निच्चे नत्थि पुण से अन्ते भावओ ण जीवे अणन्ता णाणपज्जवा अणन्ता दसणपज्जवा अणन्ताचरित्तपज्जवा अणन्ता अगुरुलहुयपज्जवा नत्थि पुण से अन्ते ।

—भगवती २। ।६

भगवान महावीर ने द्रव्य में एकता और अनेकता दोनो धर्म मान्य किये है। भगवान ने कहा—सोमिल! द्रव्यदृष्टि से मैं एक हू। ज्ञान और दर्शन की दृष्टि से मैं दो हूँ। न परिवर्तन होने वाले प्रदेशो की दृष्टि से मैं अक्षय हूँ अव्यय हूँ अवस्थित हूँ। परिवर्तित होने वाले उपयोग की दृष्टि से मैं अनेक हूँ।

इस प्रकार भगवान श्री महावीर न अनेकान्त दृष्टि से प्रत्येक प्रश्न का समाधान किया। विरोधी प्रतीत होन वाल एकत्व और अनेकत्व नित्यत्व और अनित्यत्व सान्तत्व और अनन्तत्व सत्त्व और असत्त्व धर्मों का अनेकान्त दृष्टि से समन्वय किया।

यहाँ पर यह स्पष्टीकरण करना आवश्यक ह कि भगवान महावीर की अनेकान्त दृष्टि दो एकान्तो को मिलाने वाली मिश्रदृष्टि नही है। कि तु यह एक स्वतन्त्र और विलक्षण दृष्टि ह जिसम वस्तु का पूण रूप परिज्ञात होता है और वस्तु के सभी धम निर्विरोध रूप से प्रतिभासित होते है।

भगवान् ने अपने श्रमणो को भी यह आदेश दिया कि भिक्षुओ! तम स्याद्वाद भाषा का ही प्रयोग करो।

भगवान श्री महावीर की वाणी म एक शाश्वत सत्य था जो जन मन को छू गया था। हिंसा शोषण और दुराग्रह के स्थान पर अहिंसा अपरिग्रह और अनेकान्त की अमल धवल धारा जन मन म प्रवाहित होने लगी। भगवान के पावन प्रवचनो से पशु और मानवो की बलि बन्द हुई अहिंसक यज्ञ प्रारम्भ हुए। गुलाम प्रथा का अन्त हुआ नारी और शूद्रो को धर्माधिकार प्राप्त हुए। अपरिग्रह और अनेकान्त की प्राणप्रतिष्ठा हुई।

---

४ सोमिला! दव्वटठ्याए एगे अह णाणदसणटठ्याए दुविहे अह पएसटठ्याए अक्खए वि अह अव्वए वि अह अवटिठए वि अह उवओगटठ्याए अणगभूयभावभविए वि अह।

—भगवती १।८।१

४६ भिक्खु विभज्जवाय च वियागरेज्जा।

—सूत्रकृताङ्ग १।१४।२२

आज विज्ञान और विनाश की इस कसमसाती वेला में भगवान महावीर के अहिंसा अपरिग्रह और अनेकान्त दृष्टि के प्रचार की उतनी ही आवश्यकता है जितनी उस युग में थी। यह देशनात्रयी मानवसमाज के लिए एक अमृतोपम औषधि है जिसके सेवन से मानव समाज पूर्ण स्वस्थ मस्त और प्रसन्न हो सकता है। जब विचार म अनेका त व्यवहार म अहिंसा और समाज म अपरिग्रह की उदात्त भावना अठखेलियाँ करन लगे ी तब जन जन के जीवन म आन द की ऊर्मियाँ तरगित होगी।

अहिसा अपरिग्रह और अनेका त ही भारतीय सस्कृति के मूलभूत सिद्धान्त है इनम भारतीय सस्कृति का सार सगृहीत है। समाज राष्ट्र और जीवन म सवत्र सुख और सन्तोष का सचार करना ही इसका मूल ध्यय है जो पुरातन होने पर भी अभिनव है। चिर तन होने पर भी चिरनवीन है।



परिशिष्ट

'धर्म और दर्शन' में प्रयुक्त ग्रन्थ

(१) आचारांग
(२) चर्पटपञ्जरिका
(३) महाभारत
(४) दशवैकालिक
(५) दशवैकालिक—जिनदास चूर्णि
(६) दशवैकालिक—हारिभद्रीयावृत्ति
(७) दशवैकालिक—अगस्त्यसिंह चूर्णि
(८) वैशेषिक दर्शन
(९) सर्वदर्शन संग्रह टीका—माधवाचार्य
(१) बृहदारण्योपनिषद्
(११) उत्तराध्ययन
(१२) गीता
(१३) बौद्ध दर्शन
(१४) अंगुत्तर निकाय
(१५) सूत्रकृताङ्ग
(१६) स्थानाङ्ग
(१७) आवश्यक निर्युक्ति—आचार्य भद्रबाहु
(१) विशेषावश्यक भाष्य—जिनभद्र
(१९) सूत्रकृताङ्ग—शीलाङ्क टीका
(२) भगवती
(२१) योगदर्शन
(२२) तैत्तिरीय उपनिषद्
(२३) मनुस्मृति
(२४) समवायाङ्ग
(२५) कल्पसूत्र—भद्रबाहु

(२६) कल्पसूत्र—पुण्यविजय जी
(२७) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका
(२) कल्पसूत्र—कल्पद्रुम कलिका
(२९) कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी—राजेन्द्रसूरि
(३) कल्पसूत्र कल्पलता
(३) कल्पसूत्र कल्पार्थबोधिनी
(३२) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
(३३) मज्झिम निकाय
(३४) अनुत्तरोपपातिक
(३५) अन्तकृद्दशा
(३६) आवश्यक चूर्णि—जिनदासगणी महत्तर
(३७) आवश्यक सूत्र—मलयगिरिवृत्ति
(३) आवश्यक सूत्र—हारिभद्रीया वृत्ति
(३९) समवायाङ्ग—अभयदेव वृत्ति
(४) त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित—आचार्य हेमचन्द्र
(४१) उत्तराध्ययन—नेमिचन्द्रीय वृत्ति
(४२) तत्वार्थ सूत्र—उमास्वाति
(४३) तत्वार्थ सूत्र—राजवार्तिक
(४४) मूलाचार—वट्टकेर
(४५) मोक्षपाहुड—आचार्य कुन्दकुन्द
(४६) संथार पइन्ना
(४७) ज्ञानसार तपाष्टक—उपाध्याय यशोविजय
(४८) दर्शन और चिन्तन—पं० सुखलाल जी
(४९) उत्तर पुराण—गुणचन्द्राचार्य
(५) महापुराण—जिनसेनाचार्य
(५१) गांधीजी की सूक्तियाँ
(५२) ज्ञाता सूत्र
(५३) आर० विलियम्स जैन योग
(५४) वसुनन्दी श्रावकाचार
(५५) पचाचार वृत्ति
(५६) कर्मग्रन्थ टीका

(५७) छहढाला—प दौलतराम जी
(५८) रत्नकरण्ड श्रावकाचार—आचार्य समन्तभद्र
(५९) निशीथ चूर्णि—जिनदास गणी महत्तर
(६) व्यवहार भाष्य
(६१) बृहत्कल्प
(६२) निशीथ सत्र
(६३) पन्नवणा सत्र
(६४) ओघनियु क्ति
(६५) ज्ञानार्णव—शुभचन्द्र
(६६) पचत त्र—विष्ण शर्मा
(६७) धम्मपद
(६) बृह क प लघुभाष्य
(६९) विनयपिटक
( ) दशाश्रतस्क ध
(७१) ऋषभदेव एक परिशीलन—देवे द्र मुनि
(७२) बृहत्क प नियु क्ति
(७३) राजे द्र कोष
(७४) कौटलीय अर्थशास्त्र
(७५) महानिशीथ
(७६) दर्शन पाहुड
(७७) मनुसहिता
(७) षट प्राभृत
(७९) प्रश्न व्याकरण
( ) नदी सूत्र
(८१) योगसत्र—पतञ्जलि
(८२) बौद्ध दशन
(८३) समयसार—आचाय कुन्दकुन्द
(८४) द्रव्य संग्रह—नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती
(८५) परमा मप्रकाश
(८६) ज्ञान गङ्गा
(८७) अमर वाणी

(८) अनुयोग द्वार
(८६) उपासकदशांग
(६) गांधी-वाणी
(६१) न्यायावतार—सिद्धसेन
(६२) लघीयस्त्रय टीका—अकलंक
(६३) स्याद्वादमञ्जरी—मल्लिषेण
(६४) न्यायविनिश्चय विवरण
(६५) वृहत्स्वयम्भू स्तोत्र—समन्तभद्र
(६६) हारिभद्रीयाष्टक
(६७) योगशास्त्र
(६८) पद्मपुराण
(६६) रामचरित मानस
(१) अशोक के फूल—डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी
(१ १) ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य—आचार्य शंकर
(१ २) अभिधर्म कोष
(१ ३) योगदर्शन व्यासभाष्य
(१ ४) योग दर्शन तत्त्ववैशारदी
(१ ५) योग दर्शन भास्वती टीका
(१ ६) सांख्य तत्त्व कौमुदी—वाचस्पति मिश्र
(१ ७) न्याय भाष्य—वात्स्यायन
(१) न्याय मंजरी—जयन्त
(१ ६) मीमांसा सूत्र शाबर भाष्य—शबर स्वामी
(१) तन्त्र वार्तिक
(१११) शास्त्र दीपिका
(११२) बाइबिल
(११३) कुरान शरीफ
(११४) अभिधर्म कोष
(११५) गोम्मट सार—आचार्य नेमिचन्द्र
(११६) आत्म मीमांसा—पं० दलसुख मालवणिया
(११७) आप्त मीमांसा—आचार्य समन्तभद्र
(११८) पंचास्तिकाय—आचार्य कुन्दकुन्द

(११६) पञ्चाध्यायी—पं० राजमल्ल
(१२) लोक प्रकाश—विनय विजय
(१२१) गणधरवाद—गुजरात विद्यासभा अहमदाबाद
(१२२) विशुद्धिमग्ग
(१२३) शान्तिशतकम्
(१२४) द्वात्रिंशिका
(१२५) षटदर्शन समुच्चय टीका
(१२६) महावीर जीवन दर्शन—देवेन्द्रमुनि
(१२७) प्रतिक्रमण सत्रवृत्ति—आचार्य नमि
(१२) प्रवचनसार
(१२६) प्रशस्तपाद भाष्य—प्रशस्तपाद
(१३) माठर वृत्ति
(१३१) कठोपनिषद्
(१३२) मिलिन्द प्रश्न
(१३३) कथावत्थु
(१३४) भारतज्ञान कोष
(१३५) उपदेशमाला दोघट्टी टीका
(१३६) जैन—भावनगर
(१३७) कर्मवाद एक अध्ययन —सुरेश मुनि
(१३) समाज और संस्कृति—उपाध्याय अमर मुनि
(१३६) श्री अमर भारती आगरा
(१४) प्रवचन सारोद्धार
(१४१) धवल सिद्धान्त धवला टीका
(१४२) अभिधान चिन्तामणि
(१४३) तिलोयपण्णत्ति
(१४४) वसुदेव हिण्डी
(१४५) गतागती स्तोक
(१४६) दशाश्रु तस्कंध—श्री घासीलाल जी म०
(१४७) नवतत्त्व साहित्य संग्रह
(१४८) स्थानाङ्ग-समवायाङ्ग—पं० दलसुख मालवणिया
(१४६) नियमसार—आचार्य कुन्दकुन्द

(१५) जन दशन—डा मोहनलाल मेहता
(५१) प्रज्ञापना टीका
(१५२) विनयचन्द चौबीसी
(१५३) तत्वाथ सत्र— प सुखलाल जी का विवेचन
(१५४) त वाथ सत्र—सर्वाथ सिद्धि
(१५५) तत्वार्थ सत्र—सिद्धसेनवृत्ति
(१५६) त वाथ सत्र—श्रुतसागरीयावृत्ति
(१५७) नवतत्व प्रकरण
(१५) नव पदाथ
(१५६) जन दशन के मौलिक तत्व
(१६) जनभारती—कलकत्ता
(१६१) धनञ्जय नाममाला
(१६२) महावीर कथा
(१६३) जयधवला भाग–१
(१६४) सुत्तागमे
(१६५) सप्ततिशत स्थान प्रकरण—सोमतिलक सूरि
(१६६) आवश्यक भाष्य
(१६७) ऋग्वेद
(१६) नीतिशतक
(१६६) चाणक्य नीति
(१७) अमितगतिश्रावकाचार
(१७१) धमरत्न प्रकरण
(१७२) समीचीन धमशास्त्र
(१७३) द्वादश अनुप्रेक्षा
(१७४) यशस्तिलक चम्पू
(१७५) भाव सग्रह
(१७६) गुणभद्र श्रावकाचार
(१७७) दान प्रदीप
(१७) कार्तिकेयानुप्रेक्षा
(१७६) आचार्य अमितगति

(१८) सुखविपाक
(१८१) उपासकदशाङ्ग
(१ २) रायपसेणीय सुत्त
(१ ३) द्रव्य सग्रह ब्रह्मदेव टीका
(१८४) प्रमाणनयतत्त्वालोक—वादिदेव सूरि
(१८५) माध्यमिक कारिका
(१ ६) पटिसम्भिदा
(१८७) कौषीतकी उपनिषद
(१८८) चरक सहिता
(१८६) तत्त्व सग्रह
(१६) न्यायावतारवार्तिक वृत्ति की प्रस्तावना
(१६१) मागन्दिय सुत्तन्त
(१६२) कुमारपाल प्रतिबोध—सोमप्रभाचाय
(१६३) शिव गीता
(194) Th w d wo ld of why d h w
(१६५) धम बिन्दु—आचाय हरिभद्र
(१६६) धम रत्न प्रकरण—महामहोपाध्याय मानविजय गणि
(१६७) श्राद्धगुण विवरण—जिनमण्डन गणी
(१६) तत्त्वानुशासन
(१६६) अध्यात्म सग्रह—उपाध्याय यशोविजय
(२) अष्टसहस्री—विद्यानन्दी
(२ १) अन्ययोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका—आचार्य हेमचन्द्र
(२ २) जनसूत्रो की भूमिका—डाक्टर हमन जकोबी
(२ ३) समराइच्चकहा—आचाय हरिभद्र
(२ ४) नन्दीसूत्र—मलयगिरि वृत्ति
(२ ५) पचास्तिकायटीका—श्री अमृतचन्द्र
(२ ६) सन्मतितर्क—सिद्धसेन